भारतीय साहित्य-2

एम. ए. , हिन्दी Semester-III, Paper- II

पाठ के लेखक

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.
एम.ए., एम. फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

डॉ. एम. मंजुला
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

डॉ. सोनकांबळे पिराजी मनोहर
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

संपादक

प्रो. एस. वी. एस. एस. एन. राजु
केन्द्रीय विश्वविद्यालय
तमिलनाडु

निर्देशक
डॉ . नागराजु बट्टू
M.H.R.M, M.B.A,L.L.M,M.A(Psy),M.A(Soc), M.Ed., M.Phil, Ph.D
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्या नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर – 522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222
0863-2346259 (अध्ययन सामाग्री)
Website : www.anucde.info
E-mail : anucdedirector@gmail.com

एम. ए., हिन्दी - भारतीय साहित्य-2

First Edition :2023

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A. HINDI Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasham.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B.Com courses at the Degree level and M.A., M.Com ,M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by cateringtolargernumberofpeople.MycongratulationstoalltheDirectors,AcademicCoordinators, EditorsandLesson-writersoftheCentre who have help edit the seen devours.

Prof.P.RajaSekhar
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

SEMESTER – III

PAPER II: INDIAN LITERATURE

302HN21 - भारतीय साहित्य

SYLLABUS

पाठ्य पुस्तक:

भारतीय साहित्य :

1. डॉ राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी और डॉ. अशोक तिवारी, हरीश प्रकाशन मन्दिर, 301, गोलग्न पेलेस (प्रथमतल) अस्पताल मार्ग, आगरा 282003 (उ. प्र.)।

पाठ्य विषय:

प्रथम खण्ड: 1. भारतीय साहित्य का स्वरूप।

i. भारतीय साहित्य का स्वरूप एवं उद्देश्य।
ii. भारतीय साहित्य का सामासिक स्वरूप।

2. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ:

i. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ।

ii. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्या।

3. भारतीयता का समाजशास्त्र।

4. हिन्दी साहित्य में भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति।

द्वितीय खण्ड : 1. पूर्वांचल भाषा- वर्ग उड़िया, बंगला, असमिया, मणिपुरी।

बंगला साहित्य का इतिहास

1. बंगला भाषा का सामान्य परिचय।
2. पूर्व -मध्यकालीन बंगला साहित्य।
3. उत्तर -मध्यकालीन बंगला साहित्य।
4. बंगला भाषा में विद्यासुन्दर काव्य।
5. बंगला भाषा में शैव-सिद्ध साहित्य।
6. बंगला साहित्य के सन्धिकाल का परिचय।
7. सामायिक पत्रों का आविर्भाव और प्रभाव।
8. 19वीं शताब्दी का बंगला-काव्य।

9. बंगला गद्य और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर |

10. 19वीं शताब्दी का बंगला काव्य।

11. 20वीं शताब्दी का बंगला साहित्य का विकास।

12. बंगला नाटक का उद्भव और विकास।

13. बंगला भाषा का उपन्यास साहित्य।

14. बंगला भाषा का कहानी साहित्य।

15. बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का योगदान।

16. बंगला भाषा के गद्य साहित्य का उद्भव और विकास।

तृतीय खण्ड उपन्यास अग्निगर्भ महाश्वेता देवी।

1. सन् 1967 के नक्सलवादी आन्दोलन।

2. "अग्निगर्भ" उपन्यास के सन्दर्भ में लेखिका के विचार।

3. "अग्निगर्भ" उपन्यास के कथानक।

4. राजनीतिक दलों के सन्दर्भ में काली साँतरा के विचार।

5. बसाई टूडू (टोरू) का चरित्र-चित्रण।

6. काली साँतरा का चरित्र-चित्रण।

7. "अग्निगर्भ" उपन्यास में देश-काल का वर्णन।

8. देउकी मिसिर का चरित्र-चित्रण।

8. मातो डोम का चरित्र-चित्रण।

10. बेतूल का चरित्र चित्रण।

11. लस्कर का चरित्र-चित्रण।

12. द्रोपदी का चरित्र-चित्रण।

13. "अग्निगर्भ" उपन्यास की भाषा शैली।

14. मघई का चरित्र चित्रण।

15. "अग्निगर्भ" उपन्यास के नाम की सार्थकता।

कविता संग्रह : वर्षा की सुबह (उड़िया सीताकांत महापात्र)।

1. "वर्षा की सुबह" संग्रह में संकलित कविताओं का परिचय।

2. सीताकान्त महापात्र की कविताओं का मूल्यांकन।

3. "वर्षा की सुबह" के आधार पर सीताकांत महापात्र की भाषा-शैली।

4. "वर्षा की सुबह" संग्रह में संग्रहित कविताओं की विशेषताएँ।

नाटक: हयवदन (कन्नड-गिरीश कर्नाड) |

1. नाटक का परिचय।
2. नाटक की कथावस्तु।
3. नर और नारी की अपूर्णता।
4. देवदत्त का चरित्र-चित्रण।
5. कपिल का चरित्र-चित्रण।
6. पद्मिनि का चरित्र-चित्रण।

सहायक ग्रंथ:

1. तुलनात्मक अध्ययन: तुलनात्मक साहित्य की भूमिका -इन्द्रनाथ चौधरी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा।
2. समकालीन भारतीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
3. तुलनात्मक साहित्य- डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. भारतीय भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास -केंद्रीय हिन्दी निदेशालय।
5. तुलनात्मक साहित्य -संपादक- राजूरकर, राजमल बोरा।
6. भारतीय आलोचना शास्त्र -राजवंश सहाय, निहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
7. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास डॉ. नगेन्द्र।

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

1. भारतीय साहित्य का स्वरूप एवं उद्देश्य 1.1-1.09

2. भारतीय साहित्य का सामाजिक स्वरूप 2.1-2.11

3. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ 3.1-3.09

4. हिन्दी- साहित्य में लेखन की समस्याएँ और भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति 4.1-4.24

द्वितीय खण्ड :

5. बंगला भाषा का परिचय-विद्यासुन्दर काव्य-शैव सिद्ध साहित्य 5.1- 5.15

6. 19वीं-20वीं शताब्दी का बंगला साहित्य का उद्भव-विकास 6.1-6.16

7. बंगला उपन्यास, कहानी और नाटक का उद्भव एवं विकास 7.1-7.16

8. बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का योगदान 8.1-8.12

तृतीय खण्ड :

9. 'अग्निगर्भ' उपन्यास का विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर चित्रण 9.1- 9.13

10. अग्निगर्भ -महाश्वेता देवी 10.1-10.18

कविता संग्रह : वर्षा की सुबह (उड़िया सीताकांत महापात्र)

11. वर्षा की सुबह-1 11.1-11.21

12. वर्षा की सुबह-2 12.1-12.17

नाटक: हयवदन (कन्नड़-गिरीश कर्नाड)

13. हयवदन नाटक का पृष्ठभूमि 13.1-13.09

14. हयवदन नाटक का कथावस्तु 14.1-14.09

15. हयवदन नाटक पात्रों का चरित्र चित्रण 15.1-15.15

1. भारतीय साहित्य का स्वरूप एवं उद्देश्य

1.0.उद्देश्य

साहित्य किसी संघ का परिचय देता है। साहित्य से किसी देश, प्रांत का संस्कृति-सभ्यता का परिचय मिलता है। भारतीय साहित्य से भारत की सभ्यता, संस्कृति, परिवेश, प्राचीन काल से यहाँ की भाषा-शैली और विभिन्न अंशों का परिचय मिलता है। इस इकाई में हम भारतीय साहित्य का स्वरूप, उद्देश्य, विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का परिचय की जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम भारतीय स्वरूप के बारे में; भारतीय साहित्य का उद्देश्य आदि के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

1.1. प्रस्तावना

1.2. साहित्य का अर्थ, परिभाषा

1.3. भारतीय साहित्य

1.3.1. स्वरूप

1.3.2. उद्देश्य

1.4. साहित्य का प्रयोजन

1.5. सारांश

1.6. बोध प्रश्न

1.7. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1. प्रस्तावना

किसी भाषा के वाचिक और लिखित शास्त्र समूह को साहित्य कह सकते हैं। दुनिया में सबसे पुराना वाचिक साहित्य हमें आदिवासी भाषाओं में मिलता है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य सभी साहित्य का मूल स्त्रोत है। साहित्य स+ हित + य के योग से बना है।

साहित्य शब्द को परिभाषित करना कठिन है। जैसे पानी की आकृति नहीं, जिस साँचे में डालो वह ढल जाता है, उसी तरह का तरल है यह शब्द। कविता, कहानी, नाटक, निबंध, रिपोर्ताज, जीवनी, रेखाचित्र, यात्रा वृत्तांत, समालोचना बहुत से साँचे है। परिभाषा इसलिए भी कठिन हो जाती है कि धर्म, राजनीति, समाज, समसामयिक आलेखों, भूगोल, विज्ञान जैसे विषयों पर जो लेखन है वह सब कुछ साहित्य ही हैं। इस साहित्य शब्द का अर्थ को व्यापक रूप में देख सकते है। साहित्य समाज, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार विभिन्न रूप धारण करते हैं। भारत जैसी बहु भाषी राष्ट्र में तो इसका स्वरूप और भी व्यापक होती है। भारत के विभिन्न भाषाओं में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक विस्तृत साहित्य को देख सकते है। इस इकाई में भारतीय साहित्य का स्वरूप, उद्देश्य आदि की जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2. साहित्य का अर्थ, परिभाषा

'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए 'हिन्दी साहित्य'- कोश के रचयिताओं ने लिखा है – 'साहित्य = सहित + यत् प्रत्यय, साहित्य का अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत सहभाव अर्थात् 'साथ होना'। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम 'साहित्य' है । साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति का रहस्य जानने के लिए इसके इतिहास पर दृष्टिपात करना उचित होगा । कहा जाता है कि 'साहित्य' शब्द का प्रचलन इस अर्थ में सातवीं-आठवीं शती से हुआ है । इससे पहले संस्कृत में 'साहित्य' के स्थान पर 'काव्य' शब्द का भी प्रयोग किया था । व्यवहार में साहित्य शब्द का प्रयोग बड़े ही व्यापक रूप में किया जाता है । काल रचना से लेकर दवा- विज्ञापन- सम्बन्धी अनेक क्षेत्रों को भी साहित्य कह दिया जाता है, परंतु साहित्यिक प्रयोग अथवा काव्य शास्त्रीय दृष्टि से साहित्य के अर्थ एवं क्षेत्र सर्वथा भिन्न एवं अपेक्षित सीमित होते है । 'सहितस्य भाव: साहित्यम्' जिसमें हित की भावना निहित हो उसे साहित्य कहते हैं । साहित्य में समान रूप से सबके हित की भावना निहित होती है, किन्तु उसके स्वरूप के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं । जो भी हो ज्ञान राशी के संचित कोष का नाम साहित्य है । आधुनिक युग में 'साहित्य' शब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'लिटरेचर' शब्द की भाँति दो अर्थों में होता है. व्यापक अर्थ में वह समस्त लिखित एवं मौखिक रचनाओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि संकुचित अर्थ में वह काव्य के पर्याय के रूप में गृहीत होता है । दूसरे शब्दों में एक ओर वह समस्त प्रकार के ग्रन्थ-समूह को सूचित करता है तो दूसरी ओर वह एक विशेष कोटि की रचनाओं तक ही सीमित है । पाश्चात्य विद्वानों ने इन दोनों का अन्तर स्पष्ट करने के लिए एक को 'ज्ञान का साहित्य' कहा है तो दूसरे वर्ग की रचनाओं को 'भावना या शक्ति का साहित्य' की संज्ञा दी है । प्रसिद्ध विद्वान डी क्विनसी (De Quincey) ने दोनों की तुलना करते हुए लिखा है कि जहाँ ज्ञान के साहित्य का लक्ष्य सिखाना होता है वहाँ भावना के साहित्य का लक्ष्य भावनाओं को जागृत करना होता है, एक में तथ्यों और उपदेशों की प्रधानता होती है जबकि दूसरे में कला और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है । साहित्य के अर्थ को और अधिक रूप में स्पष्ट करने के लिए इसकी परिभाषाओं को देखेंगे ।

परिभाषाएँ

साहित्य का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए हमारे अनेक प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यों ने साहित्य की विभिन्न परिभाषाएँ बतायी है । 'शब्द और अर्थ का मनोहर विन्यास साहित्य है', 'साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है जिसके अर्थ-बोध से सामान्य पाठक को आनन्द की अनुभूति होती है ।' ये सब साहित्य की सामान्य परिभाषाएँ है । अनेक क्षेत्रों को भी साहित्य कह दिया जाता है, परंतु साहित्यिक प्रयोग अथवा काव्य शास्त्रीय दृष्टि से साहित्य के अर्थ एवं क्षेत्र सर्वथा भिन्न एवं अपेक्षित सीमित होते है । 'सहितस्य भाव: साहित्यम्' जिसमें हित की भावना निहित हो उसे साहित्य कहते हैं । साहित्य में समान रूप से सबके हित की भावना निहित होती है, किन्तु उसके स्वरूप के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं । जो भी हो ज्ञान राशी के संचित कोष का नाम साहित्य है । आधुनिक युग में 'साहित्य' शब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'लिटरेचर' शब्द की भाँति दो अर्थों में होता है- व्यापक अर्थ में वह समस्त लिखित एवं मौखिक रचनाओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि संकुचित अर्थ में वह काव्य के पर्याय के रूप में गृहीत होता है । दूसरे शब्दों में एक ओर वह समस्त प्रकार के ग्रन्थ-समूह को सूचित करता है तो दूसरी ओर वह एक विशेष कोटि की रचनाओं तक ही सीमित है । पाश्चात्य विद्वानों ने इन दोनों का अन्तर स्पष्ट करने के लिए एक को 'ज्ञान का साहित्य' कहा है तो दूसरे वर्ग की रचनाओं को 'भावना या शक्ति का साहित्य' की संज्ञा दी है । प्रसिद्ध विद्वान डी क्विनसी (De Quinecy) ने दोनों की तुलना करते हुए लिखा है कि जहाँ ज्ञान के साहित्य का लक्ष्य सिखाना होता है वहाँ भावना के साहित्य का लक्ष्य भावनाओं को जाग्रत करना होता है, एक में तथ्यों और उपदेशों की

प्रधानता होती है जबकि दूसरे में कला और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। साहित्य के अर्थ को और अधिक रूप में स्पष्ट करने के लिए इसकी परिभाषाओं को देखेंगे।

पाश्चात्य विद्वान अरस्तू ने शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति को काव्य या साहित्य की संज्ञा दी है। सिडनी के विचार में काव्य या साहित्य वह अनुकरणात्मक कला है जिसका लक्ष्य शिक्षा और आनंद प्रदान करता है। वस्तुतः ये साहित्य के सम्बन्ध को सूचित किया है। साहित्य का अर्थ व्यापक रूप में देखना पड़ता है। साहित्य का निर्माण भाषा, विचार, कल्पना और भावों द्वारा होता है। विचार यदि कल्पनात्मक ढंग से प्रकट किये जाते हैं तो साहित्य का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः निरुद्देश्य कल्पना को साहित्य नहीं कहा जा सकता। साहित्य कभी निरुद्देश्य नहीं होता। कल्पना का सम्बन्ध जनहित से अवश्य होना चाहिए। कुछ लोग केवल कल्पना में सौंदर्य आवश्यक मानते हैं। उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी तरह भावों के श्लील और अश्लील होने के सम्बन्ध में भी मत भेद है। अंततः हम कह सकते है कि साहित्य उस रचना को कहते हैं जिसमें आनन्द के साथ किसी सत्य का उद्घाटन किया गया हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं प्रभाव-शालिनी हो।

भारतीय साहित्यकारों ने साहित्य के दो स्वरूप माने है। उनमें से एक अलौकिक पक्ष जीवन के आध्यात्मिक पक्ष से संबंध रखता है और दूसरा जीवन के लौकिक अथवा बाह्य पक्ष से संबंध रखता है। इस प्रकार उनकी दृष्टि में साहित्य का प्रधान स्वरूप सर की अनुभूति है।

1.3. भारतीय साहित्य

भारतीय साहित्य विशाल साहित्य है। विभिन्न कार्यक्षेत्रों के विद्वान इसको विभिन्न अर्थों में लेते हैं। विभिन्न युगों में भी इसका अर्थ समान नहीं रहा है। विभिन्न राष्ट्रों की दृष्टि में इसका मकसद अलग-अलग रहा है। यूरोपीय साहित्य करते समय यूरोप के एक देश के साहित्य पर बल नहीं दे सकेंगे। वह यूरोप में शामिल सारे राष्ट्रों के साहित्य का सम्मिलित रूप है। यहाँ छोटे और बड़े राष्ट्रों की भाषाओं के साहित्य का ख्याल करना अनिवार्य बन जाता है। पाश्चात्य सम्पर्क में आने के बाद भारत को आधुनिक बनने की कई सुविधाएँ मिली। साहित्य के क्षेत्र में भी हम विश्व की विशालता की ओर झाँक सके। भारत के साहित्य और संस्कृति की खूबियों को समझने की खोशिश कुछ अंग्रेजी मनीषियों ने भी किया था। उधर के विद्वानों का ध्यान भारत के प्राचीनकाल के कुछ कवि, महर्षियों की कृतियों पर ही पड़ा था। भारतीय विद्या था इण्डोलॉजी के अन्तर्गत उन्होंने भारतीय साहित्य को पहला स्थान दिया था। ऐसे कृतियों में रामायण, महाभारत, वेद और उपनिषद् को ही विशेष महत्व मिला था। कुछ कृतियों की परख वे धर्म से जोड़कर करने लगे थे। फिर शुद्ध साहित्य के अन्तर्गत भी कुछ कवियों पर उनकी दृष्टि केन्द्रित होने लगी थी। कालिदास, भवभूति, जयदेव ऐसे कवियों में शामिल थे। विदेशी विद्वानों ने भारतीय साहित्य का अध्ययन और मूल्यांकन करने का प्रयास कथा था। भारत के अतीत काल के वैभव का विश्लेषण उन्होंने नए सिरे से किया था।

सन् 1835 में अंग्रेजों ने भारत में अपनी शिक्षा नीति चालू की थी। इससे फायदा उठाकर भारत के कई लोगों ने अंग्रेजी में उच्च शिक्षा प्राप्त की। राजनीतिक क्रान्ति के उस युग में कई नेताओं ने अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त की थी। अंग्रेजी साहित्य से भी उनका सरोकार था। अंग्रेजी में अभिव्यक्ति की क्षमता प्राप्त लेखकों ने उस भाषा में कई अमर कृतियाँ लिखीं। अंग्रेजी में भारतीय लेखकों द्वारा रचित मूल कृतियाँ विदेश के पाठक आसानी से पढ़कर समझ सके। इसलिए वे भारतीय साहित्य के अन्तर्गत माने जाते हैं। भारतीय साहित्य के बारे में भारत में प्रचलित दृष्टि कोण भी विचारणीय है। प्राचीन काल में संस्कृत की बड़ी महिमा और गरिमा रही। उसके महत्व से अन्य भारतीय भाषाएँ भी

लाभान्वित हो उठी । संस्कृत के साहित्यकार भारत के विभिन्न प्रान्तों के रहने वाले थे । भारतीय काव्यशास्त्र के अधिकांश आचार्य कश्मीर के थे । कालिदास मध्य प्रदेश के थे । भक्ति आन्दोलन ने उत्तर भारत के साहित्य को एक नई दिशा दी थी । लेकिन भक्ति के उन्नायक आचार्य दक्षिण के थे । शंकर, माध्व, निम्बार्क, वल्लभ और रामानुज के आदर्श साहित्य उत्तर में अधिक विकसित हुए थे । भारत की विभिन्न भाषाओं में रामायण की रचना और व्याख्याएँ हुई थी । सरलीदास, कृतिवास, तुलसीदास, रंगनाथ कम्बर, पम्पा, शंकर देव जैसे कवियों की भाषा एक नहीं थी । लेकिन वाल्मीकि रामायण की चेतना को आत्मसात् करने के कारण उनके काव्य में कई समानताएँ आयी । महाभारत के भिन्न प्रसंग और प्रकरणों को लेकर भी परवर्ती युग में भारतीय भाषाओं में कई नयी कृतियाँ या व्याख्याएँ आयीं । यह सिलसिला आज भी जारी है । संस्कृत के महाकाव्यों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद और पुनराख्यान के तरीके से लाग गये थे । भारतीय साहित्य की एक सूत्रता की तलाश के सन्दर्भ में यह एक उल्लेखनीय बात है ।

भारतीय साहित्य की व्यापकता स्वतंत्रता आन्दोलन का भी महत्वपूर्ण स्थान है । राष्ट्रीयता राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीय साहित्य का अन्तरसम्बन्ध को अधिक मजबूत बना दिया था । राष्ट्र की माँग समाज बन गयी थी तो साहित्य की धारा भी तदनुसार बदल गयी थी । भारतीय भाषाओं को अनुवाद से जोड़ने की अनिवार्यता भी लोग समझने लगे । हिन्दी में अनुवाद द्वारा उपलब्ध साहित्य को अनौपचारिक स्तर पर भारतीय साहित्य की मान्यता मिल गयी । इतना ही नहीं परवर्ती युग में कई हिन्दीतर भाषी लेखक हिन्दी में मौलिक कृतियाँ लिखने लगे । अन्य भाषाओं की कृतियों का अनुवाद भी वे करने लगे । आपसी समझदारी का मार्ग तब अधिक सुगम बन गया । भारतीय साहित्य को प्रोत्साहन देनेवाली कई संस्थाओं का गठन, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना आदि भारतीय साहित्य की वृद्धि के लिए अत्यन्त उपयोगी बन गए हैं । भारतीय साहित्य की वृद्धि प्राचीन काल से लेकर, मध्यकाल आधुनिक काल तक होते ही रही है । भारतीय साहित्य की संकल्पना का दायरा सीमित न रहे । देश की सामाजिक, सांस्कृतिक संबंधों की वृद्धि में साहित्य का योगदान अधिक मात्रा में देखने को मिलती है । इस परिकल्पना को अधिक समझने के लिए भारतीय साहित्य का स्वरूप और उद्देश्य को समझना चाहिए ।

1.3.1. भारतीय साहित्य का स्वरूप

भारतीय साहित्य की अर्थ परिधि अत्यन्त व्यापक और जटिल है । इसकी व्याख्या प्रायः दो प्रकार से की जाती है ।

स्थूल रूप

स्थूल रूप से भारत की विविध भाषाओं के साहित्य की समष्टि का नाम भारतीय साहित्य है । भारतवर्ष अनेक भाषाओं का विशाल देश है । यहाँ के प्रांतीय भाषाओं को अपना प्रत्येक साहित्य है । कुछ को छोड़कर अधिकांश भाषाएँ प्राचीनता, गुण परिमाणु आदि । सभी दृष्टियों से अत्यन्त समृद्ध है । इनमें आधुनिक भारती भाषाओं के साथ वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत या संस्कृत पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं को भी सम्मिलित किया जाता है । इसमें से प्रत्येक साहित्य का अपना स्वतंत्र और प्रखर वैशिष्ट्य है । जैसे तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु के द्विअर्थी काव्य, मलयालम के सन्देश काव्य, मराठी के पवाडे, गुजराती के आख्यान, बंगला का मंगलकाव्य असमिया के बड़गीत, पंजाबी के वीरगीत, उर्दू की गजल और हिन्दी का रीति-काव्य छायावादी काव्य आदि । अतः भारतीय साहित्य अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्यों का संचित कोष है । किन्तु यह स्थूल अर्थ मान्य नहीं है । इससे भारत एक राष्ट्र न होकर

विविध प्रदेशों का मण्डल मात्र बनकर रह जायेगा और भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों का समुच्चय होकर रह जायेगी।

तात्विक रूप

तात्विक रूप में भारतीय साहित्य एक इकाई है, उसका मिला - जुला अस्तित्व है, जो भारतीय जीवन की अनेकता में एकता को अभिव्यक्त करता है। तमिल, तेलुगु, मराठी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी आदि विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्त विभिन्न साहित्य एक होकर भारतीय साहित्य की संज्ञा पाने का अधिकारी है। जब हम हिन्दी साहित्य की बात करते हैं तो उसमें खड़ीबोली के साहित्यकार प्रसाद, पंत, निराला, प्रेमचन्द, अज्ञेय, यशपाल आदि की रचनाओं के साथ-साथ अवधि, ब्रज, मैथिली आदि भाषाओं के साहित्यकार जायसी, सूर, तुलसी, विद्यापति आदि की कृतियों को भी समाहित करने में हम संकोच नहीं करते। इन विभिन्न बोलियों के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली साहित्य एक है क्योंकि इसकी रचना करने वाले हिन्दी भाषाई समाज की जातीय चेतना एक है। उसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि हर एक क्षेत्र की अपनी-अपनी क्षेत्रीय विशिष्टताओं के बावजूद सब भारतीय हैं अतः उनके द्वारा रचित साहित्य अपने समस्त भाषा भेद के उपरान्त भी एक भारतीय साहित्य के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि भारतीय समाज की ऐतिहासिक परम्परा, सांस्कृतिक मूल्य और काव्य संवेदना समानधर्मी है और उनके द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों में भावबोध और शिल्पगत विन्यास की प्रकृति भी एक है।

सारांश के रूप में कह सकते है कि भारत सदियों से बहुजातीय, बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक देश रहा है। अतः यह स्वाभाविक है कि देशकाल के आधार पर यहाँ जातिगत एवं भाषिक भिन्नता है। पर देशकाल से जुड़ी इन समस्त विभिन्नताओं के बावजूद हमें यहाँ एक विलक्षण अभिन्नता भी दिखाई पड़ती है। चाहे वैदिक संस्कृत हो, या क्लासिक तमिल का संगम साहित्य, सर्वत्र हमें संस्कार चेतना एवं भावबोध में समानता देखने को मिलती है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार 'भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति का नाम भारतीय साहित्य है और भारतीय मनीषा का अर्थ है, भारत के प्रबुद्ध मानस की सामूहिक चेतना - सहस्त्राब्दियों से संचित अनुभूतियों और विचारों के नवनीत से जिसका निर्माण हुआ है। यह भारतीय मनीषा ही भारतीय संस्कृति, भारत की राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य का प्राण तत्व है।'

1.3.2. भारतीय साहित्य का उद्देश्य

निस्सन्देह काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है। साहित्य के उद्देश्य के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के अनेक मत हैं। फ्रैयड़ ने अमुक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति को साहित्य का मुख्य लक्ष्य माना है। इनका कथन है कि जब वास्तविक रूप में काम का उपभोग न कर उसे चिन्तन रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है तब साहित्य की चिरकालिक हीनता अथवा प्रभुत्व शक्ति की भावना - तृषित को ही साहित्य का प्रमुख उद्देश्य माना है। उनके अनुसार साहित्य जीवन के अभावों की पूर्ति मात्र है। क्रोचे ने अभिव्यंजनावाद को साहित्य का मूल उद्देश्य स्वीकार किया है। अभिव्यंजना के अनुसार साहित्य का उद्देश्य पदार्थों की सफल तथा स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

साहित्य में समन्वय की भावना है। यही भावना साहित्य के मूल में है। मनुष्य चिरकाल से मानव-मानव, जड़ चेतन, दृश्य-अदृश्य, विचार-विचार और भाव-भाव में सामञ्जस्य स्थापित करने की साधना करता चला आ रहा है। अतः इसके लिए विचारों और भावों का पारस्परिक विनिमय अत्यन्त आवश्यक है। साहित्य के मूल में स्वयं को दूसरे के निकट लाने की भावना काम करती है। इस सहयोग की भावना का व्यापक प्रसार ही साहित्य का उद्देश्य है। जीवन

में अनेक घटनाएँ घटित होती रहती है। परन्तु प्रेरक अनुभूति का उद्रेक बिश्ली घटनाओं द्वारा ही होता हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि घटना की मार्मिक अनुभूति ही साहित्य की प्रेरणा स्त्रोत बन जाती है। महाकवि कालिदास के मेघदूत का प्रेरणा-स्त्रोत स्वयं उनका प्रिया - वियोग था, परन्तु गीत गोविन्दकार जयदेव के हरिस्मरण हास - विलास - कुतूहलम् में उनके प्रेरणा स्त्रोत को खोजना उपयुक्त नहीं होगा, उन्होंने हरिस्मरण और हास - विलास का औत्सुक्य शांत करने के लिए जो बात कही हैं वह काव्य के प्रयोजन अथवा उसके द्वारा प्राप्त होने वाले लक्ष्य को रखकर कही है। उनके कथन को प्रेरणा न कहकर उद्देश्य या प्रयोजन मानना अधिक समीचीन होगा। इसी प्रकार गाथा सप्तशती के प्रणेता ने रसिकजनों को काम की शिक्षा देना अपनी रचना-धर्मिता का निर्मित माना। यहाँ भी प्रयोजन की चर्चा है, प्रेरणा का आरोप निराधार है।

जीवन की मूल-प्रेरक शक्ति आत्म चेतना है। आत्म- चेतना और सौन्दर्यानुभूति समन्वित होकर कला की प्रेरणा प्रदान करती है। यद्यपि कला के अन्तर्गत ललित कलाएँ, उपयोगी कलाएँ और नैतिक कला, तीनों प्रकार की कलाएँ आती हैं, तथापि 'कला' शब्द का प्रयोग ललित कलाओं के लिए किया जाता है। न्यूनतम मूर्त्ताधार पर निर्मित होने के कारण काव्य को कला के क्षेत्र में शीर्ष स्थान प्रदान किया जाता है। साहित्य या काव्य जीवन का मुखरित रूप है। साहित्य वस्तुतः जीवन के महासागर में उठी हुई तरंग है। जल व तरंग के समान जीवन और साहित्य अभिन्न है। दोनों की प्रेरणाएँ भी समान होती है। भरतमुनि के अनुसार काव्य रचना के मूल में दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही हेतु होते हैं। उनका कथन है कि काव्य से क्या नहीं हो सकता। काव्य केवल मनोरंजन की सामग्री ही नहीं है, अपितु धार्मिक, नैतिक और दार्शनिक ज्ञान की शिक्षा एवं कायरों को साहस, परिजनों को उत्साह, शोकार्तजनों को सांत्वना, उद्विग्न-चित्र वालों को विश्रान्ति, काव्य-प्रणेत जन को सम्मान और द्रव्य की प्राप्ति आदि के लिए काव्य एक अद्भुत् साधना है। संस्कृत के कुछ कवियों ने भी इस विषय पर विचार किया है। कालिदास यश-प्राप्ति अथवा लोक को काव्य - रचना की प्रमुख प्रेरक शक्ति मानते हैं। बाणभट्ट ने भी प्रायः यही बात कही है। उन्होंने कादम्बरी के प्रारंभ में गुणी एवं विद्वान के रूप में सम्मिलित होने की इच्छा को काव्य का प्रेरक बताया है।

हिन्दी के विद्वानों में प्रमुख है - रामचंद्रशुक्ल, बाबू गुलाबराय, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और डॉ. नगेंद्र आदि ने भी चतुर्वर्ग फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को ही काव्य की प्रेरणा का स्त्रोत माना है। इनके विचार से सुख-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना जीव का सहज स्वभाव है और वस्तुतः सुख की प्राप्ति ही काव्य-रचना का मूल उद्देश्य है। काव्य की प्रेरणाएँ जो इस प्रकार है आनन्द की प्राप्ति, शक्ति की प्राप्ति, समाज का हित साधन, सौन्दर्यानुभूति द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द का प्रकाशन तथा साभिप्राय आत्माभिव्यक्ति थे सब साहित्य के उद्देश्य को संपूर्ण रूप में प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

1.4. साहित्य का प्रयोजन

काव्य या साहित्य के विषय में वाल्मीकि की वाणि सुनकर उनके शिष्यों ने विस्मित होकर कहा कि महर्षि के हृदय का शोक उनकी वाणी से उच्चरित होकर श्लोक रूप हो गया। उधर उदार दृष्टि वाले महर्षि भी राम के यश को बढ़ाने वाले इस काव्य की रचना में प्रवृत्त हो गये। महात्मा वाल्मीकि के काव्य की विशेषता यह बताई गई है कि वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी फलों से युक्त तथा इनका विस्तारपूर्वक प्रतिपादन एवं दान करने वाला है। महर्षि ने सहज भाव लोकरंजन हिताय काव्य का सृजन कर दिया, परन्तु परवर्ती काव्यकार काव्य-प्रणयन मात्र से सन्तुष्ट नहीं रह सके।

वे उसके प्रयोजन परक तत्व का विश्लेषण एवं विवेचन करते रहे हैं। काव्य के प्रयोजन पर आचार्य, कवि, विचारक आदि सभी ने विचार किया है। आचार्य मम्मट ने कहा कि-

काव्यं यशसेऽर्थ कृते व्यवहारविदे शिवेतारश तथे।

सद्यः परनिर्वृतये कान्ता सम्मित तथोपदेशपुजे॥

(काव्य प्रकाश)

अर्थात् यश की प्राप्ति, सम्पत्ति का लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा, रोगादि विपत्तियों का नाश, तुरन्त ही उच्च कोटि के आनन्द का अनुभव और प्रेयसी के समान उपदेश देने के लिए, काव्य - ग्रन्थ उपदेश, प्रयोजनीय हैं।

हिन्दी कवियों ने भी काव्य प्रयोजन के बारे में अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं-

कीरति मनिति भूति जलि सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

जे प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं।

सो भ्रम वृथा बाल कवि करहीं॥

आचार्य भिखारीदास कहते हैं-

एक कहें तप व्युजन्ह को फल ज्यों तुलसी और सूर गोसाई,

एक कहें बहु सम्पत्ति के सब भूषन ज्यों वह वीर बड़ाई,

एकन्ह को जस ही सों प्रयोजन है रसखान रहीम की नाई।

दास कवित्तन्ह की चर्चा बुधि बंतन को सुखदै सब ठाई।

मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं-

जो अपूर्ण कला उसी की पूर्ति है,

हो रहा है जहाँ जो हो रहा,

यह हमने कहा तो क्या कहा।

किंतु होना चाहिए कब क्या कहाँ,

व्यक्त करती है कला यही यह यहाँ।

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार-

'कविता का काम यह नहीं है कि वह लोगों से यह कहती फिरे कि तुम्हें यह काम करना चाहिए और यह काम नहीं करना चाहिए। कविता का काम केवल पाप और पुण्य के ज्ञान को विस्तृति प्रदान करना है, लोगों में यह उत्तेजना जगाना है, जिससे कर्म उनके लिए अनिवार्य हो उठे। वह उनके भीतर अनुभूति उठाती है जिससे वे अपने कर्तव्य को समझ सकें। कविता मनुष्य को उस अवस्था में ले जाकर छोड़ देती है जहाँ उसे अपना निर्णय स्वयं करना है।'

यथा भारतीय साहित्यकारों के अनुसार काव्य / साहित्य के प्रयोजन इस प्रकार ठहरते है-

आनन्दानुभूति

यश की प्राप्ति

अर्थ की प्राप्ति

लोकहित साधन / सुधार, लोक रंजन

व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति

कान्ता सम्मित उपदेश, तथा

युगबोध की प्राप्ति।

सारांश के रूप में हम यह कह सकते हैं कि काव्य समाज सापेक्ष है। काव्य - प्रयोजन या अर्थ की प्राप्ति व्यवहार ज्ञान, शिवेतर क्षय, रस या आनन्द की प्राप्ति, उपदेश, चतुर्वर्ग की सिद्धि तथा कला - वैचक्षण्य, दुःखी, भ्रमित एवं संतप्तों को शांति प्रदान करना आदि बताए गये हैं। किसी भी प्रयोजन को हम समाज से पृथक नहीं कर सकते हैं। समाज से पृथक प्रयोजन, प्रयोजन नहीं रह जाएगा और समाज से दूर हो जाने पर काव्य निरर्थक हो जाएगा।

1.5. सारांश

भारतीय साहित्य हो या विश्व साहित्य हो साहित्य का निर्माण भाषा, विचार, कल्पना और भावों द्वारा होता है। विचार यदि कल्पनात्मक ढंग से प्रकट किये जाते हैं तो साहित्य का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः निरुद्देश्य कल्पना को साहित्य नहीं कहा जा सकता। साहित्य कभी निरुद्देश्य नहीं होता। कल्पना का सम्बन्ध जनहित से अवश्य होना चाहिए। कुछ लोग केवल कल्पना में सौन्दर्य आवश्यक मानते हैं। उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। इस तरह भावों के श्लील और अश्लील होने के सम्बन्ध में भी मतभेद हैं। कालांतर में आचार्यों ने पुरुषार्थ चतुष्टय-अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष को जीवन की प्रेरणाएँ बताया। साहित्य का मूल उद्देश्य इन पुरुषार्थ चतुष्टय के साथ जुड़ा रहता है। भरतमुनि के अनुसार काव्य केवल मनोरंजन की सामग्री ही नहीं है बल्कि धार्मिक, नैतिक और दार्शनिक ज्ञान की शिक्षा एवं कायरों को साहस, परिजनों को उत्साह, शोकार्थजनों को सांत्वना, उद्विग्न मन वालों को विश्रांत, काव्य प्रनेताजन को सम्मान और द्रव्य की प्राप्ति आदि के लिए काव्य एक अद्भुत साधना है। आधुनिक के पंडित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, आचार्य नन्ददुलारे वाचपेयी आदि विद्वानों ने भी चतुर वर्ग की सीमाओं को पार नहीं किया। इनके विचार से भी सुख की प्राप्त ही काव्य रचना का मूल उद्देश्य है।

अंतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य उस रचना को कहते हैं जिसमें आनन्द के साथ किसी सत्य का उद्घाटन किया गया हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं प्रभावशालिनी हो। इस इकाई में हम भारतीय साहित्य के स्वरूप, उद्देश्य, प्रयोजन आदि के बारे में विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। आगे की अध्यायों में भारतीय साहित्य के सामाजिक परिकल्पना आदि के बारे में चर्चा करेंगे।

1.6. बोध प्रश्न

1. साहित्य का अर्थ, परिभाषा के बारे में सोदाहरण चर्चा कीजिए।

2. भारतीय साहित्य के स्वरूप के बारे में चर्चा कीजिए।

3. साहित्य का उद्देश्य क्या होते हैं?

4. साहित्य का प्रयोजन के बारे में सोदाहरण रूप से बताइए।

1.7. सहायक ग्रंथ सूची

1. भारतीय साहित्य- संकलनकर्ता
डॉ. आर. आई. शान्ति
डॉ. प्रकाश ए.

2. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका - इन्द्रनाथ चौधुरी

3. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास- डॉ. नगेन्द्र

डॉ. एम. मंजुला

2. भारतीय साहित्य का सामाजिक स्वरूप

2.0. उद्देश्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणि है। मनुष्य का पालन-पोषण समाज में होता है। इसलिए मनुष्य और समाज का संबंध निश्चित ही दृढ़ होता है। ऐसी सामाजिक प्राणि मनुष्य का संबंध साहित्य से भी जुड़ा हुआ है। साहित्य में समाज का रूप, अंग, चेतना आदि के बारे में बताते है। समाज का एक अभिन्न अंग ही साहित्य है। साहित्य के कारण समाज में बदलाव आता है। साहित्य के कारण एक समाज की रूप रेखा दूसरे समाज तक जा पाता है। विश्व के सभी समाजों से परिचय प्राप्त करना है तो विश्व साहित्य की ओर देखना पड़ता है। भारतीय साहित्य को पढ़ने से भारतीय समाज के बारे में जान पाते है। इस इकाई में हम भारतीय साहित्य का सामाजिक स्वरूप और भारतीय साहित्य की एकता के आधार तत्वों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

रूपरेखा

2.1. प्रस्तावना

2.2.भारतीय साहित्य का सामाजिक स्वरूप

2.3. भारतीय साहित्य की एकता के आधार तत्व

2.4. भारतीयता का समाजशास्त

2.5. सारांश

2.6. बोध प्रश्न

2.7. सहायक ग्रंथ

21. प्रस्तावना

समाज का आधार और मानव का मस्तिष्क साहित्य है। साहित्य का परिभाषा को बताते हुए पाश्चात्य साहित्यकार ने कहा कि "Literature is the brain of humanity" 'साहित्य मानव का मस्तिष्क है'। इसका अर्थ है जिस प्रकार किसी व्यक्ति के अनुभव, विचार एवं आकांक्षाओं का संचय उसके मस्तिष्क में रहता है, ठीक उसी प्रकार मानव-समाज के अनुभव, विचार एवं आकांक्षाएँ साहित्य में समाहित रहती है। साहित्य द्वारा ही हमारे अपने पूर्वजों से परिचय होता है। आज हम साहित्य का अध्ययन करके ही हमारे पूर्वज महापुरुष, संत, पंडित, कवि, साधु सत्पुरुषों का परिचय प्राप्त कर पाते हैं। आधुनिक शास्त्रज्ञों के बारे में, उनके ज्ञान विज्ञान से संबंधित साहित्य को पढ़ने से ही ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। अतएव यदि साहित्य का माध्यम न होता तो हम उनके विचारों से पूर्ण अनभिज्ञ रहते और हमारा मानसिक विकास पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता। अतएव साहित्य और समाज का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। साहित्यकार समाज का प्राण होता है। इस इकाई में हम साहित्य और समाज का संबंध, भारतीय साहित्य की एकता के आधार तत्व समाजशास्त्र के बारे में विस्तृत रूप में चर्चा करेंगे।

1.2. भारतीय साहित्य का सामाजिक स्वरूप

साहित्य समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण सहायक सिद्ध होता है और शक्ति प्रदान करता है। जैसे शरीर की उन्नति जलवायु, भोजन, प्रकाशादि पर निर्भर है, उसी प्रकार मस्तिष्क की उन्नति साहित्य पर अवलम्बित है। यदि शरीर को भोजन प्राप्त न हो तो वह जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार मस्तिष्क को यदि साहित्य रूपी भोजन प्राप्त न हो तो वह शक्तिहीन हो जाता है। मस्तिष्क के अविकसित रहने से समाज की उन्नति में बाधा आती है। सभ्यता का विकास नहीं हो पाता और ज्ञान का प्रसार अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि साहित्य के अभाव में समाज की पूर्ण क्षति होती है।

साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध पाया जाता है। दोनों परस्पर एक- दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं। इसीलिए अच्छा या बुरा जैसा भी समाज होता है वैसा ही अच्छा या बुरा साहित्य निर्मित होता है। इसके विपरीत जैसा साहित्य होता है, वैसा ही रूप समाज धारण कर लेता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। जनता की चित्तवृत्तियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का सबसे सुन्दर उदाहरण है। वीरगाथा काल में देश की धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति किस प्रकार थी? यह तत्कालीन साहित्य से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। भक्तिकाल में हिन्दी जनता के हृदय में निराशा का संचार हो रहा था, उन पर अमानुषिक अत्याचार हो रहे थे, उनके समक्ष ही मन्दिर गिराये जाते थे और मूर्तियाँ तोडी जाती थीं तथा धर्म-ग्रन्थ जलाये जाते थे, वह इन अत्याचारों को असमर्थ के समान सहन करते थे। उस समय भगवान को छोड़कर उन्हें कोई दूसरा आधार न था। भक्ति काल के कविता पर इन सभी चित्तवृत्तियों का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। इसी तरह मध्यकाल और आधुनिक काल के साहित्य पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि साहित्य द्वारा किसी समाज के अच्छे या बुरे, उन्नत या अवनत, विकसित या अविकसित होने का हमें प्रमाण मिलता है।

वस्तुतः वातावरण के अनुसार जीवन का विकास होता है। समाज का वातावरण मनुष्य का वातावरण है। समाज के वातावरण से महात्मा तुलसीदास जैसे महात्मा भी न बच सके। उनकी रचनाओं में सोलहवीं सदी के वातावरण की स्पष्ट छाप मिलती है। अंतः व्यक्ति समाज की भावनाओं, विचारों, रुढियों एवं परंपराओं को बीज रूप में प्राप्त करके फूलता और फलता है तथा वे ही भावनाएँ, वे ही विचार, वे ही रूढ़ियाँ उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार साहित्य पर समाज अपना प्रतिबिम्ब डालता है और उसे अपने अनुरूप बनाता रहता है। यह स्वाभाविक नियम सभी देशों, सभी कालों सभी जातियों में निरन्तर अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करता रहता है।

साहित्यकार अपनी प्रतिभा के द्वारा समाज में व्याप्त सूक्ष्म और प्रमुख समस्याओं को अपनी रचनाओं के द्वारा लाता है। वह अपने समय की प्रतिनिधि कहलाता है। जिन समस्याओं का ज्ञान सामान्य प्रजा को नहीं होता उनको अपनी रचनाओं के द्वारा उजागर करके समाज का शक्तिशाली बनाता है। प्रजा में बने रहे विकारों को दूर करते हैं। समाज को स्वस्थ और क्रियाशील बनाता है। अपनी रचनाओं के द्वारा नए रस की सृष्टि करके समाज को आनन्द भी प्रदान करता है।

अठारहवीं, उन्नीसवीं सदी के भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का झलक दिखाई देता है। उसमें राष्ट्रीयता, कुरीतियों के प्रति घृणा एवं पराधीनता से उत्पन्न खिन्नता आदि व्याप्त है। स्वतंत्रता आन्दोलन में साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा। देश के प्रति श्रद्धा, प्रेम, त्याग आदि भावनाओं से ओतप्रेत रचनाएँ समाज को उन्तेजित करके

भारत को पराधीन से स्वतंत्रता दिलायी थी। लेकिन की आजकल साहित्य व्यक्तिगत बनते जा रहे हैं। क्यों कि समाज की नीति और अनीति में साहित्य का विश्वास अब कम हो गयी। समाज भी साहित्य की मान्यताओं से किसी प्रकार भी सहमत नहीं है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। वर्तमान भारतीय साहित्य भारतवासियों में जागृति, प्रेरणा उत्पन्न करने वाला, राष्ट्रीय भाव भरने वाला, प्रगति के ओर दिशा निर्देश करने वाला है, इसमें संदेह नहीं। साहित्य में अद्भुत शक्ति होती है। जिस प्रकार आपक्व और अरुचि भोजन शरीर को दूषित कर देता है उसी प्रकार कुरुचिपूर्ण साहित्य मस्तिष्क को दूषित कर देता है। अतः समाज के उत्थान और पतन का कारण साहित्य ही है। सत्साहित्य ही समाज के व्यक्तियों में आत्मगौरव का भाव दृढ़ करता है, आदर्श पथ पर चलता सिखाता है। वह समाज में एकता, प्रेम और सद्भावना का संगीत भर देता है। ऐसे साहित्य के सृजन से देश, जाति और समाज का कल्याण होते हैं।

साहित्य और जीवन का घनिष्ट संबंध है। साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है। साहित्य को जीवन से और जीवन को साहित्य से पृथक नहीं किया जा सकता। साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति और उसकी वास्तविकता दोनों होती हैं। साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चलता है। किसी भी देश या समाज की सभ्यता, संस्कृति, देश काल परिस्थितियों के बारे में हमें साहित्य के कारण ही मालूम होता है। साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं में युग समस्त जटिलताओं और समस्याओं को जीवन से ग्रहण कर हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देता है। वस्तुत: साहित्य का सृजन इसलिए करते हैं कि समाज के चारों ओर की परिस्थितियाँ प्रेरित करती हैं। कलाकार का भावुक हृदय सुख-दुःखों से द्रवीभूत हो उठता है। वह अपने हृदय की शान्ति पाने के लिए ही अपने हृदय का भार इस रूप में हलका कर लेता है। आशय यह है कि जब साहित्यकार का भावुक हृदय अपनी लेखनी से जीवन की समस्याओं को सुलझाने लगता है, तभी साहित्य का निर्माण होता है। समाज की कुरीतियों, बुराइयों को देखकर साहित्यकार अपनी कृतियों के द्वारा उन्हें मिठाने का प्रयत्न करता है। साहित्यकार समाज की बुराइयों को दूर कर समाज में चेतना भरता है, उसे सजग बनाता है। वह समाज का पथ-प्रदर्शन कराता है। आदिकाल से आधुनिक काल तक मानव- जीवन की समस्त भावनाएँ, आकांक्षाएँ, विकृतियाँ और मानव जाति का हित साहित्य में प्रतिबिम्बित होता चला आ रहा है। उदाहरण के लिए शरतचन्द्र और प्रेमचंद के उपन्यास 'बड़ी बहन', ''देवदास' और 'गोदान' आदि को पढ़कर हम उस समय की सामाजिक कुरूतियों, रुढ़ियों, अन्धविश्वासों यहाँ तक कि जनता के विचारों की गहराई तक पहुँच जाते हैं। साहित्य दर्पण के रूप में काम करते हुए समान को यथा तथ्य हमारे सामने लाते हैं और समस्याओं के समाधान ढूंढने में सहायक सिद्ध भी बन जाता है।

2.3. भारतीय साहित्य की एकता के आधार तत्व

भारतीय साहित्य की आत्मा एक है। जिस प्रकार अनेक धर्मों, विचारधाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति एक है, इसी प्रकार अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य एक है। इस मौलिक एकता के लिए आधार तत्व इस प्रकार है।

1. भारतीय भाषाओं का समान जन्म-काल

लगभग सभी भारतीय भाषाओं का आविर्भाव काल समान है। तेलुगु के आदि कवि नन्नय्या, कन्नड़ उपलब्ध ग्रंथ 'कविराजमार्ग' रचनाकार 'नरेश नृपतुंग', मलयालम की प्रथम रचना 'रामचरित' लगभग 11वीं, 13वीं शताब्दी के आस पास के हैं। गुजराती और मराठी का आविर्भाव काल लगभग बारहवीं सदी में ही हैं। असमिया,

उड़िया के साहित्य का आविर्भाव भी तेरह वीं सदी में ही हुआ है। पंजाबी और हिन्दी में भी ग्यारहवीं सदी से ही व्यवस्थित साहित्य की उपलब्धि मानी जाती है।

2. आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास के समान चरण

आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास के चरण भी प्रायः समान ही हैं। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का आदिकाल पन्द्रहवीं सदी तक चलता है। पूर्व मध्यकाल या भक्ति युग, उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल, अंग्रेजी सत्ता की स्थापना, आधुनिक युग का प्रारंभ आदि प्राय: सभी भारतीय भाषाओं का साहित्य चार चरणों में विभक्त है और अधिकांश साहित्य का विकास क्रम लगभग एक-सा ही है।

जहाँ तक राजनीतिक जीवन का विकासक्रम है वह यह कि भारतवर्ष में शताब्दियों तक राजनीति व्यवस्था एक समान रही है। मुगलों का शासनकाल में, राजपूतों का शासनकाल, अंग्रेजों के शासन व्यवस्था पूरे भारत एक ही तरह रहा था। भारत के विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों की राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य रहा है।

सांस्कृतिक जीवन का विकास क्रम भी लगभग एक सा रहा है। देश में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन हुए, जिनका प्रभाव भारतव्यापी था। इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप शैव-शाक्त धर्मों के संयोग से नाथ सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ जो उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक फैला हुआ था। बौद्ध धर्म के ह्रास के फलस्वरूप सिद्ध सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। भारतीय साहित्य के विकास के प्रथम चरण में इन सम्प्रदायों का प्रभाव प्राय: विद्यमान था। इसके बाद संत, सूफी सम्प्रदायों का प्रचार उत्तर पश्चिम से दक्षिण तक फैल गए। इसके पश्चात वैष्णव भक्ति आन्दोलन का आरम्भ हुआ, जो समस्त देश में बड़े वेग से व्याप्त हो गया। राम और कृष्ण की भक्ति की अनेक सगुण भक्ति पद्धतियों का प्रचार प्रसार खारे राष्ट्र में फैल गया। अंग्रेजों के आगमन से सारे देश में उनकी शिक्षा, संस्कृति के माध्यम से अपने धर्म का प्रसार-प्रचार करने लगे। इसी प्राच्य और पाश्चात्य के सम्पर्क से आधुनिक भारत का जन्म हुआ।

3. भारतीय साहित्य का समान साहित्यिक रिक्थ (उत्तराधिकार संपत्ति)

भारत की भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं है। फिर भी उनका साहित्यिक रिक्त समान ही है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, कालिदास, भवभूति आदि की अमर कृतियाँ, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला है। उपनिषद, स्मृतियाँ काव्यशास्त्र अनेक ग्रन्थ जैसे भरत का 'नाट्यशास्त्र', आनंदवर्धन का 'ध्वन्यालोक' मम्मट का 'काव्यप्रकाश' आदि का सभी ने निरन्तर उपयोग किया है। वस्तुतः भारतीय भाषाओं के थे ग्रंथ अक्षय, प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। इनसे प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूलभूत समानता स्वत: ही आ गयी है। अतः उनमें एक समान प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है, वे समान प्रवृत्तियाँ

इस प्रकार है-

अ) नाथ साहित्य की प्रवृत्ति

प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में नाथपतियों और शिवभवतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दक्षिण भारत में नाथ साहित्य का सृजन पूर्वी और उत्तरी भारत की अपेक्षा कम हुआ है। दक्षिण में शिव की सगुण भक्ति ही प्रमुख थी। यही कारण है कि तमिल के नायनमार, तेलुगु के पाल्कुरिकि तथा उनके परवर्ती कवि, कन्नड़ के

वीर शैवनाद के उन्नायक बसवेश्वर आदि उत्तर भारत के नाथ और सिद्ध कवियों से मूलतः भिन्न थे। दक्षिण भारत के कवि शुद्ध भक्त कवि थे, उत्तर और पूर्व के सिद्ध और नाथ कवि योगी अथवा तान्त्रिक साधक थे। फिर भी नाथ पंथियों का प्रभाव सुदूर दक्षिण तक पहुँच गया था। मराठी और बंगला में भी नाथ साहित्य प्रवाहित हुई है। बंगला का नाथ साहित्य तो गुण और परिमाण दोनों की दृष्टियों से सर्वाधिक समृद्ध हैं। असमिया और उड़िया के साहित्य में नाथ साहित्य का प्रभाव दिखता है। पंजाब में भी नाथ सम्प्रदाय का प्रभुत्व रहा है। हिन्दी में तो नाथ पंतियों की अनेक गद्य-पद्यमची रचनाएँ उपलब्ध हैं। इस प्रकार भारतीय साहित्य में नाथ साहित्य की एक व्यापक प्रवृत्ति विद्यमान है।

आ) चारण काव्य की प्रवृत्ति

भारत की अधिकांश भाषाओं में चारण वाव्य की प्रवृत्ति प्राय: समान है। तमिल में चारण- काव्य संगमकाल ई.पू. 500-200 के आरम्भ से ही मिलता है। संगम युग का प्रसिद्ध महाकाव्य सिलापदिकारम् एक प्रकार से चारण काव्य है। तेलुगु में श्रीनाथ का 'पलनाटि चरित्रमु' चारण काव्य का अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य है। मलयालम के आदिम काव्य संग्रह 'पद्मय पाट्टुकल' में अनेक चरित्रा गीत हैं। पावडे के गीतों में चारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं और वीरों का यशोगान किया है। गुजराती साहित्य में श्रीधर रचित 'रसमल्लछंद' आदि अनेक वीर रस प्रधान काव्य लिखे गये है। हिन्दी साहित्य में तो आदिकाल का नाम ही वीरगाथाकाल या चारणकाल है।

इ) संतकाव्य की प्रवृत्ति

सन्त काव्य की परम्परा भी प्रायः अधिकांशतः भारतीय साहित्य में देखने को मिलती है। तमिल के 'अठारह सिद्धर' सन्त कवि, तेलुगु में वेमन, वीरब्रह्म, कन्नड के सर्वज्ञ आदि संत परंपरा के कवि हैं। मराठी का सन्त काव्य तो अत्यन्त प्रसिद्ध है। सन्त ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ आदि मराठी में अन्त काव्य को अत्यन्त समृद्ध किया है। गुजराती में उरवे की रचनाओं में, बंगला में बाउल गीतों में, उड़िया के कंध कवि, पंजाबी में गुरुनानक तथा अन्य सिख कवियों के द्वारा सन्त काव्य का अनन्त, भण्डार विद्यमान हैं। हिन्दी में सन्त काव्य परंपरा में कबीर, दादू आदि द्वारा रचित विपुल साहित्य है।

(ई) प्रेमाख्यानक काव्य की प्रवृत्ति

प्रेमाख्यानक काव्य की परम्परा भी भारतीय साहित्य में समान रूप में व्याप्त है। तेलुगु के 'राजशेश्वर चरित्रमु' चंद्रलोश्वाविलासम, गुजराती में 'हँसाबल', 'विद्याविलासिनी', 'नंदबत्तीस', 'ढोलक- मारू चौपाई' आदि प्रसिद्ध प्रेमाख्यानक काव्य हैं। बंगला में विद्यासुन्दर की प्रणय गाथा को लेकर अनेक कवियों ने प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है। पंजाबी और हिन्दी में तो प्रेमाख्यानक काव्यों का परम्परा अत्यन्त व्यापक है।

उ) वैष्णव काव्य की प्रवृत्ति

यह भारतीय साहित्य की सबसे प्रबल प्रवृत्ति है। दक्षिण की भाषाओं में वैष्णव भक्ति भावना का प्राबल्य अपेक्षाकृत अधिक है। तमिल में वैष्णव साहित्य का संग्रह 'नालाचिरप्रबंधम' नाम से प्रसिद्ध है। इसके रचयिता बारह आलवार भक्त हैं। तेलुगु में रामकाव्य और कृष्णकाव्य दोनों ही धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। प्राचीन कन्नड़ साहित्य के इतिहास का तृतीय चरण वैष्णवकाल के नाम से प्रसिद्ध है। मलयालम में वैष्णव काव्य का आदि ग्रन्थ पन्द्रहवीं शती में रचित 'कृष्णगाथा' है। मराठी में एकनाथ ने भागवत धर्म का प्रचार-प्रसार किया है। सन्त तुकाराम ने वैष्णव भक्ति भाव को अभिव्यक्ति दी है। गुजराती में कृष्ण भक्ति की प्रधानता है। बंगला के चैतन्य महाप्रभु, चंडीदास से मधुर रस की

धारा प्रवाहित हुई है। बँगला के भक्त कवियों में कृष्ण भक्ति की ही प्रमुखता रही है। असमिया साहित्य में भी रामकाव्य के प्रमुख कवि माधम कंदलि, शंकरदेव और माधवदेव जिन्होंने असमिया रामायण की रचना की है। उड़िया के प्रमुख कृष्ण भक्ति कवि अभिमन्यु सामत, कवि सूर्य बलदेव आदि है। रामकाव्य के अन्तर्गत बलरामदास की उड़िया रामायण प्रमुख है। पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह ने राम और कृष्ण का चरिलमान किया है। हिन्दी में तो वैष्णव काव्य का अनन्त भण्डार विद्यमान है।

ऊ) आधुनिक काव्य की समान प्रवृत्ति

लगभग सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग का सूत्रपात सन् 1857 की क्रांति के आस-पास ही होता है। हिन्दी के समान ही सभी भारतीय आधुनिक साहित्य में पुनर्जागरण, जागरण सुधार, रोमानी सौन्दर्य दृष्टि साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय हुआ। तमिल के कवि सुब्रह्मण्य भारती ने भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्रान्ति को अपने काव्य में वाणी प्रदान की है। तेलुगु के पुनर्जागरण युग का नेतृत्व वीरेशलिंगम ने किया। कन्नड़ में श्रीकठैया, शंकर भट्ट आदि ने देशभक्ति से परिपूर्ण वीरगीतों की रचना की। मलयालम में केरल वर्मा, वेनमणि, मराठी में अनेक कवियों ने राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत गीतों की रचना की है। गुजरात के नर्मद, भारतेंद्र के समकालीन थे। बंगला में ईश्वर गुप्त, बंकिमचन्द्र आदि ने नवीन युग का प्रवर्तन किया है। असमिया और उड़िया में भी आधुनिक साहित्य की गतिविधि प्रायः समान रही है। पंजाबी, उर्दू, हिन्दी में 19वीं सदी के मध्य में नवजागरण का प्रारम्भ होने लगा था।

इस प्रकार कुछ कठिनाइयों के बावजूद अनेक भाषाओं में रचित भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त विचार प्रायः एक समान है। 'भारतीय सभ्यता की तरह, भारतीय साहित्य का भी विकास, जो एक प्रकार से उसकी सटीक अभिव्यक्ति है, सामासिक रूप में हुआ है। इसमें अनेक युगों, प्रजातियों और धर्मों का प्रभाव परिलक्षित होता है और सांस्कृतिक चेतना तथा बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तर मिलते है। अत्यन्त प्राचीन विकास क्रम के अतिरिक्त इसमें दो अन्य विशेषताएँ भी हैं, जो सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को अपूर्व गौरव प्रदान करती हैं। एक है तीन हजार से अधिक वर्षों तक व्याप्त अखण्ड सृजन परम्परा और दूसरी है वर्तमान में जीवित अतीत की प्राणवन्त चेतना'। भारतीय साहित्य एक है- विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें व्यापक अर्थ में वाङ्मय के समस्त रूपों, धार्मिक और लौकिक महाकाव्य, प्रगति-काव्य, नाटक, नीति-काव्य तथा गाय में रचित कथा आख्यायिका, शास्त्र आदि का अन्तर्भाव है।

भारतीय साहित्य में आज के भारत का बिम्ब

भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ऐसी अनेक समान प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जिनको समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में देखा जा सकता है। मध्य युग के भक्ति आंदोलन आदि में संपूर्ण भारत में रामकथा, कृष्णा कथा का समान प्रभाव रहा है। भारतीय साहित्य की यह समानता उस युग में विद्यमान रही है, जब भारतीय जनमानस की एकात्मता और समरसता में प्राकृतिक और राजनैतिक अवरोध विद्यमान थे। अंग्रेजों के आगमन से देश में एक ही शासन पद्धति का विकास हुआ। यातायात के साधन, वैज्ञानिक विकास, समान कानून, आदि समस्त भारतीयों को एक दूसरे के निकट लाए हैं। क्षेत्रीय बंधनों से मुक्त भारतीय साहित्य में संपूर्ण भारत का बिम्ब झलकने लगा है। आधुनिक युग में भारत में घटी दो घटनाएँ - भारत का स्वाधीनता संघर्ष, स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतंत्र की स्थापना से भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का साहित्य में स्थापना राष्ट्र की समस्याओं के बारे में साहित्य में बताना शुरु हुआ। अतः आज के भारतीय साहित्य में सम्पूर्ण भारत की आत्मा की आवाज भाषा भेद, क्षेत्र-भेद के बावजूद लक्षित होती है।

आधुनिकता का उदय, पुनर्जागरण, राष्ट्रीय चेतना, साम्यवादी प्रभाव, स्वाधीनता और उसके बाद के परिणामों का झलक संपूर्ण भारतीय साहित्य में दिखने वाले समान अंश है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय जन-जीवन में व्यापक परिवर्तन हुए। आजादी के बाद देश के युवा के सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। अशिक्षा, बेरोजगारी, निर्धनता जैसी आर्थिक समस्याएँ, दहेज, नारी शोषण, दलितों का शोषण जैसी सामाजिक समस्याएँ तथा भ्रष्टाचार, लूट, अराजकता, आतंकवाद जैसी समस्याएँ भारतीय समाज के समक्ष यथावत रहीं। आज के भारत का यह चित्र समग्र भारतीय साहित्य में मिलता है। आज के भारत की समस्याओं का चित्रण समकालीन भारतीय साहित्य में न केवल देखा जा सकता बल्कि एक लेखक का प्रभाव दूसरे लेखक में भी देख सकते हैं। लेखकों ने भारतीय जन-जीवन को ही नहीं हर क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों को सहजता से प्रस्तुत किया है। भारत के विभिन्न भाषाओं में पारस्परिक आदान-प्रदान की स्थिति बनी रही है। अधिक तर भारतीय भाषाओं में तद्भव शब्दावली जो संस्कृत से विकसित हुई है तो परिणामस्वरूप भाषिक आदान-प्रदान में कठिनाई भी नहीं आयी। हिन्दी को राष्ट्र भाषा हिन्दी बनाने के बाद हिन्दी में भारतीय भाषाओं के शब्द बढ़े हैं तथा शब्दावली का प्रयोग अन्य भाषाओं में बढ़ा है। हिन्दी का साहित्य सम्पूर्ण भारत के लोगों द्वारा समृद्ध हो रहा है तो भारतीय साहित्य को भी हिन्दी के माध्यम से लोकप्रियता मिल रही है। इस प्रकार आज का भारतीय साहित्य न केवल क्षेत्रीय साहित्य का संघ है वरन हिन्दी साहित्य का भी अंग है। भारतीय संघ की भाँति भारतीय साहित्य भी क्षेत्रीय होने के साथ राष्ट्रीयता के विकास में संधीभूत होकर एक भाषा, एक विचार, एक संस्कृति का उद्घोष कर रहा है। यही अनेकता में एकता का स्वर है।

सूचना क्रांति के आधुनिक युग में घटनाएँ पूरे देश को एक साथ प्रभावित करती हैं। इसलिए आज का भारतीय साहित्य किसी क्षेत्र की समस्या को लेकर नहीं वरन राष्ट्रीय समस्याओं को एक साथ प्रस्तुत करने में समर्थ है। इसीलिए समकालीन भारतीय साहित्य को पढ़ते समय प्रादेशिकता के स्थान पर समग्रता का बोध होता है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य की प्राचीन काल से दो मुख्य भाषिक धारायें रही हैं - (1) द्रविड़ कुल और (2) आर्यकुल। भाषिक धाराओं की विभिन्नता के बावजूद साहित्यिक धाराओं दोनों कुलों की समान रही हैं। द्रविड़ कुल के आदि आचार्य अग्रस्तर संस्कृत परिवार के सम्मानित सदस्य और भगवान राम के आराधक रहे हैं। अतः साहित्यिक धाराएँ मूलतः राम, कृष्ण, शिव को केन्द्र में रखकर प्रारम्भ हुई। कालान्तर में बौद्ध और जैन धर्म की रचनाएँ सभी भाषाओं में मिलती हैं। आज के भारतीय साहित्य की परम्पराएँ भी समान है। आज की भारतीय भाषाओं के साहित्य का विकास प्रायः एक साथ हुआ। सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य पर नाथों और सिद्धों का प्रभाव है। इस प्रकार की भक्ति का उन्मेष सभी भारतीयों के साहित्य में साथ-साथ हुआ। स्वतंत्रता संघर्ष का उद्घोष भी सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हुआ। प्रगतिशील आन्दोलन भी एक साथ विकसित हुआ। आधुनिक हिन्दी गद्य की भाँति सभी भारतीय भाषाओं में गद्य विधाओं का विकास अंग्रेजों के आगमन के पश्चात ही प्रारंभ हुआ। समग्र रूप से आज के भारतीय साहित्य का मूल्यांकन करने पर जो प्रमुख बिन्दु सामने आते है- आज के भारतीय साहित्य की सामान्य विशेषताएँ जो है वे इस प्रकार है-

1. आज की सभी भाषाओं के साहित्य में सामाजिक परिवर्तन का स्वर समान रूप से मिलता है।

2. सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में दलित-चिंतन की विचारधारा और दलित विमर्श केंद्रीय तत्व हैं।

3. आज के भारतीय साहित्य में नारीवादी विमर्श का स्वर समान रूप से मिलता है।

4. सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में केंद्रीय विद्या के रूप में कथा - साहित्य का महत्व कविता से अधिक बढ़ा है। हिन्दी ही नहीं बंगला, पंजाबी, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में उपन्यास एवं कहानी को प्रमुखता मिली है।

5. भारतीय भाषाओं के साहित्य में भ्रष्टाचार, राजनीतिज्ञों के विरुद्ध वातावरण तथा पूँजीवादी शक्तियों के विरुद्ध आक्रोश मुखर है।

6. स्थान भेद एवं भाषा भेद के बावजूद भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में व्यवस्था के प्रति विद्रोह, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और आमदनी की स्थिति का चित्रण मिलता है।

7. सभी भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वर समान रूप में मुखरित हो रहा है।

8. सभी भारतीय भाषाओं का साहित्य अनुवाद के कारण दूसरी भाषा के साहित्य को प्रभावित करने में अधिक समर्थ है और अनेक साहित्यकार अपनी मूल भाषा से अधिक अनुवाद भाषा में प्रसिद्ध हुए हैं।

9. आज के भारतीय साहित्य में सामाजिक क्षेत्र का विस्तार हुआ है और हर भाषा की शब्दावली यहाँ तक कि अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग बहुलता से हो रहा है।

2.4. भारतीयता का समाजशास्त्र

समाज द्वारा विचार प्रदान करने का माध्यम भाषा है और साहित्य की अभिव्यक्ति का भी माध्यम भाषा होती है। अतएव साहित्य और समाज का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। वे एक प्रकार से अन्योन्याश्रित होते हैं, क्योंकि साहित्यकार समाज से प्रभाव ग्रहण करता है और साहित्य समाज को प्रभावित करता है। साहित्य समाज का मनोरंजन भी करता है और उसमें परिवर्तन, सुधार एवं क्रांति तक करता है। साहित्य समाज अथवा जीवन के लिए है, अथवा नहीं है- इस सम्बन्ध में मतभेद है। इस मत भेद का प्रारंभ तो प्राचीन काल से ही रहा था। यूरोप में प्राचीन काल के लेखक कहते थे कि - कला - कला के लिए है। इटली के निवासी बैनाडोटे क्रोचे अपने अभिव्यंजनवाद द्वारा इस में बदलाव लाया था। इंग्लैंड के समालोचक आई. ए. रिचर्ड्स ने कला अथवा काव्य के दो रूप स्वीकार किए - निवृत्तिपरक और प्रवृत्तिपरक। उन्होंने साहित्य को जीवन-मूल्य से जोड़कर कला को समाज सापेक्ष बना दिया। प्राचीन और नवीन दोनों मान्यताओं के अनुसार समाज, और साहित्य का घनिष्ठ संबंध है। समाज साहित्य के पहले भी रहता है और बाद में भी रहता है। रचना के बाद साहित्य रहता है समाज सम्बोधन के रूप में, क्योंकि रचना समाज के लिए होती है। समाज के हित के लिए साहित्य का भाव है सहित। साहित्य के शब्दार्थ को दो रूपों में किया जाता है- शब्द और अर्थ के साथ-साथ चलना और दूसरा अर्थ है व्यक्ति और समाज के हित का एकाकार होना। साहित्यकार के लिए समाज की अपेक्षा समाज का हित अधिक महत्वपूर्ण होता है। यदि समाज में कोई दोष था विरूपता है तो साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह उस दोष या विरूपता को उजागर करे और साथ ही उसका निराकरण करके समाज के हित का मार्ग प्रशस्त करे। साहित्य का लक्ष्य सामाजिक प्रक्रिया का मात्र विश्लेषण नहीं है और न उसका मनोरंजन करना मात्र है। साहित्य का लक्ष्य है समाज की रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार बौद्धिक सामग्री प्रस्तुत करना। साहित्य वस्तुतः समाज में रहते समाज से परे सोचने का व्यापार है। साहित्यकार एक प्रकार से दोहरे दायित्व का निर्वाह करता है - समाज के सदस्य के रूप में और समाज के परीक्षक के रूप में। वह समाज का परीक्षण वस्तु के रूप में आत्म के रूप में करता है। साहित्यकार वस्तुतः समाज में श्रेष्ठतम है, सुन्दरतम है, उसका चयन करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य और समाज का सम्बन्ध बहुत जटिल, गहरा और विशिष्ट है।

साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य-समीक्षा के लिए आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य है। साहित्य की रचना की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए उसके अनुकूल समाज-शास्त्रीय पद्धति का निर्धारण किया जाना चाहिए या निर्धारण किया जा सकता है। साहित्य का समाजशास्त्र अपने में एक स्वतंत्र विषय है। साहित्य के समाज में व्यक्ति और रागात्मक आत्मीयता और समाज के सम्बन्धों पर विचार अपेक्षित है। यह विचार करना भी आवश्यक है कि साहित्य किस रूप में समाज की मूल्य चेतना का विकास करता है।

साहित्य का समाजशास्त्र या साहित्यकार अपनी रचनाओं में समाज के हित के लिए लिखना आदि अंशों को लेकर प्राचीन और आधुनिक विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किया है। डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त ने साहित्य के समाजशास्त्र को एक सम्पूर्ण अनुशासन के रूप में प्रतिस्थापित किया है। उन्होंने लिखा है कि 'साहित्य समाज की सीमित और जड़ स्थिति के बाहर जाकर उसके प्रभु विष्णु रूप का साक्षात्कार करने में समर्थ है। इस दृष्टि से शोध-कार्य करने पर साहित्य की समझ बढ़ेगी और उसकी रचना - प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। साहित्यकार को नई चेतना मिलेगी और प्रबुद्ध पाठक को आत्मनिरीक्षण का अवसर मिलेगा कि मेरी रुचि समाज के सन्दर्भ में कितनी प्रकार एवं हितकर है तथा साहित्य की रचना के लिए कितनी प्रेरक है?' डॉ. राजेश्वर प्रसाद के कथानुसार 'एक कृतिकार के विचारों, उसकी अभिव्यक्ति एवं बाह्य आकांराओं के निर्माण में मानवीय अन्तः क्रियाओं एवं सामाजिक- सांस्कृतिक प्रतिमानों का महत्वपूर्ण योग रहता है।'

कला सामान्य रूप से और साहित्य विशेष रूप से समाज सापेक्ष होती है। साहित्य का समाजशास्त्र अपना विशिष्ट महत्व रखता है। साहित्य समाज को प्रभावित करता है, वह समाज का नियामक होता है। किसी साहित्यक कृति को पढ़ने के बाद प्रत्येक पाठक अपने जीवन में झाँक कर यह बताए कि अमुक कृति को पढ़ने के उपरान्त उसके जीवन में क्या परिवर्तन आया है क्या उनके व्यवहार सामूहिक अन्त: प्रक्रियाओं, रिश्तों आदि पर साहित्य पढ़ने से कोई असर पड़ा है ? अस्तु साहित्य का समाजशास्त्र कला के समाजशास्त्र से, संस्कृत के समाजशास्त्र से जुड़ा हुआ है। कला अन्य अधि-संरचनाओं की तरह ही है जो आर्थिक संरचना के परिवर्तन से जुड़ी है।

समाजशास्त्र के सन्दर्भ में साहित्य - ज्ञान की व्यवस्थित शाखा के रूप में साहित्य - समाजशास्त्र (Sociology of literature) की स्थापना ने समाजशास्त्रियों को समाज के सन्दर्भ में साहित्य का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया है। साहित्य समाजशास्त्री के लिए साहित्य मात्र कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, उसकी दृष्टि में मात्र कलात्मक मानदण्डको के सन्दर्भ में साहित्य का विश्लेषण एवं अध्ययन अपर्याप्त है। डॉ. विशम्भर दयाल गुप्त कहते हैं – 'कला कला के लिए सिद्धांत के अवमूल्यन वैचारिक दर्शन की सामाजिक उत्पत्ति आत्म-तुष्टि की अपेक्षा कला के समाज कल्याण प्रयोजन के प्रति लगाव, कला और समाज की कार्य-कारण अन्योन्याश्रित, साहित्य श्रेष्ठतर के नवीन मापदण्ड तथा साहित्य सर्जन की नवीन मान्यताएँ, साहित्य विश्लेषण की परम्परागत विश्लेषण से हटकर नवीन अध्ययन उपागमों की स्थापना हेतु प्रेरित करती हैं। साहित्य का समाजशास्त्रीय उपागम इसी भावना का परिणाम है।' साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन उपागम हेतु कृति एक महत्वपूर्ण आधार है। कृति के उद्भव, विकास एवं अस्तित्व के लिए उत्तरदायी इकाइयाँ, लेखक-प्रकाशक पाठक, आलोचक वर्ग की अन्तः क्रियाओं से निर्मित साहित्य-संरचना, उनकी भूमिका एवं पारस्परिक प्रभाव तथा मानव व्यवहार पर कृति के प्रभावों का अध्ययन साहित्य का समाजशास्त्रीय आधार प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर साहित्य सर्जन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को बोधगम्य बनाया जा सकता है। 18वीं 19वीं सदी के साम्यवादी विचारकों जैसे हेगल, कार्लमार्क्स आदि ने साहित्य को समाज की अभिव्यक्ति, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति आदि के रूप में स्वीकार किया है। कार्ल मार्क्स की मान्यता है- 'जीवन के भौतिक साधनों के

उपन्यास के तरीके सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक जीवन की समूची प्रक्रिया को निर्धारित करते हैं। लोगों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित ही नहीं करती, बल्कि इसके प्रतिकूल उनका सामाजिक अस्तित्व ही उनकी चेतना को निर्धारित करता है।'

साहित्य और समाज के विषय में बाबू गुलाबराय का मत है- 'साहित्य हमारे समाज का प्रतिबिम्ब ही नहीं, वह उसका नियामक और उन्नायक भी है। वह मानव सम्बन्धों को दृढ़ बनाता है, समाज को संगठित करता है तथा जातीय जीवन का वर्धक है। वह हमें सांस्कृतिक और जातीय एकता में बद करता है।' स्पष्ट है कि साहित्य मानव व्यवहार एवं समाज का नियामक है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के पिछड़े रहने पर भी साहित्य का समाजशास्त्रीय इस बारे में सदैव जागरूक रहा है कि साहित्य सामाजिक नियोजन का महत्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार साहित्य समाज को प्रभावित करता है तथा नियन्त्रण एवं व्यवस्था बनाए रखने में सहायक होता है। यह कार्य वह मूल्यों व्यवहार प्रतिमानों एवं मनोवृत्तियों के परिष्करण, समाजीकरण आदि के रूप में प्रभाव एवं सम्प्रेषण द्वारा करता है।

आधुनिक काल के भारतेन्दु हरिश्चंद्र, रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की तथा उसको संगठित करने की दिशा में योग दिया। साहित्य में जो शक्ति छिपि है, वह तोप, तलवार और बम्ब के गोले में भी नहीं पाई जाती। संक्षेप में साहित्यकार को समाज के नव- निर्माण के प्रति उन्मुख होना चाहिए। साहित्यकार को समाज-सुधारक की भूमिका का निर्वाह करना है। समाज की कुरीतियों और अन्धविश्वासों का उन्मूलन वही कर सकता है। साहित्य देश की आत्मा होता है। वह जनता के जीवन का साक्षी है। साहित्यकार न केवल समाज का ही चित्रण करता है, बल्कि वह उसकी बुराइयों को भी दूर कर समाज में चेतना भरता है, उसे सजग बनाता है। साहित्यकार समाज का पथ- प्रदर्शन करता है। मध्य युग में जीवन से निराश हिन्दू जनता में चेतना उत्पन्न करने का प्रयास साहित्यकारों ने किया था। तत्कालीन राम और कृष्ण का लोक-रक्षक और लोक-रंजक रूप प्रस्तुत कर तुलसी और सूर ने जनता को दिया स्वतंत्रता प्राप्त करने के पहले सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'झाँसी की रानी' आदि लिखकर भारतीयों को प्रोत्साहित किया। उस समय अनेक कवियों ने जनता के हृदय में जागृत उत्पन्न कर जन जीवन को आकृष्ट किया था। इस प्रकार के प्रेरणादायक साहित्य समस्त विश्व के साहित्य में मिलते है। इस प्रकार साहित्यकार समाज सुधारक का भूमिका भी निर्वाह करता है।

2.5. सारांश

साहित्य में मूलतः तीन विशेषताएँ होती है जो इसके महत्व को रेखांकित करती है। उदाहरण स्वरूप साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालांकि जहाँ दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वही साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान देता है। भारतीय साहित्य में भी साहित्यकार अतीत से लेकर आज तक अपने-अपने साहित्य में सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता, समाज के कुरीतियों आदि के स्वरूप को अपने-अपने स्थानीय क्षेत्रों के समकालीन अंशों से जोड़कर व्यक्त किए थे। साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य समीक्षा के लिए आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। साहित्य की रचना की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए उसके अनुकूल समाजशास्त्रीय पद्धति का निर्धारण किया जाना चाहिए या निर्धारण किया जा सकता है।

साहित्य का समाज शास्त्र अपने में एक स्वतंत्र विषय है। उसको समाज शास्त्र का अंग समझना, समाजशास्त्र और साहित्य के समाजशास्त्र दोनों के साथ अन्याय करना है। साहित्य के समाजशास्त्र में व्यक्ति और रागात्मक आत्मीयता और समाज के सम्बन्धों पर विचार अपेक्षित है। यह विचार करना भी आवश्यक है कि साहित्य किस रूप में समाज की मूल्य चेतना का विकास करता है।

2.6. बोध प्रश्न

1. भारतीय साहित्य की एकता के बारे में विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. भारतीयता का समाजशास्त्र से आपका अभिप्राय क्या है ?
3. भारतीय साहित्य का सामाजिक स्वरूप के बारे में सार गर्भित लेख लिखिए।
4. भारतीय साहित्य की सामान्य विशेषताएँ क्या है?

2.7. सहायक ग्रंथ

1.तुलनात्मक अध्ययन –

2. भारतीय साहित्य –

3. भारतीय साहित्य- संकलनकर्ता

डॉ. आर. आई. शान्ति

डॉ. प्रकाश ए.

4. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका - इन्द्रनाथ चौधुरी

5. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास- डॉ. नगेन्द्र

डॉ. एम. मंजुला

3. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ

3.0. उद्देश्य

भाषा के बिना साहित्य का अस्तित्व नहीं और मानव समाज के बिना भाषा का अस्तित्व असम्भव है। अतः किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखते समय यह जान लेना आवश्यक होता है कि उस भाषा का व्यवहार एवं प्रयोग करने वाले मानव-समाज का गठन का रूप क्या है, वह विकास की किस अवस्था में थी या है ? इस जानकारी के अभाव में उस समाज की भाषा के स्वरूप एवं इतिहास का विवेचन नहीं किया जा सकता है। अतः किसी भी साहित्य अध्ययन करना है तो पहले उस भाषा से संबंधित मानव समाज के बारे में, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेशों के बारे में जानना आवश्यक होता है। भारतीय साहित्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए पहले भारतीय समाज, संस्कृति को जानना आवश्यक है। इस इकाई में हम भारतीय साहित्य का अध्ययन करने के लिए किन समस्याओं से जूझना पड़ता है? इन को पार करके भारतीय साहित्य को समझाने के लिए आवश्यक अंशों के बारे में पढ़ेंगे।

रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना

3.2. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ

3.2.1.भाषाएँ और एकता की समस्या

3.2.2. भारतीय भाषा परिवारों की समस्या

3.2.3. बहु सांस्कृतिकता की समस्या

3.2.4.भारतीय साहित्य और संस्कृत

3.2.5. काल विभाजन की समस्याएँ

3.3. सारांश

3.4. बोध प्रश्न

3.5. सहायक ग्रंथ

3.1. प्रस्तावना

भारत में अनेक जातियाँ हैं, अनेक भाषाएँ हैं। भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है और काल की दृष्टि से इसका इतिहास और परम्परा बहुत पुरानी है। अतः यह स्वाभाविक है कि देशकाल के आधार पर जातिगत एवं भाषिक भिन्नता मिले। इसलिए भारतीय साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित अनेक प्रकार की बहुत-सी समस्याएँ सामने प्रस्तुत हो जाती हैं। वैसे तो किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखना चाहते है तो विभिन्न प्रकार की समस्याएँ सामने प्रस्तुत होंगे। किसी भी भाषा के साहित्य का निर्माण अन्य भाषाओं के साहित्य से नितांत पृथकता की अवस्था में नहीं होता है और न उसे अन्य भाषाओं के इतिहास से अलग करके देखा या लिखा जा सकता है। कोई भी

इतिहासकार भारतीय अथवा अभारतीय - भारतीय साहित्य इतिहास लिखेगा तो उसे विभिन्न भाषाओं के साहित्य के आपसी सम्बन्धों पर ध्यान देना होगा। उसे यदि किसी एक भाषा विशेष के साहित्य का इतिहास लिखना होगा तो भी उसे अन्य भाषाओं के साहित्य से उसके सम्बन्ध पर विचार करना होगा और देखना होगा कि वे किस सीमा तक परस्पर पूरक या सहायक रहे हैं। भारतीय साहित्य के इतिहास के बारे में जानना है तो पहले भारतीय भाषाओं के मध्य संबंध सांस्कृतिक परिवेश, समानताएँ, असमानताएँ, काल-विभाजन, साहित्य के सामाजिक अंश आदि में भिन्नताएँ और समानताओं को जान लेना आवश्यक है। इस इकाई में ऐसे ही कुछ भारतीय साहित्य के अध्ययन के दौरान प्रस्तुत होने वाले समस्याओं के बारे में चर्चा करेंगे।

3.2. भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याएँ

3.2.1.भाषाएँ और एकता की समस्या

भारत में अनेक जातियाँ हैं, अनेक भाषाएँ है। भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है और कला की दृष्टि से इसका इतिहास और परम्परा बहुत पुरानी है। अतः यह स्वाभाविक है कि देशकाल के आधार पर जातिगत एवं भाषिक भिन्नता मिले। इसलिए भारतीय साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित अनेक प्रकार की बहुत-सी समस्याएँ सामने प्रस्तुत हो जाती है। भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं के बारे में जानना चाहते है तो सबसे पहले भारतीय साहित्यिक भाषाओं के बारे में जानना जरूरी है क्यों कि भारत जैसी बहु भाषिक देश में भारतीय भाषा के रूप में किये अपना सकते हैं। संस्कृत के साहित्य को भारतीय साहित्य कहा जाय अथवा नहीं यह प्रश्न तो ऋग्वेद काल से संबंधित प्रश्न है क्यों कि भारतीय साहित्य का आदि-ग्रन्थ ऋग्वेद की रचना करने वाले भारत के कई प्रदेशों के निवासी थे और वे समस्त प्रदेश आर्यावर्त से सम्बन्धित थे यानि उत्तर भारत के थे, तो क्या उसे हम अखिल भारतीय कर सकते हैं और संस्कृत तो पढ़े-लिखे लोगों की भाषा थी। सामान्य जनता न संस्कृत बोलती थी और न पढ़ती थी। करने का तात्पर्य यह है कि संस्कृत- लौकिक और सुसंस्कृत-भाषा में लिखे जाने वाले साहित्य को संकुचित क्षेत्र का संकुचित आधार वाला साहित्य कहा जाना चाहिए। संस्कृत को भारतीय अथवा राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है क्या? इसी तरह पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य का भारतीय अथवा राष्ट्रीय साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है? क्योंकि संस्कृत साहित्य के बाद पालि के साहित्य आता है। यह साहित्य प्रायः बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। भारत जैसी बहु धर्म देश में एक ही धर्म को राष्ट्रीय या भारतीय धर्म कहा जा सकता है क्या? बाद में आने वाली भाषा प्राकृत है जो अधिक रूपों में प्रचलित थे। प्राकृत भाषा में रचने वाली साहित्य ज्यादातर जैन धर्म से सम्बद्ध हैं। अतः प्राकृतों में रचित साहित्य को भी राष्ट्रीय अथवा भारतीय साहित्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अब आती है अपभ्रंश। इनकी संख्या भी एक से अधिक है और इनका क्षेत्र बहुत ही सीमित हैं। अपभ्रंश में रचित साहित्य की भाषा पर्याप्त परिनिष्ठित है। इस प्रकार भारत का प्राचीन साहित्य भारतीय का राष्ट्रीय साहित्य कहलाना कुछ संदिग्ध अवस्था में रहती है।

आधुनिक काल से संबधित साहित्य को लेते हैं तो कोई भारतीय आधुनिक भाषा राष्ट्रीय नहीं है। अतएव हम किस भारतीय राष्ट्रीय एवं भारतीय करें? किस भाषा में रचित साहित्य को राष्ट्रीय का भारतीय साहित्य करें ? स्वाधीनता - प्राप्ति से पहले तथा स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयत्न किये जाते रहे हैं परंतु वह अभी तक राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार नहीं हुई है। अत: उसके साहित्य को राष्ट्रीय का भारतीय साहित्य कहीं नहीं जा सकता। अन्य भारतीय आधुनिक भाषाओं- पंजाबी, मराठी, गुजराती, कनड़, तेलुगु, बंगला आदि के क्षेत्र तो

और भी अधिक सीमित हैं। अतः उनके साहित्य को राष्ट्रीय अथवा भारतीय नहीं कर पाते हैं। इन भाषाओं में राष्ट्रीय भावना अवश्य व्यक्त हुई है। यह उनके साहित्य की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति मानी जा सकती है लेकिन इस कारण उन्हें भारतीय भाषा तो नहीं कहा जा सकता है।

इस संदर्भ में भारतीय राष्ट्र की भावना पर विचार किया जा सकता है। संस्कृत भाषा काल में राष्ट्रीय साहित्य की परिकल्पना की जा सकती है, क्योंकि उस युग में देश के विभिन्न भागों के पंडितजन संस्कृत का प्रयोग करते थे। उस युग में भारत राष्ट्र की कल्पना कर सकते हैं यानि उस युग में कम-से-कम पंडित जन प्रयुक्त संस्कृत के संदर्भ में राष्ट्रीय एकता की भावना थी। 8 वीं 10वीं शताब्दियों में देश में अनेक राज्य उदय हुए थे और देश छिन्न-भिन्न हो जाने से केंद्रीय भावना का अंत हो गया था। इस तरह आधुनिक भारतीय भाषाओं के उदय के समय जो थोड़ी बहुत राष्ट्रीय भावना थी, वह भी छिन्न-भिन्न हो गयी थी। अतएव आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य को भी राष्ट्रीय साहित्य नहीं कहा जा सकता है। कुछ लोगों का मानना है कि अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ राष्ट्रीय भावना का अभाव था। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद ही यहाँ राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ और इस राष्ट्रीय भावना की वाहक रही अंग्रेजी भाषा। इस समय जो राष्ट्रीय एकता की भावना थी वह मात्र अंग्रेजी राज्य से छुटकारा पाना था। सन् 1914 में बंगाल विभाजन के विरुद्ध आंदोलन में पहली बार सकारात्मक राष्ट्रीय भावना के दर्शन हुए थे। जो भी हो, अंग्रेजी राज्य के सामूहिक विरोध ने राष्ट्रीय भावना को जन्म दिया था। उस समय जो कुछ लिखा गया था वह ज्यादा तर अंग्रेजी में था। अतएव हम कह सकते है कि भारतीयों ने जो कुछ अंग्रेजी में लिखा है, उसको हम राष्ट्रीय साहित्य कह सकते हैं और भारतीय या राष्ट्रीय साहित्य का इतिहास लिखने के लिए अंग्रेजी में भारतीयों ने जो कुछ लिखा है, उसका इतिहास लिखा जाना चाहिए। इसके पहले का भारतीय साहित्य लिखने के लिए अधिक-से-अधिक उस साहित्य का इतिहास लिखा जा सकता है, जो संस्कृत में लिखा गया था। इस तरह भारतीय साहित्य के इतिहास का अर्थ होगा अंग्रेजी और संस्कृत में भारतवासियों द्वारा लिखे हुए साहित्य का इतिहास। इसमें वह संस्कृत साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है जो बीसवीं सदी में, विशेषकर उसके उत्तरार्ध में रचा गया या अब रचा जा रहा है। इसके अतिरिक्त और किसी साहित्य को भारतीय साहित्य कहना बहुत कठिन है।

3.2.2. भारतीय भाषा परिवारों की समस्या

राष्ट्रीय साहित्य के संदर्भ में एक अन्य समस्या हमारे सामने आती है कि भारत में अनेक भाषाएँ ही नहीं बोली जाती है, अनेक भाषा- परिवारों की भी भाषाएँ बोली जाती है। ऐसी स्थिति में क्या भारतीय साहित्य को परिभाषित किया जा सकता है। इनमें कई परिवार ऐसे हैं जो एक- दूसरे से भिन्न है और उनकी भाषाएँ परस्पर नितांत भिन्न है। भारत में चार भिन्न भाषा परिवार हैं। ये शब्द भण्डार और व्याकरण की दृष्टि से एक दूसरे से अलग हैं। इन परिवारों की भाषाएँ बोलने वाले एक ही राष्ट्र में कैसे शामिल किये जा सकते हैं? इस समस्या के समाधान से पहले तो यह देखना आवश्यक है कि राष्ट्र के निर्माण और विकास से भाषा परिवारों की भिन्नता का कुछ भी सम्बन्ध है या नहीं। राष्ट्र का निर्माण और विकास इस बात पर निर्भर है कि भिन्न भाषाएँ बोलने वाली जातियों के आपसी सम्बन्ध कैसे हैं, उनकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्पराओं मैं कितनी समानता है, उनके आपसी आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध कैसे हैं इत्यादि। सोवियत संघ में इण्डो यूरोपियन, तुर्क परिवारों के अलावा एस्कीमों, चुकाची आदि जातियों के उत्तरी क्षेत्रों में अनेक परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। वास्तव में भारत की अपेक्षा वहाँ भाषा परिवारों की विविधता कही अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी रेड इंण्डियन आदिवासियों की आषादाँ एक ही परिवार की नहीं है और अंग्रेजी भाषा तो उन सबसे भिन्न परिवार की है। इसी प्रकार फ्रांस, स्पैन में जो बास्क भाषा बोली जाती है वह फ्रांसीसी और स्पेनी

भाषाओं से भिन्न परिवार की है और थैइवॉन द्वीप की भाषा भारत की मुंडा परिवार भाषाओं से अधिक मिलती जुलती है, चीनी भाषा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि 'अनेक आधुनिक राष्ट्र और राज्य न केवल बहु-जातीय है वरन् उसमें निवास करने वाली जातियाँ एक से अधिक परिवारों की भाषाएँ बोलती हैं। इसलिए भारत में अनेक भाषाओं का बोला जाना अथवा उनका अनेक परिवारों से सम्बद्ध होना कोई अनोखा व्यापार नहीं है।

दूसरी बात यह है कि भारतीय भाषा परिवार संसार के किसी भी देश, राज्य या राष्ट्र की भाषाओं के अपेक्षा अधिक लम्बे समय से साथ-साथ रहते आये हैं। अनेक भाषा विज्ञानी भारत को भाषागत इकाई मानते हैं। भाषागत इकाई का अर्थ यह है कि एक ही भूखण्ड में बहुत दिनों तक साथ रहने के कारण भिन्न भाषा परिवारों ने ऐसी सामान्य विशेषताही विकसित की हैं, जो भारत के बाहर इन परिवारों से सम्बद्ध अन्य भाषाओं में नहीं मिलतीं। यथा भारत का अर्थ भाषा परिवार इण्डो- यूरोपियन परिवार की शाखा माना जाता है। उसमें और द्रविड़ भाषा परिवार में ऐसी सामान्य विशेषताएँ उत्पन्न हुई हैं, जो यूरोप की 'आर्य' भाषाओं में नहीं मिलतीं। इससे कम-से-कम इतना तो सिद्ध होता है कि भारतीय भाषा परिवारों में परस्पर आदान-प्रदान शताब्दियों तक होता रहा है। आज द्रविड़ भाषा परिवार के भाषाई अधिकक्षणों को आर्य भाषाओं में और आर्यभाषा कुल के भाषाई लक्षणों को द्रविड़कुल की भाषाओं में स्पष्ट रूप से हम अन्तरित पाते हैं। द्रविड़ और मुंडा भाषा परिवार के बीच भाषिक लक्षणों का अन्तरण पाते हैं।

तीसरी बात यह है कि भारतीय भाषा परिवारों में कुछ सामान्य विशेषताएं ऐसी है, जो यूरोप के एक ही भाषा परिवार या एक परिवार की एक ही शाखा की भाषाएँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध है। वर्तमान भारत में चार भाषा परिवार हैं। आर्य, द्रविड़, नाग और कोल। इनमें आर्य परिवार और द्रविड़ परिवार परस्पर सुदृढ़तम रूप से सम्बद्ध है। एक तरह से भारतीय आर्य भाषाओं का दविड़ीकरण और द्रविड़ कुल की भाषाओं का आर्थीकरण हो चुका है। दोनों परिवारों की सम्बद्धता भारत के समस्त भाषाई मानचित्र को प्रभावित करती हैं। इन दोनों परिवारों के अतिरिक्त नाग और कोल परिवारों की भाषाओं में भी कुछ समानताएँ कुछ असमानताएँ पाए जाते हैं। अनेक विद्वानों ने भारतीय भाषाओं के बीच पायी जाने वाली अभिसरण प्रक्रिया (अर्थात सम्पर्क की स्थिति में दो भाषाओं के बीच की अनुकूलता) पर प्रकाश डालते हुए उनकी संरचनात्मक भाषिक लक्षणों की चर्चा की है। उनके अनुसार भारतीय आर्य भाषा परिवार की भाषाओं में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन आये। यथा-

ध्वनि संरचनात्मक - मूर्धन्य ध्वनियों का स्वनिम के रूप में विकास ह्रस्व 'ए' और 'औ' का आविर्भाव, व्यंजन-गुच्छों का सरलीकरण।

शाब्दिक - अनुसरण शब्दों का प्रयोग 'पूजा, संस्कृति से सम्बद्ध शब्द समूह का विकास'।

रूपिमिक - द्विवचन का लोप, पूर्वसर्गों के स्थान पर परसर्गों का प्रयोग क्रिया रूपों में सरलीकरण।

वाक्य विन्यास - शब्द क्रम में परिवर्तन, संयोजक क्रिया का लोप कृदंत और संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग की आवृत्ति में वृद्धि।

इसी प्रकार भारतीय आर्य भाषाओं के कारण द्रविड़ कुल की भाषाओं में भी कुछ संरचनात्मक परिवर्तन आये यथा- ध्वनि संरचनात्मक- अनुनासिक स्वरों का विकास, सहाप्राण ध्वनियों का आविर्भाव।

शाब्दिक- यज्ञ, होम, वर्ण और आश्रम व्यवस्था से सम्बन्धित समूहों का प्रयोग।

रूपिमिक - उत्तम पुरुष बहुवचन सर्वनामों के बीच के अभिविहित और समर्थादित भेद का लोप।

वाक्य विन्यासात्मक - निषेधवाची क्रियारूपों का लोप, विशेषण और क्रिया विशेषण के प्रयोग की आवृत्ति में वृद्धि।

ये सब, वे व्याकरणिक लक्षण हैं जो भारतीय भाषाओं में समान रूप से मिलते हैं और इस प्रकार भारतीय भाषाओं के लिए एक साथ मिलकर वाक्य विन्यासात्मक पहचान के कारण कहे जा सकते हैं। भाषा खण्ड के इन समानार्थी लक्षणों के आधार पर भारत को एक भाषायी क्षेत्र सरलता से सिद्ध किया जा सकता है। प्रायः विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि भारतीया आर्य, द्रविड़कुल, मोटवर्मी और आस्ट्रिक भाषा परिवारों में पायी जाने वाली समरूपता का सम्बन्ध भाषा परिवार की सगोत्रता से न होकर इतिहास चक्र से उद्भुत एक साथ रहने की परिस्थित जन्य नियति या सम्पर्क के कारण है।

3.2.3. बहु सांस्कृतिकता की समस्या

भारतीय समाज सदियों से न केवल बहुभाषिक वरन् बहु सांस्कृतिक भी रहा है। अर्थ संस्कृति, द्रविड़ संस्कृति, कोल, भील संस्कृति, मोट बर्मी या किरात संस्कृति। हमारे देश में संस्कृति शब्द का प्रयोग सामान्यत: मानवीय आचरण और सामाजिक व्यवहार के सन्दर्भ में किया जाता है, जो न केवल प्रबोधन को प्रतिबन्धित करता है बल्कि विभिन्न अध्ययनों से गहन ज्ञान को भी दर्शाता है। भारत के संविधान और दस्तावेज में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया गया है। भाषा संस्कृति के विकास का एक अनिवार्य अंग है और यह भी एक मानी हुई बात है कि सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया साथ-भाव चलती रहती है और समाज का विकास अधिकांशतः भाषा के माध्यम से प्रतिबिंबित होता है। भाषा, संस्कृति, व्यापार आस्था और व्यवसाय, धर्म और दर्शन सामाजिक नियम और सामाजिक प्रथाओं की विविधता होते हुए भी भाषा और संस्कृति के विकास की दृष्टि से भारत की एक विलक्षण स्थिति है। भारत की विविधता में एकता दर्शाने के अविरत, निरन्तर और सफल प्रयास किये जाते हैं। देश में सांस्कृतिक एकीकरण का कार्यक्रम उतना ही पुराना है जितना भारत का इतिहास। इसका भारत के भौतिक, सांस्कृतिक तथा भाषाई भूगोल के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि ऐसा न होता तो भारत में सही सामाजिक आचरण के लिए निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में पौराणिक साहित्य के प्रयोग में एकरूपता न आ पाती और सामाजिक विधि, सामाजिक व राजनीतिक साहित्य तथा प्रशासन, व्यापार और वाणिज्य में समग्र शब्द व्यापक मात्र में न मिलते। यह अस्तित्व आदिकाल से सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यकलापों से पूर्णतः जुड़ा रहा है। इस समय भारतीय भाषाओं और साहित्य में प्रगति हो रही है, उस पर राष्ट्रीय एकीकरण के लिए संस्कृति विकास से गहरा सम्बन्ध है। अतः भारतीय समाज के जातीय एवं सांस्कृतिक चेतना के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व साम्य है और इसका आधार अनुवांशिक न होकर ऐतिहासिक है जो आदान-प्रदान, अनुकूलन और अभिसारण को अपना साधन मानता है। आनुवंशिक दृष्टि से हम अपने को आर्य, द्रविड़ या किरात जाति के वंशज तो कह सकते हैं, पर हम सब की संस्कृति सामाजिक है। हम आनुवांशिक रूप से ही अलग- अलग है किन्तु भारत की सभी भाषाओं में भीतर स्तर पर अर्थ संरचना, व्याकरण संहिता और ध्वनि व्यवस्था की दृष्टि से एक अभूतपूर्व साम्य है। ऐसी स्थिति में भारतीय भाषाओं में जो भी साहित्य लिखा गया है उसका विवेचन भारतीय साहित्य में रोना चाहिए। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि, 'एक बार यह मान लेने पर कि भारत एक राष्ट्र है, यह भी मानना होगा कि इस राष्ट्र में जो कुछ लिखा जाता है, वह भारतीय है वह अच्छा है या बुरा यह प्रश्न गौण है।

3.2.4.भारतीय साहित्य और संस्कृत

संस्कृत भाषा प्राचीन वैदिक भाषा के रूप में भारतगण की भाषा मानी जाती है। भरतगण से समूचे देश को भारत नाम प्राप्त हुआ है। भरतगण की, शक्ति के कारण ही संस्कृत भाषा विभिन्न गण समाजों के बीच व्यवहार में आने लगी थी। भिन्न भाषाएँ बोलने वाले समाज परस्पर विनिमय और सम्पर्क के लिए भरतगण की भाषा काम में लाते थे। यही कारण है कि वैदिक भाषा में अनेक आर्य बोलियों के मिश्रण के चिह्न पाये जाते हैं। इसी संस्कृत भाषा के पाणिनी ने परिनिष्ठित किया। संस्कृत भरतगण की भाषा थी इसलिए उसके अध्ययन और प्रसार के केन्द्र उत्तर भारत में हो यह स्वाभाविक था। इसी प्रदेश को बाद में हिन्दी भाषा -भाषी प्रदेश भी कहा गया। अब समस्या है कि कुछ लोग यह मानते हैं, जो संस्कृत में लिखा गया है वही भारतीय साहित्य है, वही एकमात्र भारतीय संस्कृति है। किन्तु जो लेखक देश की सभी भाषाओं के साहित्य को भारतीय, साहित्य मानते हैं, उनके लिए यह समस्या नहीं है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक युग में भारतीयों की मातृभाषा कुछ भी है, विभिन्न जनजातियों को जोड़ने वाली भाषा कुछ तथा बौद्धिक चेतना की भाषा संस्कृत थी, जिसका व्यवहार उत्तर भारत में भी था और दक्षिण भारत में भी। बौद्धिक चेतना की भाषा होने के कारण इसीलिए हम सर्जनात्मक साहित्य के अतिरिक्त इसमें दर्शनशास्त्र और ज्ञान विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित विषयों पर प्रचुर साहित्य पाते हैं। बौद्धिक चेतना की सन्दर्भ भाषा के रूप में संस्कृत भाषा का प्रयोग मध्ययुग तक चलता रहा, ब्रज भाषाकाल में भी, आचार्यों में तत्वचिन्तन के लिए संस्कृत भाषा को अपनाया। मध्ययुग के भक्ति आन्दोलन में दक्षिण के आचार्यों की मातृभाषा द्रविड़ कुछ की भाषा थी, उनके पुनर्जागरण और जनसम्पर्क की भाषा ब्रजभाषा थी पर तत्वचिन्तन की भाषा संस्कृत ही रही। इन तीनों भाषाओं के समुचित योग के सहारे ही रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बकाचार्य, वल्लभाचार्य जैसे आचार्यों का व्यक्तित्व प्रखर और प्रभावी बन पाया। आद्य शंकराचार्य ने भी बौद्धिक चेतना के लिए संस्कृत भाषा को ही प्रयोग में लिया है। इसलिए संस्कृत भाषा को लेकर कोई समस्या नहीं है।

3.2.5. काल विभाजन की समस्याएँ

भारत एक बड़ा राष्ट्र है। बृहत्तर भारत या प्राचीन भारत तो और भी विशाल था। ऐसी स्थिति में भारतीय साहित्य की परिकल्पना एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि जब हम किसी काल में किसी एक विचारधारा की बात भारत के सन्दर्भ में करते हैं तो भारत के एक भूभाग में उसका अस्तित्व ही नहीं मिलता। इसलिए भारतीय साहित्य में समान प्रवृत्तियाँ नहीं मिलतीं। साहित्य का इतिहास लिखने वाले प्रायः तीन कालों की चर्चा करते हैं- प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल। परन्तु वे यह नहीं बताते हैं कि इन कालों में सामाजिक इतिहास लेखन के लिए सामाजिक गठन और जातियों के गठन का ज्ञान परम आवश्यक माना जाता है। किसी एक भाषा के साहित्य में आदिकाल की प्रकृति कुछ है तो दूसरी भाषा के साहित्य की प्रवृत्ति कुछ और तीसरी भाषा के साहित्य का विकास ही प्रारंभ नहीं होता। ऐसी स्थिति में भारतीय साहित्य के इतिहास के कालक्रम निर्धारण की भी महत्वपूर्ण समस्या उत्पन्न होती है कि भारतीय साहित्य के युग क्रम को एक निश्चित कालावधि के आधार पर रेखांकित किया जाये या प्रवृत्ति परिवर्तन को विवेचन का आधार बनाया जाये। अब प्रश्न यह है कि भारत के इतिहास को समाज व्यवस्था के अनुसार कालक्रम के विचार से किस प्रकार विभाजित किया जाए। आदिकाल का समय 1000 ई. से 1400 ई. के मध्य माना गया है जबकि तमिल में चौथी सदी ई.पू. में साहित्य रचना का कार्य आरम्भ होता है और मलयालम में साहित्य रचना का यह क्रम पन्द्रहवीं सदी में कर शुरू होता है। तो क्या माना जायें कि मलयालम तमिल लगभग 2000 वर्ष बाद विकसित हुई, जबकि विद्वानों की यह मान्यता है कि मलयालम में कई भाषिक तत्व तमिल से भी पुराने हैं- इसका कारण क्या है? इसी प्रकार बंगला की तुलना में असमिया और उड़िया काफी देर से विकसित हुई। तेलुगु में नन्नय का

'महाभारत', कन्नड़ में नृपतुंग का 'कविराजमार्ग' तथा मलयालम का रामचरितम्, प्रथम उपलब्ध रचनाएँ हैं जो मूलतः अनुवाद हैं। यह बात दूसरी है कि इन ग्रन्थों में उनकी अन्तः प्रतिभा का वैशिष्ट्य भी उभरा है। 'कविराजमार्ग' कन्नड़ काव्य के प्रारम्भ की ओर इंगित करता है किन्तु युग का प्रवर्तन महाकवि 'पम्प' के आविर्भाव के साथ होता है; जिसे पम्ययुग के नाम से अभिहित किया गया है। एक अन्य प्रश्न हमारे साहित्योतिहास के काल विभाजन से सम्बद्ध है। यूरोप में जब से लैटिन से अलग होकर फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं में साहित्य की रचना शुरू हुई तब से उसे आधुनिक काल की संज्ञा दी गयी क्यों कि वह एक महत्वपूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन का सूचक है, जिसका पर्यवसान नवजागरण काल में होता है। भक्तिकाल में भक्ति आन्दोलन द्वारा भी भारतीय साहित्य में आधुनिक भारतीय भाषाओं को प्रतिष्ठा मिलती है, पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में नवजागरण और उसे माध्यम से एक नए मानवतावाद का उद्घोष होता है। यह भारतीय नवजागरण हर दृष्टि से यूरोपीय नवजागरण के समान था उससे बढ़कर है। ऐसी स्थिति में पूर्व मध्यकाल को मध्यकाल कहना कहाँ तक उचित है? भारतीय साहित्य के काल विभाजन को लेकर ऐसी और भी कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं यथा- क्या संस्कृत बोलचाल की भाषा भी या नहीं। यदि बोलचाल की भाषा नहीं थी तो कब से नहीं थीं? क्या प्राकृतें, वास्तविक लोक भाषाएँ थी? क्या पुरानी हिन्दी, पुरानी गुजराती, पुरानी बंगला जैसी कोई भाषाएँ थीं? साहित्य के इतिहास में काल विभाजन का आधार क्या हो? इस प्रकार प्राचीन काल के आरम्भ की भाँति आधुनिक-काल का प्रश्न भी अनुत्तरित ही रह जाता है। कुछ लोग भारत में आधुनिक जातियों के निर्माण पर विचार कार्लमार्क्स के लेखों में व्यक्त विचारों के आधार के करते हैं। इनके दो वर्ग हैं। एक वर्ग के अनुसार अंग्रेज ने भारत में सामन्ति व्यवस्था को जन्म दिया। दूसरे वर्ग के मतानुसार अंग्रेजों ने भारत में पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया। इन धारणाओं पर विचार करते समय यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि 19 वीं शताब्दी से भारत में पूँजीवादी व्यवस्था लागू है। तब इसका अर्थ होता है कि अंग्रेजों न यहाँ की सामूहिक उत्पादन विनिमय वाली गण-व्यवस्था को तोड़ा और एक ही छलांग में सामन्ती व्यवस्था को पार करके उन्होंने भारतीय समाज को पूँजीवादी युग में स्थापित कर दिया। दोनों वर्ग भारत में सामन्ती व्यवस्था की अकाल मृत्यु मानते हैं। यह विचारणीय है। भारत में जातियों का निर्माण अंग्रेजों की अपेक्षा अधिक विकसित था। यह समय 18 वीं शताब्दी है जब अंग्रेजी जाति का निर्माण हुआ। उस समय भारत उद्योग-धन्धों और व्यापार दोनों क्षेत्रों में इंग्लैंड से आगे है। अतएव भारत में आधुनिक जातियों का निर्माण सर्वथा स्वाभाविक है। अतएव आधुनिक काल का आरम्भ ई. सन् की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से माना जा सकता है। यहाँ यह समस्या उत्पन्न होती है कि इस प्रक्रिया के साथ जातीय भाषा को जोड़ने की। जातीय भाषा के निर्माण में एक से अधिक भाषाएँ योगदान करती है। इनमें से कोई एक जातीय भाषा के रूप में स्थापित हो जाती है। तब अन्य जन-पदीय भाषाएँ उस जातीय भाषा की तुलना में उपभाषाएँ रह जाती है। हिन्दी का उदाहरण सामने है। खाडीबोली, ब्रज- भाषा, बुन्देवी, बंगला, कन्नौजी हिन्दी की उपभाषाओं के रूप में रह गई है। बंगाल की वैष्णव कविता की भाषा आधुनिक बंगला से भिन्न है; परन्तु बंगाल के गावों की अनपढ़ जनता को एकताबद्ध करने का कार्य वैष्णव कविता की भाषा ने किया, न कि परवर्ती आधुनिक संस्कृत गर्भित बंगला कविता अथवा साहित्य ने। इसी प्रकार मराठी के संत कवियों की रचनाएँ जितनी लोकप्रिय हैं, उतनी आधुनिक मराठी की कविताएँ नहीं है। यदि जातीय निर्माण की प्रक्रिया में तथा कथित सामन्त वर्ग, व्यापारियों, जमींदारों, शहरों के शिक्षित लोगों पर ही ध्यान न देकर, निम्न अनपढ़ वर्ग विशेषकर किसानों पर ध्यान देकर विचार किया जाए, तो हम कह सकेंगे कि किसानों को संगठित करने की दृष्टि से तथाकथित पुरानी बंगला, मराठी आदि की भूमिका इनके आधुनिक रूपों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी के प्रचलन के कारण भी इन पुरानी भाषाओं की उक्त भूमिका समाप्त नहीं हुई है।

इसी परिप्रेक्ष्य में मध्यकालीन हिन्दी रचनाओं पर भी विचार करते हैं। कबीर आदि संतों, जायसी आदि सूफियों तथा सूरदास, तुलसीदास, रसखान और मीरा आदि भक्तों की लिखी हुई कविताएँ, उनका साहित्य आज भी लोकप्रिय है। विभिन्न जातियों के सांस्कृतिक विकास में उसका योगदान असंदिग्ध है। यह साहित्य दूर-दूर के जनपदों को एक प्रकार से सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधता आया है। सुदूर बंगाल और दक्षिण में कर्नाटक, तमिलनाडु आदि में तुलसी और सूर की रचनाओं के प्रति गहरी रुचि और व्यापक जानकारी देखकर आश्चर्य होता है। तब प्रश्न यह है कि जातीय संगठन की प्रक्रिया आरम्भ करने वाले उक्त साहित्य के मध्यकालीन कहा जाए अथवा आधुनिक कालीन। विद्वानों के मतानुसार आधुनिकता का आरम्भ जातीय निर्माण प्रक्रिया से मानना चाहिए। उसका एक लक्षण है किसी एक जनपद की भाषा का अन्य जनपदों में व्यवहार। जिस भाषा और साहित्य के माध्यम से विभिन्न जनपदों के किसान एकता बहु होते हैं, उस भाषा और साहित्य को जातीय-निर्माण प्रक्रिया से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से यह करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि भारत की जिन, भाषाओं में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के समानान्तर अथवा इसके बाद जो साहित्य रचा गया है, वह अधिकांशतः उक्त जातीय प्रक्रिया से सम्बद्ध है।

3.2.6. राष्ट्रीय एकता की भावना की समस्या

आधुनिक इतिहासकारों ने प्राचीन भारत को अलग-अलग खण्डों में प्रस्तुत कर यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत कभी एक राष्ट्र था ही नहीं। उनके अनुसार भारत में उत्तर और दक्षिण दो भौगोलिक खण्ड रहे हैं। जिनका प्राचीन काल में एक दूसरे को ज्ञान नहीं था। भारत में केवल दो ही जातियाँ थीं- आर्य और द्रविड़। इनमें आर्य विजेता थे और द्रविड़ विजित। भारत में एक भाषा नहीं रही। जब संस्कृत का प्रभाव था तब भी यहाँ संस्कृत और द्रविड़ दो भाषाएँ थीं। वे यह भी तर्क देते हैं कि राजनैतिक दृष्टि से भारत में एकल का प्रश्न ही नहीं उकता क्यों कि यहाँ सैकड़ों राजा थे जो परस्पर लड़ते रहते थे। भारत में धार्मिक दृष्टि से भी एकता नहीं थी। हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्म जैसे कितने ही धर्म यहाँ प्रचलित थे। इस प्रकार अंग्रेजी के इतिहासकारों ने भारत के अतीत को विखंडित कर यह बताने का प्रयास किया कि अंग्रेजों ने राजनैतिक दृष्टि से समीकरण किया और यह भारत की राष्ट्रीयता आधुनिक युग में केवल राजनैतिक कारणों से हुई। कहने का आशय यह है कि ब्रिटीश पूर्व भारत में राष्ट्रीय एकता की भाव थी ही नहीं। भारतीय राष्ट्रीयता आधुनिक काल की देन है। इस तर्क को आधार मानकर भारतीय साहित्य के अध्ययन का प्रयास करें तो यह समस्या खड़ी होती है कि नागरिकता, ध्वज संविधान की भाँति एक भाषा भी होनी चाहिए जिसे उस देश की राष्ट्रभाषा कहा जाये और उसके साहित्य को भारतीय साहित्य। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि राष्ट्र के अस्तित्व के लिए एक ही भाषा का व्यवहार आवश्यक नहीं है। संसार के अधिकांश राष्ट्र बहुजातीय है, उनमें अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है। कनाडा, संयुक्त अमेरिका, सोवियत संघ, चीन आदि देश भारत की तरह बहु-जातीय राष्ट्र अथवा राज्य है। भारत जैसे देश में अनेक जातियाँ दीर्घकाल से साथ रहती आधी है उनमें सामान्य राष्ट्रीयता का भाव हैं। उनका देश राजनैतिक रूप से एक राज्य हो चाहे न हो, उसे राष्ट्र कहना उचित होगा। किसी जाति का राजनीतिक विभाजन होने से जैसे उसकी जातीयता का नाश नहीं हो जाता - वैसे ही भारत जैसे देश का राजनीतिक विभाजन होने से उसकी राष्ट्रीयता समाप्त नहीं हो जाती।

3.3. सारांश

भारत जैसी बहुभाषिक क्षेत्र में साहित्य का अध्ययन करना मुश्किल काम है। राष्ट्र के अस्तित्व के लिए एक ही भाषा का व्यवहार आवश्यक नहीं है। संसार के अधिकांश राष्ट्र बहुजातीय हैं और अधिकांश राष्ट्र बहुभाषीय है। पूंजीवाद के अभ्युदय काल में यह धारणा बनने लगी थी कि एक जातीय और एक भाषा वाले राष्ट्र निर्माण पूंजीवादी विकास का सामान्य नियम है। परन्तु फ्रांन्स की राज्य क्रांति के समय फ्रांस में साम्राज्यवाद के विधान-काल में ब्रिटन में, दूसरे महायुद्ध के बाद जर्मनी में स्पष्ट हो गया कि वे सब एक जातीय राष्ट्र नहीं थे। ये सब देश भारत की तरह बहुजातीय राष्ट्र अथवा राज्य हैं। अतएव भारतीय के अध्ययन सम्बन्धी समस्याओं के मूल कारण है-भाषा को समाज के विकास के साथ न जोड़ना और साहित्य को सामाजिक परिस्थितियों से सतही रूप में सम्बद्ध कर देना, साहित्य के इतिहास का अध्ययन केवल काल-खण्डों में विभाजित करके देखा जाना, क्योंकि इससे अध्ययन का क्षेत्र सीमित हो जाता है और ब्यौरे आसानी से पकड़ में आ जाते हैं। हमारे विज्ञान यदि हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन भाषा विकास की समाज के विकास के साथ जोड़ कर करना आरम्भ करें तो इस मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ स्वतः समाप्त होती चली जायेंगी।

3.4. बोध प्रश्न

1. भारतीय साहित्य के बारे में बताते हुए उसके अध्ययन की समस्याओं पर सारगर्भित लेख लिखिए।

2. भारतीय साहित्य और संस्कृत के घनिष्ठ संबंध के बारे में बताइए।

3. भारतीय साहित्य के अध्ययन में काल विभाजन की समस्या कैसे बाधा डाल सकती है?

3.5. सहायक ग्रंथ

1. भारतीय साहित्य- संकलनकर्ता

डॉ. आर. आई. शान्ति

डॉ. प्रकाश ए.

2. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका - इन्द्रनाथ चौधुरी

3. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास- डॉ. नगेन्द्र

डॉ . एम . मंजुला

4. हिन्दी - साहित्य में लेखन की समस्याएँ और भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति

4.0. उद्देश्य

इस इकाई में हम हिन्दी साहित्य का इतिहास को जानना। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में किस प्रकार के समस्याएँ उत्पन्न होते हैं और हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना

4.2. हिन्दी साहित्य का इतिहास

4.3. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएँ

4.4. भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति

4.4.1. राजनीति नैतिकता अथवा आध्यात्मिकता के साथ

4.4.2. व्यंजित पारलौकिकता

4.4.3. अल्पसंख्यक का प्रभुत्व

4.4.4. राजभाषा

4.4.5. संस्कृति का सौदा

4.4.6. समाज धर्म

4.5. सारांश

4.6. बोध प्रश्न

4.7. सहायक ग्रंथ

4.1. प्रस्तावना

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी साहित्य का इतिहास को जानेंगे। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याओं को विस्तृत रूप में जानेंगे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति को जानेंगे। सबसे पहले हम इतिहास के बारे में जानना आवश्यक है- **इतिहास** शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के तीन शब्दों से (इति+ह+आस) हुआ है। **'इति'** का अर्थ है 'जैसा हुआ वैसा ही' **'ह'** का अर्थ है, 'सत्य या सचमुच' तथा **'आस'** का अर्थ है, 'निश्चित घटित होना'। अर्थात जो घटनाएँ अतीत काल में निश्चित रूप से घटी है, वही इतिहास है।'

इतिहास का अर्थ इतिहास दो शब्दों के मेल से बना है इति+हास जिसका अर्थ होता है,"ऐसा ही हुआ" अर्थात इतिहास शब्द का अर्थ है। अतीत के घटित घटनाओं का क्रमबद्ध ब्यूरो।

इतिहास की परिभाषा- "इतिहास सामाजिक जीवन की वह शाखा है, जिसके अंतर्गत अतीत काल की घटनाओं या उससे संबंध रखने वाले व्यक्तियों का काल क्रमानुसार अध्ययन किया जाना।

- **इतिहास की परिभाषा विद्वानों के अनुसार**

'इतिहास (history)' शब्द का प्रयोग 'हेरोडोटस' ने अपनी पहली पुस्तक 'हिस्टोरिका' (historical) में किया था। हेरोडोटस को इतिहास का 'जनक' माना जाता है।

- **हेरोडोटस के शब्दों में-** "सत्य घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन इतिहास है ।" हेरोडोटस की पुस्तक का नाम 'हिस्टोरिका' है। भारत में इतिहास के 'जनक' महर्षि वेदव्यास को माना जाता है। उनके द्वारा रचित 'महाभारत' भारत के इतिहास की प्राचीनतम पुस्तक मानी जाती है।
- **महर्षि वेदव्यास ने इतिहास की परिभाषा देते हुए कहा है-**

"धर्मार्थ काममोक्षेसु उपदेश समन्वितम्।

सत्याख्यान इति इतिहासमुच्ययते।।"

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के उपदेश से युक्त सत्य आख्यान (वर्णन) ही इतिहास कहलाता है।

कार्लायल / कार्लाइल के अनुसार- "इतिहास एक ऐसा दर्शन है जो दृष्टान्तों (उदाहरण) के माध्यम से शिक्षा देता है ।"

- **चार्ल्स डार्विन** ये विज्ञान (science) से संबंधित थे। इन्होंने इतिहास की परिभाषा विकासवादी दृष्टिकोण के अनुसार देते हुए कहा है- "सृष्टि का बाह्य विकास उसके आतंरिक विकास का प्रतिबिंब है। इस आतंरिक विकास की प्रक्रिया को खोजने का नाम ही इतिहास है।"
- **हीगल के अनुसार**

"इतिहास केवल घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है, अपितु घटनाओं के पीछे कार्य-करण की श्रृंखला विद्यमान होती है इसी कार्य-कारण श्रृंखला का खोजने का नाम इतिहास है।"

- **डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार**

"कवि के कार्यों को विकास प्रक्रिया में न्यायोचित दिखाना ही इतिहास है ।" ('हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी)

- **आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार**

"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है। यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत

तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य की परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"

- **डॉ. नागेन्द्र के अनुसार**

"साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरुचियों और संवेदनाओं का इतिहास है। जिनका सीधा संबंध आर्थिक और विकासात्मक चिंतन से है।"

4.2. हिन्दी साहित्य का इतिहास

साहित्य के मूल में परिवर्तित सामूहिक चित्तवृत्तियों को आधार बनकर साहित्य का परंपरा का व्यवस्थित अनुशीलन ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। आचार्य रामचन्द्र शुल्क के अनुसार – प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की चित्तवृत्ति का संक्षिप्त प्रतिबिंब होता है। जनवरी 1929 में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास ग्रंथ लिखा। यही हिन्दी का पहला ग्रंथ है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार भागों में विभाजित किया गया है –

1. आदिकाल (वीरगाथा काल)- सन् 993 से 1918 तक, संवत 1050 से 1375 तक।
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) -सन् 1318 से 1643 तक, संवत 1375 से 1700 तक।
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)- सन् 1643 से 1843, संवत 1700 से 1900 तक।
4. आधुनिक काल -सन् 1843 से आज तक, संवत 1900 से आज तक।

4.3. हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्याएँ

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए दो वर्गों की सामग्री अपेक्षित होती है। इनमें प्रथम वर्ग में कवियों की रचनाएँ आती हैं। इनमें शुद्ध पाठ और संक्षिप्त अंश बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न करते हैं। द्वितीय वर्ग की सामग्री के अन्तर्गत आते हैं- शिलालेख, ताम्रपत्र, प्राचीन हस्तलेख, जनश्रुतियाँ और प्रशस्तियाँ आदि। इस क्षेत्र शोधकार्य अनवरत रूप में होता रहता है और नित्य नई सामग्री सामने आती रहती है। अतएव इतिहास-लेखन में नित्य संशोधन एवं परिवर्तन की समस्या स्थायी रूप से सामने रहती है। 'पृथ्वीराज रासो' के प्रामाणिक संस्करण का सम्पादन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। अब हम साहित्य के इतिहास-लेखन की सामान्य समस्याओं पर विचार करते हैं।

शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' का प्रणयन किया था, उन दिनों आजकल की तरह स्थापित पुस्तकालय तथा खोज रिपोर्टें उपलब्ध न थे। ऐसी स्थिति में उनके ग्रन्थ में बहुत-सी अप्रामाणिक सामग्री सम्मिलित हो गई हो तो कोई आश्चर्य नहीं और वस्तुतः हुआ भी यही। कालान्तर में शिवसिंह सरोज के परवर्ती संस्करणों में अनेक प्रक्षिप्त और अप्रामाणिक अंश सम्मिलित हो गए और कवियों की तिथियों में भी उलटफेर हो गया। परीक्षण करने पर अनेक तिथियाँ इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं। हिन्दी साहित्य के अधिकांश लेखकों ने 'शिवसिंह सरोज' की सामग्री को प्रामाणिक मानकर इतिहास लिखे। उक्त त्रुटियों की ओर ध्यान न देने का परिणाम यह हुआ कि इतिहास एवं तथ्यों से सम्बन्धित अनेक भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गईं और अनेक भ्रांतियाँ अभी तक चली आ रही हैं। पं. रामचन्द्र शुक्ल प्रणीत हिन्दी साहित्य का इतिहास अपने क्षेत्र का सर्वाधिक मान्य ग्रन्थ है। आचार्य शुक्ल ने कवियों के नाम, जीवन-चरित्र इत्यादि की अपेक्षा कवियों की कृतियों के महत्व पर अधिक ध्यान दिया है। उनका

मानना यह था कि 'कुछ कवियों के नाम छूट गये या किसी कवि की मिली हुई पुस्तक का उल्लेख नहीं हुआ तो इससे मेरी कोई विशेष बड़ी उद्देश्य-हानि नहीं हुई।' शुक्ल जी ने इतिहास एवं सामग्री सम्बन्धी त्रुटियों एवं भ्रांतियों की ओर ध्यान ही नहीं दिया, उनके निराकरण का तो प्रश्न ही नहीं था। परवर्ती लेखकों ने आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' को आधार बनाया। फलतः हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन के सम्बन्ध में कई समस्याएँ हमारे सामने उपस्थित हैं।

उनमें से सर्वप्रथम समस्या यह है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास कब से माना जाए और हिन्दी भाषा के किस रूप को हिन्दी साहित्य की भाषा माना जाए। सामान्यतः हिन्दी के नाम पर हिन्दी के उस रूप को ग्रहण करते हैं जिसकी प्रवृत्ति संस्कृत की ओर है। अपभ्रंश तथा अवहट्ट रूपों को हिन्दी कहना क्या समीचीन न होगा? यदि हिन्दी का वर्तमान रूप उस प्राचीन रूप का विकास है तो अवहट्ट काल के ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की सामग्री के रूप में स्वीकार किए जाने चाहिए। यही समस्या हिन्दी की व्याप्ति के सम्बन्ध में उत्पन्न होती है। हम हिन्दी का क्षेत्र जेसलमेर, रायपुर, नेपाल की पहाड़ियों, अम्बाला तथा शिमला तक मानते हैं। परन्तु हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वालों ने उक्त सीमाओं में आने वाले समस्त साहित्य के इतिहास पर विचार नहीं किया है। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय यह भी सोचना पड़ेगा कि हिन्दी की किन-किन उपभाषाओं के साहित्य पर विचार किया जाए। अभी तक हमारे इतिहासकार प्रायः ब्रज और अवधी के साहित्य पर विचार करते रहे हैं। बुंदेली, कन्नौजी, बघेली आदि के साहित्य की उपेक्षा ही हुई है। इस प्रश्न पर हमारे साहित्यकारों को और साहित्य का इतिहास लिखने वालों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में संवत् 1050 से संवत् 1375 की कालावधि को हिन्दी साहित्य का आदिकाल मानकर इसका नाम काव्य रचना की प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर 'वीरगाथा - काल रख दिया। साथ ही आदिकाल के सामान्य परिचय के अन्तर्गत यह भी लिख दिया- 'प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी-साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जैसे गाथा ने से प्राकृत का बोध होता था, वैसे ही दोहा या दूहा कहने से अपभ्रंश या काव्य प्रचलित भाषा का पद्य समझा जाता था। अपभ्रंश या प्राकृत भाषा हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है। मुंज और भोज के समय (संवत् 1050 के लगभग) में तो ऐसी अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य या काव्य रचनाओं में भी पाया जाता है। अतः हिन्दी का आदिकाल संवत् 1050 से लेकर संवत् 1375 तक अर्थात् महाराजा भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय के कुछ पीछे तक माना जा सकता है। यद्यपि जनश्रुति इस काल का आरम्भ और पीछे तक ले जाती है और संवत् 770 में भोज के पूर्वपुरुष राजा मान के सभासद पुष्य नामक किसी बंदीजन का दोहों में एक अलंकार-ग्रंथ लिखना बताती है। पर इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।'

एक ओर तो शुक्ल जी प्राकृताभास की अंतिम अपभ्रंश से हिन्दी साहित्य का आविर्भाव बताते हैं और संवत् 770 के आसपास हिन्दी के प्रथम कवि पुष्य और उसकी रचना का उल्लेख करते हैं और दूसरी ओर झट से संवत् 1075 से संवत् 1375 की कालावधि को हिन्दी का आदिकाल मान लेते हैं। वास्तव में परवर्ती खोजें शुक्लजी के उक्त कथन को पुष्ट करती हैं। विद्वानों ने संवत् 700 से संवत् 1070 तक की कालावधि को हिन्दी साहित्य का आदिकाल माना है तथा अवहट्ट को हिन्दी साहित्य की हिन्दी का प्रारम्भिक रूप माना है। संवत् 1070 से संवत् 1350 की कालावधि को, जिसे शुक्ल जी ने आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल कहा है- हिन्दी साहित्य का आरम्भकाल कहा है।

दूसरी समस्या है - हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किस प्रकार किया जाए। हिन्दी - जगत् में सामान्यतः शुक्लजी द्वारा किया विभाजन और उनका नामकरण के ही मान्यता प्राप्त मिली। शुक्ल जी ने संवत् 1050 से हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरम्भ माना है और उसका काल विभाजन इस प्रकार किया है-

(1) आदिकाल अथवा वीरगाथा काल - संवत् 1050-1375 तक।

(2) पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तिकाल सन् 1375-1700 तक,

(3) उत्तर मध्यकाल अथवा रीतिकाल - संवत् 1700 से 1900 तक, तथा

(4) आधुनिक काल अथवा गद्यकाल - संवत् 1900 से अब तक।

आदिकाल के बारे में हम लिख ही चुके हैं। भक्ति-काल की कालावधि सर्व-स्वीकृत है। इसके नाम के बारे में किसी को कोई आपत्ति नहीं है। रीतिकाल के नामकरण के बारे में विवाद दिखाई देता है। कुछ विद्वान रीतिकाल को शृंगारकाल अथवा अलंकृत काल कहना चाहते हैं। परन्तु अन्ततः रीतिकाल ही उसका सर्वाधिक उपयुक्त नाम माना गया है। रीतिकाल के बारे में एक तथ्य ध्यातव्य है कि इस काल में भूषण द्वारा वीररस में रीति निरूपण किया जाना यह प्रमाणित करता है कि इस काल में कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति रीति-निरूपण के प्रति थी। अतएव इसका नाम रीतिकाल सर्वाधिक उपयुक्त है।

रीतिकाल की कालावधि भी विवादास्पद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी को रीतिकाल का प्रथम आचार्य कवि माना हैं, क्योंकि उन्हीं के साथ श्रृंगार रस में रीति-निरूपण की परम्परा चली। चिन्तामणि त्रिपाठी की भाँति अन्य कवि भी इस मत के अनुयायी रहे। इस संदर्भ में एक अन्य तथ्य भी दृष्टव्य है। रीति-निरूपण-सम्बन्धी प्रथम रचना केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' है। यानी केशवदास रीतिकाल के प्रथम आचार्य ठहरते हैं। वह अलंकार मत के अनुयायी थे और उनके 50 वर्षों बाद तक कोई रीतिग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है और रीतिग्रन्थ-प्रणयन की परम्परा उनसे आरम्भ नहीं हुई। अतएव एक मत परम्परा को महत्व देता है। इसी को आधार मानकर आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का आरम्भ काल चिन्तामणि त्रिपाठी के रचना-काल संवत् 1700 से माना है। द्वितीय मत परम्परा की अपेक्षा ग्रन्थ रचना को और रीति रचना के मार्ग के प्रशस्तीकरण को अधिक महत्व देता है। इस हिसाब से रीतिकाल का आरम्भ काल पचास वर्ष पीछे चला जाता है और इस प्रकार रीतिकाल की कालावधि संवत् 1650 से संवत् 1900 तक ठहरती है।

आधुनिक काल के संदर्भ में भी एक भिन्न दृष्टि से विचार किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने संवत् 1900 से अर्थात् सन् 1857 में होने वाले प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से अद्यतन कालावधि को आधुनिक कहा है तथा इसको गद्यकाल नाम दिया है।

आधुनिक काल द्वारा खड़ीबोली साहित्य का बोध होता है। इस कालावधि में हिन्दी-साहित्य जगत् ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। उसमें अनेक वाद, प्रवृत्तियाँ, काव्य-धाराएँ आदि के दर्शन होते हैं। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग तो परम्परा के युग थे। उनके साहित्यिक मूल्य और प्रतिमान प्रायः वे ही रहे जो प्रचलित थे और परम्परा के रूप में चले आ रहे थे। केवल गद्य का प्रवर्तन एक नवीनता रही। दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम दिनों में तार सप्तक के प्रकाशन के साथ हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में नवीन निकष एवं धरातल समुपस्थित किए गये। इस प्रकार आचार्य शुक्ल के द्वारा और अधिकांश लोगों के द्वारा मान्य आधुनिक काल दो भागों में विभक्त हो जाता है- स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व

का काल और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की कालावधि। स्वतन्त्रता के बाद वाले समय में ही काव्य - जगत् में बुद्धिवादी दृष्टिकोण विशेष रूप से पनपा है। अतः इसी को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इस प्रकार हम यदि स्वतन्त्रता- पूर्व कालावधि को गद्यकाल कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। परवर्ती काल आधुनिक काल कहा जाना चाहिए। कविता के प्रतिमानों के आधार पर आधुनिक काल का युग निर्धारित किया जा सकता है, इस प्रकार हमारे सामने आधुनिक विभाजन की भी समस्या है। अतएव काल-विभाजन की समस्या को शीघ्रातिशीघ्र सुलझाना चाहिए ।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने ''वीरगाथा काल' को चारणकाल कहा है क्योंकि उस काल में रचना काव्य करने वाले आधुनिक कवि वृन्द चारण या बंदीजन हुआ करते थे। यदि रचनाकारों को ही नामकरण का आधार माना जाए,तो हिन्दी साहित्य के काल-क्रम का नामकरण इस प्रकार होना चाहिए- चारण-काल, सन्त-काल, सूफी-काल, वैष्णव-काल, आचार्य-काल आदि इस प्रकार संवत् 1900 तक तो इस प्रकार के नामकरण से काम चल जाता है, परन्तु तत्पश्चात् ! आधुनिक काल के विभिन्न युगों का नामकरण किस प्रकार हो-यह गम्भीर समस्या भी हमारे सामने समुपस्थित है।

आधुनिक काल में अनेक काव्य-प्रवृत्तियों के अलावा अनेक प्रकार की विचारधाराओं की भी अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। तब क्या आधुनिक काल के विभिन्न युगों को सुधारवादी काल, फ्रायडवादी काल, मार्क्सवादी काल, अस्तित्ववादी काल, मानवतावादी काल आदि कहना समीचीन होगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की सामान्य समस्याओं की ओर इंगित करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में सन् 1938 में लिखा था कि 'हिन्दी साहित्य में अभी तक बहुत से ऐसे स्थल हैं जिनके निर्धारण में शक किया जाता है। गोरखनाथ का समय, जटमल का गद्य, सूरदासजी की जन्म तिथि, कबीर का चरित्र आदि विषयों पर अभी तक निश्चित मत नहीं हो पाया है।' हिन्दी साहित्य-लेखन की यह समस्या अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।

भक्तमाल, वैष्णवन की वार्ताओं आदि में यद्यपि कवियों और भक्तों के चरित्र वर्णित हैं, तथापि उनमें तिथियों का स्पष्ट निर्देश नहीं है। कवियों का पूर्ण चरित्र न होने के कारण हमें इतिहास में कहीं लगभग शून्य का सहारा लेना पड़ता है, कभी बहिर्साय अथवा जनश्रुति का। कहीं हम किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर कवि का जीवन जानने की चेष्टा करते हैं, कहीं उसकी कविता के उद्धरण अथवा भाषा के विकास के सहारे उससे परिचय प्राप्त करते हैं, परन्तु इस प्रकार के आधार लेने पर हमें कवि विशेष के जीवन की एक-दो ही घटनाएँ मिल पाती हैं। उनमें भी कुछ न कुछ संदेह बना ही रहता है। तिथियों के मिध्यात्मक रूप को न जान सकने के कारण हमें साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन में भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आजकल जो शोध कार्य हो रहे हैं, उनके द्वारा कवियों की रचनाओं के सम्बन्ध-सूत्र स्थापित करने में, उनकी काव्य-प्रवृत्तियों से परिचित होने में, कवि की मान्यताओं एवं काव्य के मूल्यों को समझने में अवश्य सहायता प्राप्त होती है। परन्तु इनके द्वारा उपलब्ध निष्कर्ष इतिहास-लेखन में सहायक नहीं होते हैं। राजस्थान के अनेक पुस्तकालयों में, मथुरा-वृन्दावन के मन्दिरों में तथा प्राचीन कवि-गृहों में विपुल सामग्री भरी पड़ी है, जो साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो सकती है, पर हिन्दी-साहित्य के अध्येता एवं शोधकर्ता इस ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दे रहे हैं। इसी प्रकार फारसी लिपि में लिखा हुआ हिन्दी का साहित्य हमारे लिए विदेशी और अस्पृश्य बना हुआ है। बहुत सम्भव है कि उस सामग्री के लेखकों ने उसमें कवियों के समय, रचना-काल आदि सम्बन्धी उल्लेख किये हों। इन रचनाओं की खोजबीन करने पर महत्वपूर्ण साहित्यिक सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए। दक्खिनी हिन्दी में होने वाले शोध-कार्य के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन हुआ है।

साहित्यकारों के प्रामाणिक जीवन-चरित तथा रचनाओं के प्रमाणिक पाठ उपलब्ध होने पर ही हिन्दी साहित्य का प्रमाणिक इतिहास लिखा जा सकता है।

डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'सरोज सर्वेक्षण' में एक अन्य समस्या की ओर संकेत किया है। 'सरोज' में संवतों के सम्मुख 30 लगा हुआ है। सर्वप्रथम **जार्ज ग्रियर्सन** ने 30 का अर्थ उत्पन्न लगाया और उन्होंने 'शिवसिंह सरोज' में उल्लिखित इन संवतों को कवियों का जन्म, उत्पत्ति-काल मान लिया। ग्रियर्सन के बाद भी ये संवत् उत्पत्ति-काल के रूप में स्वीकृत हुए। जहाँ नवीन उपलब्ध सूत्रों की सहायता से ये संवत्, जन्म-काल, उत्पत्ति संवत् सिद्ध नहीं हुए, वहाँ आलोचकों ने सरोज के संवतों को अशुद्ध मान लिया। अनेक परीक्षणों एवं पर्यवेक्षणों के उपरान्त यह निष्कर्ष निकला कि 30 का अर्थ उपस्थित है और इस प्रकार सरोज का 30 कवि की उपस्थिति का सूचक है, न कि उत्पत्ति का सूचक। अतएव इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहासों में आवश्यक सुधार होना चाहिए।

सरोज सर्वेक्षण में डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने सरोज के संदर्भ में होने वाली एक अन्य त्रुटि की ओर ध्यान दिलाया है। एक ही कवि तीन-तीन, चार-चार कवियों के रूप में उल्लिखित है तथा अनेक कल्पित कवियों के उल्लेख हैं अथवा अनेक ऐसे कवियों के उल्लेख हैं जिनकी कोई प्रामाणिक रचना उपलब्ध नहीं है। कई रचनाओं पर गलत रचनाकारों के नाम दिए गये हैं। कई-कई जगह तो स्त्री कवयित्री भी पुरुष कवि के रूप में उल्लिखित है।

इसी प्रकार की त्रुटियाँ हस्तलेखों के संदर्भ में देखने में आई हैं। हस्तलेखों में साहित्यकार और लिखिया दोनों के नाम देने की परम्परा थी। इतिहास लिखते समय रचनाकार और उसके लिखिया के मध्य भेद करने में भूल हो जाना बहुत सम्भव है। अतएव हस्तलेखों के आधार पर संकलित सामग्री का परीक्षण उक्त भेद को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने 'शिवसिंह सरोज' से सम्बन्धित और भी कई भूलों प्रति संकेत किया है। चूँकि हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में सरोज मुख्य आधार रहा है। अतः हिन्दी साहित्य-लेखन में कई त्रुटियों का समावेश हो गया है। अतएव आवश्यक यह है कि शिवसिंह सरोज का एक सुसम्पादित एवं प्रामाणिक संस्करण तैयार किया जाए। इस संदर्भ में डॉ. किशोरीलाल गुप्त का कहना है कि सरोज का सुसम्पादित संस्करण उसके सबसे पुराने संस्करण, तृतीय संस्करण के आधार पर तैयार किया जाना चाहिए, क्योंकि उसका जो सातवाँ (अंतिम) संस्करण उपलब्ध है, उसमें अनेक परिवर्तन किये जा चुके हैं। कुछ कवियों के पुनर्मूल्यांकन प्रकाशित हुए हैं। इनके द्वारा भी कवि विशेष का अधिक विवेचनात्मक अध्ययन हुआ है और इतिहास-लेखन में विशेष सहायता प्राप्त नहीं हुई है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का इतिहास लिखते समय हमारे सामने यह समस्या उत्पन्न होती है कि किस साहित्यकार को इतिहास में स्थान दिया जाय और किसकी उपेक्षा की जाए, क्योंकि आजकल साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में नित्य नये रचनाकार उभरकर आ रहे हैं और प्रायः प्रत्येक कवि युगप्रवर्तक, अमर रचनाकार आदि होने का दावेदार बनता है। इस संदर्भ में हमारा सुझाव है कि समाज की चेतना पर रचनाकार के प्रभाव का निर्णय भविष्य करेगा। अतः इतिहास में केवल दिवंगत रचनाकारों को ही स्थान दिया जा सकता है। ऐसा करते हुए हमें कुछ महत्वपूर्ण एवं सर्वमान्य रचनाकारों की उपेक्षा करनी पड़ सकती है। यह भी हो सकता है कि इतिहास के साथ परिशिष्ट के रूप में हम वर्तमान कवियों के विवरण की एक तालिका जोड़ दें, जिनके महत्व आदि पर भविष्य में इतिहास लेखक विचार कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अनेक शोध प्रबन्ध सामने आ रहे हैं। इनमें कुछ प्रतिशत तो उपयोगी होंगे ही। तब समस्या यह है कि नित्य नई उपलब्ध सामग्री को साहित्य के इतिहास में किस प्रकार सम्मिलित किया जाए ?

उर्दू को हिन्दी की शैली मानते वाले विद्वानों की कमी नहीं है। तब समस्या यह है कि उर्दू के रचनाकारों को हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान दिया जाए अथवा नहीं और यदि दिया जाए तो किस रूप में और किस सीमा तक। हमने अभी तक पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, पं. माधव प्रसाद मिश्र आदि साहित्यकारों का तथा अनेक अल्पज्ञात रचनाकारों का सम्यक् मूल्यांकन नहीं किया है। आवश्यकता है इनका सम्यक् मूल्यांकन करके हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्हें उचित स्थान प्रदान करने की।

इनके अलावा आचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी उन रचनाकारों को वरीयता प्रदान करते थे, जो अंग्रेजी भाषा और साहित्य के ज्ञाता थे। फलतः अनेक रचनाएँ सरस्वती में स्थान न पा सकने के कारण अप्रकाशित बनी रहीं। इन रचनाओं का संकलन एवं प्रकाशन द्विवेदीयुगीन धारणाओं में परिवर्तन का हेतु बन सकता है। सम्भवतः स्वयं आचार्य द्विवेदी के सम्बन्ध में भी हमारी धारणा में कुछ हेर-फेर हो जाए। इसी प्रकार हिन्दी में रचित साहित्येतर ग्रन्थों के अध्ययन की भी समस्या हमारे सामने है।

पद्य का इतिहास लिखते समय हमने परिनिष्ठित काव्य पर ही विचार किया है, लोक-साहित्य और उसके रचनाकारों की उपेक्षा की है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या हिन्दी साहित्य तथाकथित कतिपय शिष्ट नगर- निवासियों तक ही सीमित है। तब हमारे सामने लोक-साहित्य, लोकगीत, लोक नाट्य, स्वांग आदि को हिन्दी - साहित्य के इतिहास में स्थान देने या न देने की समस्या उपस्थित होती है। इस ओर गम्भीरतापूर्वक विचार-विनिमय अपेक्षित है, क्योंकि पिछले 50-60 वर्षों में लोक-साहित्य के क्षेत्र में संकलन एवं शोध का कार्य बहुत ही व्यापक स्तर पर हुआ है। सन् 1857 ई. में होने वाले प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम से अब तक की कालावधि को आधुनिक काल कहा जाता है। आधुनिक काव्य द्वारा खड़ीबोली में रचित साहित्य का बोध होता है। परन्तु हमने यह विचार नहीं किया है कि 18वीं शताब्दी में हमारे ग्रामीण अंचल में हिन्दी साहित्य का कितना प्रचार था तथा ग्रामीण जन-मानस की रुचि कितनी परिष्कृत थी। हमें हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय इस ओर ध्यान देना चाहिए। ब्रहन साहब द्वारा संकलित 'हिन्दी कविता संग्रह' तथा पद्मभूषण पं. श्री नारायण चतुर्वेदी द्वारा लिखित आधुनिक हिन्दी गद्य का आदिकाल सदृश पुस्तकों की खोज करके आधुनिक काल की इस छूटी हुई कड़ियों को जोड़कर हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा करना चाहिए। हम देखेंगे कि हमारी ग्रामीण जनता उतनी अनपढ़ नहीं थी जितनी अनपढ़ हम उसको मान बैठे हैं। पं. श्री नारायण चतुर्वेदी प्रणीत आधुनिक काल के गद्य का आदिकाल पढ़ने पर हम यह भी देख सकते हैं कि सन् 1857 ई. के पूर्व ही खड़ीबोली एक निश्चित रूप ग्रहण कर चुकी थी, बहुत कुछ वर्तमान खड़ीबोली का रूप।

हमें काँगड़ा शैली के चित्रों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इन चित्रों से सम्बन्धित गुरुमुखी एवं नागरी लिपियों में ब्रजभाषा के अनेक छन्द लिखे हुए हैं। उनका अध्ययन ब्रजभाषा काव्य के पुनर्मूल्यांकन में सहायक सिद्ध होगा। हो सकता है कि हम इस निष्कर्ष को भी प्राप्त कर सकें कि आधुनिक काल के पुनर्जागरण में ब्रजभाषा-काव्य का कितना योगदान रहा।

भारतेन्दु युग में प्रकाशित होने वाली -पत्रिकाओं में प्रकाशित सम्पूर्ण सामग्री को अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल नहीं किया गया है। हमारे विचार से उसमें देशभक्ति की भावना उससे कहीं तीव्र एवं उग्र थी जितनी हम समझते हैं। वह राजभक्ति के म्यान में रहकर भी नंगी शमशीर थी। हिन्दी गद्य के विकास में हम ईसाई पादरियों के योगदान के महत्व को तो स्वीकार करते हैं, परन्तु हमने उन अंग्रेजों की हिन्दी के प्रति की गई सेवाओं का मूल्यांकन

नहीं किया है जो सिविल सर्विस में होते हुए भी हिन्दी की ओर आकृष्ट हुए थे। ईसाई पादरियों का हिन्दी - प्रेम बहुत कुछ स्वार्थवश था, जबकि इन अंग्रेज अफसरों का हिन्दी-प्रेम एवं हिन्दी-सेवा सर्वथा विशुद्ध हिन्दी के प्रेमवश थे।

कई कवियों एवं लेखकों के विषय में प्रचारित भ्रांत धारणाओं का निवारण हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की एक गम्भीर समस्या है। उदाहरणार्थ हम पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की चर्चा केवल एक कहानीकार के रूप में करते हैं और पं. श्रीधर पाठक को केवल कवि रूप में ही जानते हैं। गुलेरीजी ने कई सुन्दर गीत लिखे थे और कविताओं की रचना की थी। पं. श्रीधर पाठक उच्चकोटि के गद्यकार भी थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन इस प्रकार होना चाहिए कि एकाकी पक्षों का उचित निवारण हो जाए और नवीनतम शोध-निष्कर्ष उसमें स्थान प्राप्त कर सकें। पं. अम्बिकादत्त विरचित उपन्यास 'आश्चर्य वृत्तान्त' तथा अमृतलाल चक्रवर्ती द्वारा लिखित 'चन्दा' उपन्यास सदृश अनेक अल्पज्ञात कृतियाँ अंधकार के गर्त में पड़ी हुई हैं। इनकी खोज करके हमें हिन्दी साहित्य के इतिहास को पूर्ण बनाना होगा। हिन्दी साहित्य के प्रचार कार्य को हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान नहीं दिया है। हमारा सुझाव है कि इस संदर्भ में नियुक्त हण्टर कमीशन सदृश संस्थाओं के सम्मुख होने वाली गवाहियों को एकत्र करके उनके अध्ययन द्वारा प्राप्त आवश्यक निष्कर्षों सहित हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन को एक नई दिशा प्रदान की जाए।

सारांश रूप में यह कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का कार्य अभी तक वस्तुतः सुविधावादी रहा है। परन्तु हमें समझ लेना चाहिए कि हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्ण एवं सर्वांगीण इतिहास का लेखन हिन्दी के सेवकों का नैसर्गिक दायित्व है। इस दायित्व के निर्वाह हेतु उन्हें मौलिक आधार निर्धारित करने होंगे। इस कार्य में क्षेत्रीय अंश का समाकलन करना होगा अर्थात् विभिन्न स्थलों का अंचलवार साहित्यिक इतिहास लिखना होगा और तब आंचलिक योगदान को समायोजित करके इतिहास-लेखन के कार्य को आगे बढ़ाना होगा। प्रत्येक अंचल की प्रत्येक विधा पर पृथक् रूप से शोध कार्य किया जाए और उसका समायोजन एवं मूल्यांकन करके हिन्दी साहित्य के इतिहास का लेखन किया जाए। ध्यातव्य है कि यह कार्य व्यक्तिगत स्तर पर न होकर संस्थागत स्तर पर होना सम्भव हो सकता है। आँचलिक स्तर पर कार्य व्यक्तिगत स्तर पर भले ही हो, परन्तु उपलब्ध समस्त सामग्री के समायोजन का उत्तरदायित्व किसी संस्था को ही ग्रहण करना होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की समस्या मौलिक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के नाम पर अभी तक जो कुछ लिखा गया है, उसमें बहुत कुछ अधूरा एवं अप्रमाणिक है। समस्या यह है कि जीवनी सम्बन्धी प्रामाणिक सामग्री, प्रामाणिक कृतित्व तथा हस्तलिखित प्रतियों के प्रामाणिक पाठ उपलब्ध हों। नवीन शोध कार्य के प्रकार, में उक्त सामग्री का परीक्षण एवं शोधन किया जाए। तब आदि से अन्त तक हिन्दी साहित्य का इतिहास नये सिरे से लिखा जाए। यह कार्य या तो किसी साहित्य-सेवी संस्था द्वारा किया जाये अथवा अध्यापकों की विशेष समितियाँ गठित करके विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से इस कार्य को पूरा करने का प्रयत्न किया जाय।

4.4. भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति

जीवन मूल्य–स्वतन्त्रता आन्दोलन के सूत्रपात के साथ भारतवासियों ने एक सम्यक् जीवन की परिकल्पना की थी। इसके पीछे था- भारत के पुनर्जागरण का उद्घोष, जिसके सूत्रधार थे राजा राममोहन राय। राजा राममोहन राय के दिमाग में इस राजनीतिक स्वतन्त्रता की बात नहीं थी, जो 20वीं शताब्दी में विकसित हुई, क्योंकि अंग्रेजी शासन ने सर्वत्र व्याप्त अराजकता एवं अज्ञान के अंधकार को दूर करके जीवन को रहने योग्य बना दिया था। रेल, तार, डाक,

कुशल प्रशासन आदि ने ब्रिटिश शासन के प्रति आस्था का भी वातावरण बना दिया था, जिसको लक्ष्य करके पचास वर्ष बाद भारतेन्दु जी अंग्रेजी राज्य का खुलकर विरोध करने के पहले दो बार सोचने को विवश थे-

अंग्रेज राज सुख-साज सजे सब भारी।

पै धन विदेस चल जात यहै अति ख्वारी।

इसके अतिरिक्त राजा राममोहन राय ने समाज के सुधार एवं विकास को लक्ष्य करके अनेक मार्गों का सूत्रपात किया था। नारियों की दुर्दशा का सुधार, शिक्षा का प्रसार, गरीबी से मुक्ति, कृषक की शोषण से मुक्ति आदि। कहने का तात्पर्य है कि जीवन के मूल्यों की स्थापना की ओर हमारा ध्यान सर्वप्रथम राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित भारतीय पुनर्जागरण के साथ हुआ और गांधीवाद के युग में हमारे जीवन-मूल्यों ने एक निश्चित रूप ले लिया था। इतना ही नहीं, उनकी स्थापना का श्रीगणेश भी हो गया था, आजादी की लड़ाई लड़ते समय महात्मा गाँधी ने सामान्य भारतीय जीवन में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान किया, वह था उन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा जिनके सहारे वह अपने जीवन की कठिनतम परीक्षा का सामना कर सके, अपनी जिंदगी की बड़ी से बड़ी लड़ाइयाँ हँसते-हँसते लड़ सके। यदि ऐसा न होता तो निस्सहाय एवं निहत्था भारतवासी कैसे कह सकता-

हम सीना खोल खड़े हैं, ऐ तोप चलाने वाले।

X X X

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।

देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

X X X

हम चरके से लेलेउ सुराज हमार कोई का करिबौ।

X X X

है स्वर्ग से भी बढ़ कर इस वक्त जेल जाना।

इस प्रकार गाँधी जी ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जिस मूल्य की स्थापना की वह थी - निर्भयता। यदि हम अभय बनने-बनाने की पृष्ठभूमि को देखें, तो हमारी समझ में गाँधी जी के इस वरदान का महत्व आ सकता है। भारतवासी, विशेषकर जन्मजात भीरु होता है- धर्म भीरु, समाज भीरु, जाति- भीरु, ईश्वर भीरु, शासन- भीरु (राज भीरु), माता-पिता भीरु आदि। पहले वह तो चुनौती देने की बात सोच भी नहीं पाता है और यदि उसका साहस जुटाने लगता है तो वह चुनौती देने को भी अपराध मानने लगता है। वह दैव के भरोसे रहता है और मर्यादा का उल्लंघन, नियम को तोड़ना वह अपराध मानने लगता है। वह यथास्थिति को स्वीकार करना जीवन का सर्वोपरि मूल्य मानता आया है। गाँधी जी ने इस मान्यता को पूरे साहस के साथ ललकारा। उन्होंने स्वयं राम के नाम पर जीना सीखा, आशा एवं विश्वास का सम्बल लिया और समाज की मूलगत भीरुता को चुनौती दी। उन्होंने आस्था को संकल्प से जोड़ा। किसी तरह की गुलामी को अस्वीकार करने के लिए उन्होंने राम नाम को एक नये कर्तव्य बोध से जोड़ा। फलतः परम्परा से देश को मुक्त करना भगवान श्रीराम की सेवा बन गया। जिन ग्रामवासियों ने कभी गाँधी बाबा के दर्शन नहीं किए थे, वे भी

गाँधी की जय बोलते हुए तिरंगा हाथ में लेकर सब कुछ त्यागकर आजादी के नाम पर लाठी, गोली खाने के लिए निकल पड़े, जहाँ उसे निर्भयता की भूतपूर्व अंतरंगता का साक्षात्कार होता है।

केशवचन्द्र वर्मा का यह कथन ध्यातव्य है 'भारत के समाज को गाँधी की यह अद्वितीय देन थी। उससे पूर्व हमारे देश के किसी महापुरुष ने न उसे चेतना की समग्रता दी और न उसे आम आदमी के जीवन का गतिमान ऊर्जा स्रोत बना सके। वह ऐसा बिजलीघर साबित हुआ जो एक ही केन्द्र में ऊर्जस्वित नहीं था, बल्कि जहाँ-जहाँ वह बिजली पहुँची वहीं एक छोटा बिजलीघर स्वतः निर्मित हो गया। यह काम गाँधी ने आम आदमी में व्याप्त अनेक भय और आशंकाओं से मुक्त करके किया। निर्भयता की इस लहर ने अंग्रेज की तोप, गोली, बन्दूक, जेल द्वारा नृशंस दमन को परास्त कर दिया है।' उल्लेखनीय है कि गाँधी ने स्वयं लिखा है कि वह बचपन में बहुत डरपोक थे, यहाँ तक कि अँधेरे में उनको बहुत डर लगता था। परन्तु उन्होंने अपनी श्रद्धा एवं आस्था के बल पर डर पर विजय प्राप्त कर ली। अपनी इस आस्था और श्रद्धा के कणों को उन्होंने विकरण द्वारा भारत की जनता तक पहुँचा दिया। परिस्थितियों का ऐसा चक्र चला कि स्वतन्त्र भारत में किसी भयमुक्त व्यक्ति अथवा समाज की कल्पना भी दुष्कर है। आहार, निद्रा, भय और काम की आदिम अथवा पाशविक वृत्तियाँ समाज के सिर पर सवार हो गई हैं। गाँधी ने जिस निर्भय समाज की सृष्टि की थी, वह समाज कहाँ विलीन हो गया। इसका उत्तर उन्हें देना है जो भारतीयता की पहचान करने के इच्छुक हैं अथवा भयमुक्त भारत का संकल्प लेकर घर से निकले हैं।

निराश होने का कोई कारण नहीं है। न गाँधी अभी मरा है और न भारतीय मिट्टी से लगी हुई श्रद्धा और आस्था निश्शेष हुई है। इनको पुनः जाग्रत करके ही, इसकी गहरी जड़ों को पहचान करके ही हम या अन्य भारतीयता की पहचान कर सकते हैं। पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने ढंग से निर्भयता को प्रतिष्ठित करने का कार्य किया था परन्तु गाँधी का नाम लेकर। जनमानस में निर्भयता की प्रतिष्ठा का श्रेय नेहरू ने गाँधी को ही दिया था। भारतीय समाजशास्त्र के अध्येता को आस्था व श्रद्धा के परिप्रेक्ष्य में निर्भयता का अध्ययन करके ही पूरी बात समझ में आयेगी। भगवान के प्रति आस्था किस प्रकार निर्भयता को जन्म देती है- इसका उत्तर देने में समर्थ अध्येता भारतीयता के प्रति महत्वपूर्ण पक्ष को उजागर कर सकेगा। यह निर्भय मनुष्य आधुनिक युग में उपभोक्ता संसार में एक दुर्बल किस्म की वस्तु होकर रह गया है।

4.4.1. राजनीति नैतिकता अथवा अध्यात्मिकता के साथ

महात्मा गाँधी के जीवन का आधार था आस्था एवं श्रद्धा के प्रति समर्पण भाव। उनकी राजनीति सत्य और अहिंसा पर आधारित थी। राजनीत को उनकी देन थी - नीति और नैतिकता तथा उनकी परिकल्पना का शासन था - रामराज्य की स्थापना। गम्भीरता से विचार करने पर हम देखते हैं कि इस समस्त मान्यता का आधार है भारतीय आध्यात्मिक चिन्ताधारा तथा व्यावहारिक उपासना। उपासना का अर्थ कोश में इस प्रकार दिया गया है- सेवा, पूजा करना, आराधना, ध्यान आदि द्वारा इष्टदेव का चिन्तन। अद्वैत दर्शन और ब्रह्म की सर्वव्यापकता की मान्यता के फलस्वरूप विश्व का प्रत्येक कण, चराचर जगत इष्टदेव का रूप है। फलतः जीव-मात्र की सेवा लोक-मंगल का भाव भारतीय जीवन-पद्धति के अनिवार्य अंग होने ही चाहिए। सेवा में अनासक्ति का भाव निहित रहता है। गाँधी जी ने भारतीयता के इस रूप को, इस रहस्य को समझा था और तदनुसार जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेकर वहाँ जिये थे। उक्त उल्लिखित उनकी समस्त धारणाएँ - अवधारणाएँ इसी चिन्ताधारा की नींव पर खड़ी हुई थीं।

अब यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि उपासना भारतीय जीवन-पद्धति का एक प्रमुख अंग रही है और है और भविष्य में भी रहेगी। वह भारतीयता की एक प्रमुख पहचान है।

किसी न किसी रूप में अपने समस्त व्यक्तित्व को केन्द्रित करके परम तत्व का साक्षात्कार करने की अनेक पद्धतियाँ यहाँ विकसित हुई हैं और भविष्य में भी विकसित होती रहेंगी। दृष्टव्य यह है कि उपासना पद्धति ध्यान से जुड़ती है और वह सर्वथा व्यक्तिगत होती है। पति शैव और पत्नी वैष्णव पद्धति को मानने वाले देखे जाते हैं। परन्तु इस मुद्दे को लेकर उनके मध्य झगड़े का सवाल नहीं उठता है, क्योंकि उसके साथ न वोट की राजनीति है और न कुर्सी का झगड़ा। तालाब सामने है, पखेरू आएँ, पानी पीएँ और उड़ जाएँ। उपासना पद्धति को सर्वसुलभ और सामाजिक कार्य बनाने के लिए उपासना के स्थलों, मन्दिरों आदि का विकास हुआ। यहाँ समानधर्मा व्यक्ति एकत्र हों तथा उपासना को अधिक रसमयी एवं तीव्र बनाएँ। उपासना, सत्संग, पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा ज्ञानवर्धन के अलावा उपासना में निहित पोषक तत्वों का भी ज्ञान प्राप्त होता रहता है।

ऐसे भी अवसर आये जब समान उपासना पद्धति मानने वालों में उपसम्प्रदाय बन गये और उनके मध्य तनाव उत्पन्न हुए। रोमन कैथोलिक व प्रोटेस्टेण्ट, शिया-सुन्नी, शैव-वैष्णव के झगड़े सर्वविदित हैं। कालान्तर ये झगड़े समाप्त हुए और सब आपस में घुलते-मिलते गये। दुर्भाग्यवश शिया-सुन्नी के झगड़े अब भी सुनाई पड़ते हैं।

इस एकल समूह की आस्था को अन्य दिशाओं में ले जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। धर्म के नाम पर पाखण्ड जाल में फंस जाना भारतीय जीवन की एक सामान्य घटना है। भारतीय उपासना-पद्धति की प्रमुख विशेषता यह रही है कि अन्य धर्म-स्थलों की तरह हिन्दुओं के धर्मस्थल शस्त्रागार, षड्यन्त्र केन्द्र और दुर्गों के रूप में विकसित नहीं हो पाये हैं। कारण स्पष्ट है कि मसजिद के मुल्ला / इमाम और गिरिजा घर के बिशॉप की भाँति मन्दिर के पुजारी को फतवा जारी करने का अधिकार कभी नहीं रहा। इसी कारण हिन्दू धर्म की उपासना पद्धति में सैक्यूलर अथवा काफिर जैसे शब्दों का प्रादुर्भाव नहीं हो सका है। इसका एक भयंकर दुष्प्रभाव भी देखने में आता है। राजनीति द्वारा धर्म का आध्यात्मिकता का इतना छद्म सहारा लेकर अराजकता को प्रश्रय देने का काम जितना इस देश में सुलभ हुआ, वह विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है।

गाँधीजी ने उपासना-पद्धति के नैतिक पक्ष के प्रति प्रतिबद्धता स्थापित की और राजनीति को राजनीतिक स्वरूप से दूर रखा। उन्होंने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया। इसी कारण धार्मिक आस्था व श्रद्धा को राजनीति की ओर मोड़ने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। भारतीयता की पहचान करने के जिज्ञासुओं को राजनीति और जिज्ञासुओं के सम्बन्ध पर पुनर्विचार करना चाहिए। यह भी स्मरण रखें कि प्रस्तुत स्थिति यह है कि राजनीति के नेताओं ने चाहे देश को जाति, सम्प्रदाय और वोटों में बाँट दिया है, अब सफल नेताओं का प्रतिमान ही यह हो गया है कि वोटों की खरीद-फरोख्त में कौन कितना सक्षम है। धर्म और उपासना पद्धति के परिप्रेक्ष्य में भारतीयता की पहचान करने के लिए हमें गाँधी-मार्ग पर चलकर गाँधीजी तक पहुँचना होगा। हमारे राजनीतिक नेताओं की वर्तमान नीतियाँ भारत की अस्मिता को मिटा देने वाली हैं। हमें इसके प्रति सावधान रहना है। उपाय एक ही है कि हम गाँधीजी की तरह भारतीयों की आस्था से खिलवाड़ न क़रें और उसे सही दिशा प्रदान करें। उपास्य या इष्ट के प्रति उनकी आस्था को राजनीति की ओर जाने से रोकें। उपाय है उसको सेवा भाव से भर देना अथवा उदीयमान युवक-युवतियों को सेवा-कार्यों में लगाने का प्रयत्न करें। गाँधी के मार्ग पर चल कर ही हमारा कल्याण सम्भव नहीं है। भारतीयता की पहचान के लिए हमें

राजनीतिज्ञों की सभाओं में न जाकर देवमन्दिरों अथवा तीर्थ-स्थानों के प्रायोजित सत्संग-स्थलों एवं कीर्तन-मण्डलों में जाना चाहिए।

4.4.2. व्यंजित पारलौकिकता

हम कदाचित् यह भूल जाते हैं कि भारतीय संस्कृति की पहचान हमारे पौराणिक साहित्य द्वारा की जा सकती है। सिद्धान्त रूप में भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति है, परन्तु व्यवहार में पौराणिक संस्कृति है। पौराणिक संस्कृति की उपेक्षा करके हम भारतीय संस्कृति के समग्र रूप से परिचित नहीं हो सकते हैं। हमारा जितना श्रेष्ठ वाङ्मय है सब पुराण प्रसूत है। आदि-काव्य वाल्मीकि कृत रामायण और व्यास-प्रणीत नव-काव्य -महाभारत आदि पौराणिक परम्परा के काव्य हैं। भारतीय जनता का कण्ठहार गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस भी पौराणिक परम्परा का महाकाव्य है।

पुराण वस्तुतः ज्ञान के भण्डार हैं। उनमें निहित ज्ञान को प्रतीकों के माध्यम से कथा-कहानियों का रूप देकर सामान्य जनता को लोक-परलोक सम्बन्धी ज्ञान देने का अभिनव प्रयत्न है। इस प्रकार पुराणों के और तदनुसार पौराणिक परम्परा के ग्रन्थों के सामान्यतः तीन अर्थ होते हैं-

(i) कथापरक सामान्य अर्थ सामान्य जनता के लिए- जो प्रायः अशिक्षित या अल्पशिक्षित हैं,

(ii) प्रतीकात्मक अर्थ बौद्धिक वर्ग के व्यक्तियों के लिए, तथा

(iii) ज्ञानपरक अर्थ - मनीषियों के लिए हैं।

प्रतीकात्मक अर्थ को जानने के लिए यह समझना आवश्यक है कि पुराणों के पात्र व्यक्ति न होकर चेतना विकास के द्योतक हैं। इसी प्रकार हमारे तीर्थस्थलों को भी समझा जाता है। अयोध्या, वृन्दावन श्रीराम और कृष्ण की लीला स्थली के स्थूल प्रतीक हैं। इसीलिए वे धाम हैं। पारलौकिक अयोध्या व वृन्दावन भगवान विष्णु- राम व कृष्ण रूप के नित्य लीला-स्थल हैं। भक्तजन की श्रद्धा भक्ति अयोध्या-वृन्दावन के प्रति इसी भाव को लक्ष्य करके होती है। जान-बूझकर अथवा बिना समझे-बूझे अथवा अल्प ज्ञानवश। कहने का तात्पर्य यह है कि समान्यजन जब अयोध्या, वृन्दावन आदि स्थलों की बात कहे तब उन्हें सामान्य नगर या नगरी न समझें, उन्हें भारत के एक बहुत बड़े समुदाय की श्रद्धा, भक्ति एवं आस्था के केन्द्र समझें। इस दृष्टि से उनमें मक्का एवं बैन्थलम से अधिक आस्था के भाव केन्द्रित हैं। हमारे राजनेता यदि भारतीय-जन के इस भावपक्ष का मूल्य समझ सकें तो बहुत सम्भव है कि वे इनके नाम पर वोट की राजनीति करना बन्द कर देंगे। अयोध्या, वृन्दावन आदि के नाम पर विवाद उत्पन्न करके वस्तुतः वे हमारी आस्थाओं को विवाद का विषय बनाते हैं। इनका वही महत्व है, इनकी आयु वही है, जो परम धाम में उनके लीला-स्थलों की है। चूंकि हमारा स्वतन्त्र राष्ट्र धर्म-निरपेक्ष है, अब अयोध्या की तरफ किसी भी तरह के लोगों का ध्यानाकर्षण सिर्फ एक साम्प्रदायिक चेष्टा ही बन कर रह जाता। अन्यथा न वह किसी लौकिक राज्य की राजधानी है और न नगरों के वर्गीकरण में वह किसी शासन की परिक्रमा में

आती है। वृन्दावन, वाराणसी, रामेश्वरम् आदि को इसी दृष्टि से देखा जाए तो यह बात समझ में आ सकती है कि भारतीयता की पहचान किन आँखों से की जानी चाहिए।

हमारे राजनेता यदि आस्थावान करोड़ों लोगों को देखने की कृपा करें तो वे अयोध्या को चुनावी मुद्दा बनाना छोड़ देंगे। जिन लोगों के वोट लेकर हमारे राजनेता कुर्सी के सुख भोगते हैं, उनकी आस्था को वे केवल समझ सकें, तो शायद इतना हाहाकार न हो। रेलमंत्री चाहे गांधीवादी रहें, चाहे लोहियावादी, परन्तु किसी ने भी भारत के प्रमुख तीर्थों को आम आदमी की सुविधा की दृष्टि से जोड़ने का कोई प्रयत्न नहीं किया। कारण, उन्हें इन तीर्थ-यात्रियों से सरोकार केवल उनके वोट तक है, उनकी आस्था की तरफ वे आँख उठाकर भी नहीं देखते हैं और जब देखते हैं तब मात्र भर्त्सना करके अपने छद्म आधुनिकतावादी होने का परिचय दे देते हैं। यदि ऐसा न होता तो अयोध्या आज पुलिस की छावनी में तबदील न हो गयी होती।

इस सन्दर्भ में हम केवल यह कहना चाहते हैं कि नेता और जनता ऐसे कार्यक्रम बनाएँ, जिनसे जनता के मन में तीर्थस्थलों के प्रतीक अर्थ जाग्रत हो जाएँ। भारतीयता की पहचान के लिए यह आवश्यक है कि हम तीर्थस्थलों के प्रतीकार्थ को जानें तथा भारतीय जनता के जनमानस में निवास करने वाली आस्था एवं श्रद्धा का मूल्य समझने का प्रयास करें।

4.4.3. अल्पसंख्यक का प्रभुत्व

लोकतन्त्र की मूल अवधारणा यह है कि बहुमत की प्रतिष्ठा हो और अल्पमत की सुरक्षा हो। परन्तु भारतीय लोकतंत्र की यह विशेषता अथवा पहचान है कि यहाँ का अल्पमत प्रायः बहुमत की अवहेलना करता है और निर्णायक भूमिका अदा करता है। वह प्रायः थोक वोट बैंक के रूप में एक ऐसा पलड़ा बन गया है जो जिस पलड़े को चाह उसे भारी बना सकता है। नतीजा यह है कि उसका तुष्टिकरण हमारे लोकतंत्र का प्राण है। उसके तुष्टिकरण के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों में प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति बनी रहती है। विडम्बना यह है कि उसके लिए उनका मनचाहा संविधान अलग से बना दिया गया है। एक देश में दो संविधान, यह अनोखी स्थिति भारत के अलावा अन्यत्र दुर्लभ है। फिर भी अल्पमत समुदाय कहता है कि उनकी उपेक्षा की जा रही है, उनका कत्लेआम किया जा रहा है, उनके मानवाधिकारों का अपहरण किया जा रहा है आदि। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों से हमारा तात्पर्य हिन्दू समुदाय और मुसलमान समुदाय से है। उच्चतम न्यायालय ने देश के संविधान के अनुसार एक मुसलमान महिला के पक्ष में ऐसा निर्णय सुना दिया, जो **हदीस या शरियत के खिलाफ था**। अल्पसंख्यकों ने दबाव बनाकर संविधान में संशोधन करा लिया, सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को निरस्त करवाया और परित्यक्त महिला के प्रति जैसा व्यवहार चाहा, वह किया। भारतवासी के संवैधानिक मौलिक अधिकार तरसते रह गये। यही स्थिति परिवार नियोजन आदि कार्यक्रमों की है। मर्यादा व नियन्त्रण सम्बन्धी समस्त कानून बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिए बनाये गये हैं।

भारत में धर्म-निरपेक्षता का अर्थ है मुसलमान समुदाय का समर्थन और साम्प्रदायिकता का अर्थ है, अपने को हिन्दू कहना अथवा हिन्दुत्व की बात करना। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के साथ हिन्दू शब्द लगे रहने का कारण यह

विवशता है कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय के नाम के साथ मुसलिम शब्द लगाए रखना अनिवार्य है, अन्यथा अल्पसंख्यक अपने को सुरक्षित एवं प्रताड़ित कहने लगेंगे।

साम्प्रदायिक दंगा होने पर केवल मुसलमान परिवारों को होने वाली हानि की चिन्ता की जाती है, क्योंकि हिन्दू तो साम्प्रदायिक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीयता की यह बहुत महत्वपूर्ण पहचान है कि यहाँ के मुसलमान इस्लामिक देशों एवं इस्लामिक तानाशाही शासन में रहने वाले मुसलमानों की अपेक्षा अधिक सुखी एवं स्वतन्त्र हैं और मुसलमान तानाशाह उनके दुःख-दर्द के कारण परेशान हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. केशवचन्द्र वर्मा का कथन ध्यातव्य है, 'हिन्दुस्तान के लोकतन्त्र की यह विडम्बना रही है कि यहाँ का अल्पमत प्रायः बहुमत की अवहेलना करके निर्णायक भूमिका अदा करता रहा है। वह अक्सर थोक वोट बैंक के नाम से जाना गया है। उसकी स्थिति ऐसी है कि वह जब भी चाहे, विवेक और अविवेक को तिलांजलि देकर किसी भी पलड़े में कूद कर एकमुश्त बैठ सकता है। पलड़ों को भारी करके जबरन बहुमत पर दबाव की स्थिति ऐसे हालात उत्पन्न करती है कि स्वयं लोकतन्त्र के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लग जाता है। फिर उस देश की अस्मिता की कोई पहचान ही नहीं बनतीं।'

4.4.4. राजभाषा

इसी प्रकार की विडम्बनापूर्ण स्थिति हमारे देश की राजभाषा की है। हिन्दी स्वयंसिद्ध राष्ट्रभाषा है। संवैधानिक रूप से वह राजभाषा है, परन्तु उसकी स्थिति उस कैदी जैसी है, जो स्वर्ण-पिंजर में बन्द है, अथवा नफाजत पर है। संविधान में यह भी प्रावधान है कि जब तक एक भी राज्य विरोध में रहेगा तब तक देश की राजभाषा हिन्दी नहीं होगी। अब आप ही बताइए कि किस भाषा के द्वारा स्वतन्त्र भारत की पहचान बनती है। अंग्रेजी में बात करने वाले को अथवा अपना परिचय देने वाले को कोई भी भारत का निवासी नहीं समझेगा।

राज्य स्तर पर हिन्दी का प्रयोग दो बातों में से एक बात के प्रति संकेत है। भारत गूँगा देश है, उसकी अपनी भाषा नहीं है अथवा वह एक ऐसी जाति का गुलाम है, जिसकी भाषा अंग्रेजी है। अर्थात् भारतीयता की एक बहुत बड़ी पहचान है - भाषाई आत्महत्या, अपनी कोई भाषा न होना। यह भी एक विडम्बना ही है कि हिन्दी के विरोधी अपने राज्य की भाषा को राजभाषा बनाने की बात नहीं करते हैं बल्कि मात्र अंग्रेजी का पक्ष लेते हैं, जिस देश के निवासियों को भाषायी गुलामी रास आती है, उस देश का नाम भारतवर्ष है। यह एक ऐसी पहचान है जिसके आधार पर आप किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारतवासी को किसी प्रकार का प्रयत्न किए बिना पहचान सकते हैं।

गाँधीजी और डॉ. राममनोहर लोहिया के नाम की दुहाई देने वालों में हमें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई देता है जो वह कर सके या कह सके, जो उन्होंने कहा था। डॉ. लोहिया ने चुनाव के समय कहा था - हिन्दुओं के लिए और मुसलमानों के लिए एक संविधान होना चाहिए। टोकने पर उन्होंने कहा था- मुसलमानों के वोट कट जाएँ तो कट जाएँ, है कोई समाजवादी जो आज हिम्मत के साथ डॉ. लोहिया की बात दोहरा सके। इस प्रकार भारतीय राजनीति की यह पहचान बनती है कि कथनी और करनी में भेद। जहाँ का राजनीतिक नेता सही बात कहने में परहेज करे, जो केवल तात्कालिक शुद्ध लाभ को देखे, वही भारत है। इसे हम कहेंगे- अभारतीयता की कसौटी पर भारतीयता की पहचान।

4.4.5. संस्कृति का सौदा

स्वतन्त्रता के पहले सत्ता और संस्कृति के सम्बन्ध मात्र औपचारिक थे। कुछ अपवादों को छोड़कर (अकबर, बहादुरशाह, वाजिद अलीशाह, केरल के स्वामी तिरूलाल आदि)। यह बहुत कम देखने में आता था कि सत्ताधारी

अपने को कला, संस्कृति आदि के साथ जोड़े, परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् यह बात एकदम बदल गई। प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय संस्कृति को नया रूप देने के लिए अनेक प्रयत्न किये। शिक्षा विभाग को उन्होंने भारतीय संस्कृति और कला के साथ जोड़ने की शुरूआत की। जो पहले मुर्दा अजायबघर हुआ करते थे, वे अब संग्रहालय और बड़े पुस्तकालय बन गये। साहित्य अकादमी, साहित्य नाटक अकादमी तथा ललित कला अकादमी स्थापित की गयीं। केन्द्र और राज्य सरकारों ने नाटक केन्द्र खोले। इनके अनुकरण पर निजी प्रयासों से अनेक सांस्कृतिक संस्थाएँ- नाटक संस्थान, कला-संस्थान, आदि खोले गये। इनको प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने अनुदान राशि की परम्परा चलाई। अनुदान के लिए अनेक साहित्यिक संस्थाएँ खोलने, साहित्यिक समारोह आदि आयोजित करने का चलन हो गया। कलाकारों को प्रोत्साहन के नाम पर छोटे-बड़े इनामों की घोषणाएँ की गयीं। साहित्यकारों को भी पुरस्कृत किया जाने लगा। प्रकाशित पुस्तकों की सरकारी खरीद की जाने लगी। इस प्रकार से कला, संस्कृति, साहित्य के साधकों को राज्याश्रय की एक परम्परा चल पड़ी अथवा एक पुरानी परम्परा पुनर्जीवित कर दी गयी। इन सब कार्यों के लिए एक पृथक सांस्कृतिक विभाग खोल दिया गया, जहाँ लेन-देन की परम्परा ने पाँव फैला दिए। कला और साहित्य का मोल-भाव होने लगा। यहाँ तक कि सत्ता के बहुत खुश हो जाने पर लेखकों या कलाकारों को राज्यसभा या विधानसभाओं की सदस्यता दी जाने लगी। बड़े-बड़े सूरमा जोड़-तोड़ की नीति के शिकार हो गये। कलाकार, साहित्यकार एवं संस्कृति-धर्मी की स्वतन्त्रता का अपहरण होने लगा। सत्ता के प्रशस्ति-गायन की परम्परा चल पड़ी और स्वतन्त्र लेखक बहुत कुछ छूट (Discount) की दुनिया के साथ जुड़ गया है। डॉ. केशवचन्द्र वर्मा के शब्दों में कहते हैं कि 'राज्याश्रय का एक ऐसा माहौल बन गया है कि हर संस्कृतिकर्मी और कलाधर्मी अपने मूल धर्म को गौण मानकर महत्वाकांक्षाओं के नये पैमाने बनाने में लग गया है।'

ये सारे कार्य-कलाप कई मान्यताओं द्वारा अलग-अलग और समन्वित रूप से भी सम्पन्न होते हैं। विभिन्न संस्थानों के माध्यम से अनुदानों की राशि बाँट कर वे अपने अनुग्रह को व्यक्त करते हैं। विदेशियों को सद्भाव मण्डलों का सदस्य बनाकर भी कलाकारों एवं बुद्धिजीवियों को पुरस्कृत किया जाता है। अनुदानों की राशि, मंत्रालयों के कार्यकलाप, विदेश यात्राएँ, पुरस्कार समितियाँ, अकादमियों की गतिविधियाँ, बड़ी-बड़ी परिचर्चाएँ, गोष्ठियाँ, कॉन्फ्रेंस और भी बहुत कुछ इन मंत्रालयों की कृपा पर निर्भर रहने लगा है। ध्यातव्य है कि इनके कर्ता-धर्ता सरकारी अफसर हैं, मंत्री तो अनेक कारणवश आते-जाते रहते हैं। इन सहकारी अफसरों यानी विभागीय सचिवों का प्रभुत्व यदि यहीं तक सीमित रहता तब तो कुशल थी, परन्तु ये सचिव अपने पूर्वाग्रहों के अनुसार नीतियाँ बनाते हैं और अवधारणाएँ लादते हैं और संस्कृति सम्बन्धी अपनी धारणा-पुष्टि का विधान करते हैं। विस्तार मंच से हम अपवादों के नाम नहीं ले रहे हैं, परन्तु इस चर्चा में अपवादों को छोड़कर वाक्यांश अन्तर्निहित समझ लेना चाहिए। ऐसे अनेक उच्च पदस्थ अफसर हैं जो स्वयं कला एवं साहित्य में रुचि रखते हैं। वे अपने रचना-धर्मी व्यक्तित्व के विकास के लिए कुर्सी का फायदा उठाते हैं और अपनी रचनाओं पर श्रेष्ठता का ठप्पा लगवाते हैं।

इस सन्दर्भ में पूरा विस्तार करना किसी पौराणिक कथा के सविस्तार-वर्णन के समान है। हम तो केवल यही कहना चाहते हैं कि हमारी संस्कृति सरकार की मुखापेक्षी बनती जा रही है और लेखन एवं संस्कृति-कर्म धर्म से बहुत कुछ विमुख हो गया है और वह सरकारी बैसाखी पर चलने लगा है तथा खड़ा भी होने लगा है। आज हम रीतिकाल के कवियों को दरबारी या खुशामदी कवि कह कर उनकी भर्त्सना करते हैं। भविष्य के पाठक या आलोचक सरकार के मुखापेक्षी साहित्यकारों, कलाकारों आदि को क्या कहेंगे, इसी पर भारतीयता की पहचान का एक बहुत महत्वपूर्ण अंश निर्भर हो गया है। जहाँ ये अधिकारी अपने कलाकार रूप को निखारने के लिए कुछ नहीं कर सकते हैं, वहाँ इनकी

पत्नियों के तथाकथित कला-प्रेम के सिफारिशी संरक्षण के अनेक किस्से सुनने को मिलते रहते हैं। 'जितना छानो उतना किरकिरा निकलता है' वाली बात है। हम केवल यह निवेदन करना चाहते हैं कि हमारे संस्कृति-प्रेमी इस दिशा में गम्भीरता पूर्वक विचार करें कि यह नई कलाधर्मिता भारतीयता की स्थायी पहचान न बन जाए।

भारत में अधिकांश जनता तो अशिक्षित है ही, परन्तु हमारे देश में शिक्षित लोग भी शिक्षितों की तरह व्यवहार करते हुए बहुत कम देखे जाते हैं। वे स्वतन्त्रता (Liberty) के नाम पर स्वच्छन्दता का व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं। इसका मूल कारण है राजनेताओं का पूरी तरह शिक्षित न होना अथवा संविधान में राजनेता के लिए किसी शैक्षिक योग्यता का निर्धारण न किया जाना। वे वास्तव न तो स्वतन्त्रता को इस रूप में देख सकते हैं कि स्वतन्त्र व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के साथ अपने पड़ोसी की, अन्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा के प्रति भी जागरूक बना रहता है। यहाँ सम्भवतः वॉल्टेयर की तरह किसी भी राजनेता के मुख से यह बात सुनने में नहीं आई है कि यद्यपि मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हूँ। भारत में वस्तुतः अपनी बात को कहने के तुम्हारे अधिकार के लिए मैं आजीवन संघर्ष कर सकता हूँ। भारत में वस्तुतः मतभेद का मतलब मन भेद हो जाता है, जबकि लोकतंत्र की रक्षा के लिए मत-भेद ही बना रहना चाहिए।

हमारे लोकतंत्र का एक अन्य दोष यह भी है कि यहाँ राजनीतिक दलों की संख्या को सीमित रखने के लिए कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है। यही कारण है कि अधिकांश राजनीतिक दलों के सामने एक सूत्रीय कार्यक्रम रहता है। सत्तारूढ़ दल की आलोचना करके अपना अस्तित्व बनाए रखना। बात पीछे करना पहले आन्दोलन करना, धरना देना, घेराव करना, बाजार बन्द कराना - जब राजनीतिक दलों के मायने ही कार्यक्रम रह जाएँ, तब स्वच्छन्दता का साम्राज्य सर्वथा एक स्वाभाविक स्थिति बन जाती है।

स्वतन्त्रता के साथ हमारे देश में एक ऐसे शब्द का आगमन हो गया है जिसका वास्तविक तात्पर्य कई बड़े-बड़े राजनेता नहीं जानते हैं। वह शब्द है सेक्यूलर (Secular) जिसका अर्थ धर्मनिरपेक्ष किया जाता है। फलतः राजनीति को धर्म से, कर्तव्य भावना एवं नैतिकता से सर्वथा विलग कर दिया गया है। नैतिकता से अपरिचित व्यक्तियों से यह आशा किस प्रकार की जा सकती है कि वे स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता के भेद को समझ सकें। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है हमारी लोक सभा एवं विधान सभाएँ। इनके सदस्य केवल अपनी स्वतन्त्रता को जानते हैं तथा कोई अन्य उसकी बात करता है तो हंगामा खड़ा कर दिया जाता है।

तीसरी बात यह है कि हमारे देशवासी लोकतंत्र को केवल मतदान का अधिकार समझते हैं। वे यह जानते ही नहीं हैं अथवा उनको यह कभी बताया ही नहीं गया है कि लोकतंत्र मूलतः एक जीवन-पद्धति है, जिसमें हम दूसरों की स्वतन्त्रता का सम्मान करते हैं तथा सहिष्णुता उसका एक प्रमुख स्तम्भ है। जन-सभाओं में हुल्लड़बाजी, लोकसभा एवं विधानसभाओं में होने वाले हंगामे तथा आस्तीन समेटने के दृश्य भारतीय राजनीति के प्रमुख अंग बन गए हैं। स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता का अभेद वस्तुतः भारतीय जीवन की, विशेषकर राजनीति की आवश्यक पहचान बन गई है। इस दिशा में आवश्यक प्रशिक्षण द्वारा इस अभेद को समाप्त करके स्वतन्त्रता और स्वच्छंदता के भेद को समझाना हमारी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। साथ ही यह बताया जाए कि धर्म और मजहब दो भिन्न वस्तुएँ हैं। धर्म जीवन का साध्य है। मजहब, पंथ आदि साधन मात्र हैं। सैक्यूलर का अर्थ मजहब-निरपेक्ष हो सकता है, धर्म-निरपेक्ष नहीं। धर्म-निरपेक्ष जीवन अराजकता को जन्म देता है और मनुष्य को इन्सानियत से दूर ले जाकर हैवान बना देता है। यह भारतीयता का दुर्बल पक्ष है। दुर्भाग्यवश वर्तमान में यह भारतीयता की पहचान बनती जा रही है जिसके प्रति हमें

सावधान रहना है, अन्यथा विश्व-मंच पर हमारी गणना असभ्य लोगों में की जाने लगेगी। स्वतन्त्रता दासता से मुक्ति का नाम है, परन्तु साथ ही वह स्वच्छन्दता भी नहीं है।

भारतीय लोकतन्त्र की वर्तमान में पहचान यह बन गई है कि संवैधानिक तंत्र तानाशाही के रूप में काम करता है। प्रत्येक राजनीतिक दल का अध्यक्ष या मुखिया सुप्रीमों कहलाता है और पार्टी के सदस्य उसके हाथों में सर्वाधिकार सौंपकर निश्चिन्त हो जाते हैं, हो गये हैं। वह चाहे बसपा की मायावती हो अथवा काँग्रेस की सोनिया गाँधी अथवा समाजवादी पार्टी के मुलायम सिंह यादव।

भारत में लोकतन्त्र के प्रति नेताओं के रुख को लक्ष्य करके चुनाव के मुख्य कमिश्नर जे. एम. लिंगदोह ने जो वक्तव्य दिया है, वह ध्यातव्य है और भारत के जनतन्त्र / लोकतन्त्र के भविष्य के प्रति बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न लगाता है, 'हमारे राजनेता कैंसर के रोग की भांति हैं, जिसका कोई उपचार / इलाज नहीं है। यदि कैंसर का इलाज निकल आए तो उनके लिए अन्य किसी विशेषण का प्रयोग करना होगा।'

हमारे देश का कोई भी राजनेता न लोकतन्त्र के लिए प्रतिबद्ध है और न जनतन्त्र के कल्याण के लिए योग-क्षेत्र के प्रति वह चिन्तित है। लिंगदोह का कहना था कि लोकतन्त्र का अभिप्राय केवल चुनाव प्रक्रिया न होकर अन्य बहुत कुछ है। लोकतन्त्र का अर्थ है व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा उसका सम्मान। इस दृष्टि से लोकतन्त्र के प्रतिबद्ध मुझे अपने आसपास कोई नहीं दिखाई देता है, उनका कहना है कि शायद ही कोई राजनेता विनम्रतापूर्वक बात करता हो अथवा लोक-व्यवहार के मूलभूत नियम जानता हो। बहुत कम राजनेता ऐसे हैं जो किसी को बराबर समझकर बात करते हों अथवा सामान्य आदमी को अपने बराबर का आदमी समझते हों, या तो उनकी नाक आसमान को छूती है, अथवा वे किसी के चरणों साष्टांग लेट जाते हैं।

उनका यह भी कहना था कि हमें इस भ्रान्ति में नहीं रहना चाहिए कि भारत में एक बहुत श्रेष्ठ प्रकार का लोकतन्त्र है। ऐसा कहकर हम मात्र अपने मुँह मिया मिट्ठू बनते हैं और अपने को धोखा देते हैं। हमें अकारण आसमान में नहीं उड़ना चाहिए। वास्तविकता को, हकीकत को जानने की कोशिश करनी चाहिए। उनका संदेश था कि हम इस प्रकार के वातावरण का निर्माण करें कि हमारे देशवासियों के मानवाधिकारों की, भौतिक अधिकारों की रक्षा हो सके। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की छवि स्थापित करने के लिए हम सबको गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। हम लोकतन्त्र की आधारभूत मान्यताओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें और उनके अनुसार व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन-पद्धतियों को ढालने का प्रयत्न करें। अपने बारे में मात्र अपनी राय को सब कुछ न मान लें, अन्य देशवासियों से भी इस बारे में बात करके देखें। हमारी लोक-सभा तथा विधान-सभाओं की कार्यवाहियाँ देखकर वे अवश्य हँसते होंगे।

हमारे मेले विशेषकर कुम्भ-जैसे बड़े मेले भारतीयता की पहचान के सशक्त माध्यम हैं। मेलों में देश के कोने-कोने से लोग आते हैं। वे यह विचार नहीं करते हैं कि मेले का आयोजक कौन-सा राज्य या प्रदेश किया है ? इससे स्पष्टतः प्रकट होता है कि हमारे देश में कहीं-न-कहीं मूलभूत एकता का प्रभाव बलवान बना हुआ है। अन्यथा भाषा, आरक्षण, चुनाव आदि पर आधारित किए गये विभाजन के प्रयासों को देखते हुए एक प्रदेश के निवासी अन्य प्रदेशों के निवासियों के दुश्मन बन जाने चाहिए।

हम यह भी देखते हैं कि कुम्भ-जैसे बड़े मेले वस्तुतः राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलन का काम करते हैं। इसमें विभिन्न भाषा-भाषी लोग एकत्र होते हैं और सुखपूर्वक विचारों का आदान-प्रदान, क्रय-विक्रय आदि करते हैं। हम

पाते हैं कि वे सब एक ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे हम हिन्दी या हिन्दुस्तानी कहते हैं। इस प्रकार के एक रसपूर्ण भाषा प्रयोग को देखकर एक बात स्पष्टतः समझ में आ जाती है कि हमारे भारत देश की राष्ट्र-भाषा या जन-भाषा हिन्दी है। एक बात किसी तरह समझ में नहीं आती है कि कुछ लोग हिन्दी का विरोध और अंग्रेजी का समर्थन क्यों करते हैं? कुम्भ में तो अनेक विदेशी भी आते हैं। वे प्रायः आश्चर्य करते हैं कि औपचारिक अवसरों पर भारतीय अंग्रेजी का प्रयोग क्यों करते हैं, क्या उन्हें ऐसा अनुभव नहीं होता है कि भाषा अस्मिता का द्योतन करती है? इन मेलों के अवसर पर सत्संग, कथा, वार्ता, उपदेश, सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेल-तमाशों के आयोजन किए जाते हैं। ऐसे अवसरों पर समग्र भारतीयता की पहचान की जा सकती है।

हमारे मेले-तमाशे वस्तुतः भारतीयता को पुष्ट करने के, जनता को भारतीयता की पहचान कराने के, भारतीयता में प्रशिक्षित करने के सशक्त माध्यम हैं। हम पैदल चलते हैं और धीमी गति की सवारियों में यात्रा करते हैं, तब भारत की भूमि और भूमि-वासियों से मिलते हुए चलते हैं। परन्तु हवाई जहाज़ आदि तेज गति के वाहन तो हमें केवल हवाई दुनिया में रहने के लिए विवश करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे मेले, विशेषकर कुम्भ-जैसे बड़े आयोजन हमारी भारतीयता के सशक्त वाहन हैं। इनमें सम्पूर्ण भारत को, उसकी मूल आत्मा को एक साथ देखा जा सकता है। जाति, सम्प्रदाय आदि भेद समाप्त प्रायः हो जाते हैं। कुम्भ का अवसर वस्तुतः एक बड़ा मेला नहीं होता है। यह भारतीय समाजशास्त्र की पहचान का एक बहुत महत्वपूर्ण अवसर होता है। यह किसी जाति विशेष का, समुदाय विशेष का मिलन-अवसर न होकर, सम्पूर्ण भारत के मिलन का, प्रकारान्तर में सम्पूर्ण मानवता के मिलन का अवसर प्रस्तुत करता है। सनातन धर्म को मानने वालों के अनेक सम्प्रदाय, वर्ग और साधुओं की विभिन्न जमातें मेले में सक्रिय भाग लेती हैं।

इसके सम्पूर्ण बाह्याडम्बर से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि यह साधुओं का मेला है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इसमें भारत का औसत गृहस्थ उसी संकल्प और मनोयोग से सम्मिलित होता है जिस तरह साधु समाज अपने स्वाध्याय, चिन्तन और प्रतिष्ठा की मान्यता के लिए यहाँ एकत्र होता है। यहाँ ध्यानपूर्वक देखने से यह विदित होता है कि भारत का समाजशास्त्र साधना के बदले धन-सम्पत्ति नहीं चाहता है, वह धन-सम्पत्ति के बदले परलोक सुधारने की इच्छा रखता है। उन्हें पुण्य अर्जित करने की चिन्ता रहती है। यद्यपि वे पुण्य और पुण्य-कार्य के अन्तर नहीं समझते हैं। वे अनेकानेक असुविधाओं को अस्वीकृत करके ऐसे अवसर पर अपनी पाई-पाई कर जोड़ी हुई पूंजी लेकर मोक्ष की कामना में दौड़े चले आते हैं। अधिकांश लोग भले ही यह नहीं जानते हैं कि मोक्ष क्या है, परन्तु मोक्ष का आकर्षण अपार जन-सागर के अंधविश्वास में साकार होता हुआ दिखाई देता है। स्पष्ट है कि भारतीय जनता का समाजशास्त्र धन के विनय की अपेक्षा नहीं रखता है, वह श्रद्धा-विश्वास के भरोसे चिरजीवी है। दुर्भाग्य यह है कि छद्म धर्म-निरपेक्ष के नाम पर अपनी दुकान चलाने वाले राजनेता भारतीय समाजशास्त्र के वास्तविक रूप को न समझकर इसे एक बहुत बड़ी भीड़-मात्र मानकर मेले को व्यावसायिक रूप प्रदान कर देते हैं।

हमारे देश के नेताओं में एकमात्र महात्मा गाँधी जन-नेता थे और वह भारतीयता की पहचान कराने वाले भारत के समाजशास्त्र से परिचित थे। उनकी बातों में एक विशेष बात यह भी थी कि हिन्दुस्तान के लिए कुछ भी करना चाहते हो, तो सबसे असहाय निर्धन व्यक्ति को आँखों के सामने रखकर कोई योजना बनाओ। वह जो बिहार, कुमायूँ, गढ़वाल, राजस्थान, बस्तर, पूना, बंगलौर, कोलकाता, मदुरई, तंजौर, चण्डीगढ़ आदि से धक्के खाता हुआ एक सहज मानव पैदल चलकर किसी तरह अपनी मनोकामना की सिद्धि का स्वप्न लेकर त्रिवेणी संगम तक पहुँचा है और टीन, काँच या अन्य किसी धातु की बनी छोटी-सी सुराही (आजकल कैन) में गंगा लेकर वापस चला जाता है, उसको ध्यान

में रखकर विचार करें। वह इतना सब कुछ धन, समय एवं शक्ति-व्यय करके यहाँ आता है और त्रिवेणी में मात्र एक गोता लगाकर तथा थोड़ा-सा गंगाजल प्राप्त करके संतोष का, अपनी यात्रा की सार्थकता का अनुभव करता है। उसके समाजशास्त्र का प्रारूप किसी के पास नहीं है। वह केवल गाँधीजी के पास था। तभी तो लोग उनकी रामधुन के प्रति आकर्षित हुए चले आते थे। भारत के समाजशास्त्र को समझने के लिए भारतीयों की श्रद्धा और विश्वास को समझना होगा। इसकी समझ के लिए इसके स्रोत-धर्म ग्रन्थों को, भारतीय वाङ्मय को जानना होगा। यहाँ काम और अर्थ धर्म के साधन हैं, पुरुषार्थ हैं, ये तीनों पुरुषार्थ मोक्ष पुरुषार्थ को बल प्रदान करते हैं। अतएव भारत का समाजशास्त्र धर्म के रास्ते से हमें मोक्ष के पुरुषार्थ तक ले जाता है। गाँधी जी के शब्दों में भारत का समाजशास्त्र धर्मशास्त्र है, जो हमें सद्वाद की नहीं समाजधर्म के प्रति प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्रदान करता है।

4.4.6. समाज धर्म

रूस की क्रांति के प्रभाव की हवा हमारे देश में सन् 1920 के आस-पास आ गई थी। उसने जन-जागृति को नया आयाम प्रदान किया। साम्यवादी या समाजवादी चिन्तन के प्रति अनेक विचार आकर्षित हुए। सन् 1935 में काँग्रेस के भीतर समाजवादी मन्त्र की स्थापना हुई और समाजवादी पार्टी के रूप में एक नया पृथक राजनीतिक दल सामने आया। आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, रोहित मेहता, जयप्रकाश नारायण आदि इसके पुरोधा थे। समाजवाद की चर्चा करने वालों में प्रमुख थे -पं. जवाहरलाल नेहरू। वह सन् 1935 में यूरोप के दौरे पर गये थे, कोट, पैन्ट और फैल्ट हैट लगाकर वहाँ घूमे थे और वापसी में अपने साथ समाजवाद का तोहफ़ा लाये थे। परन्तु जब समाजवादी पार्टी कॉग्रेस से अलग हुई, तब वह उससे अलग हो गये और काँग्रेस में ही बने रहे। स्वतन्त्र भारत के संविधान में उन्होंने समाज का आदर्श समाजवादी रखकर उसके तर्ज पर निर्मित समाज रखा। इस प्रकार समाजवाद का स्वरूप गड्डमड्ड गया। वह सेक्यूलरिज्म की तरह एक ऐसी टोपी बन गया, जिसे हर कोई पहन सकता था और वह किसी के सिर पर फिट न हो।

समाजवादी पैटर्न शब्द की जरूरत इसलिए पड़ी, क्योंकि भारत एक भाग्यवादी देश है, यहाँ पूँजीवादी व्यवस्था का प्रभाव बहुत गहरा था। कॉग्रेस भी एक प्रकार से पूँजीवाद के प्रति प्रवृत्त थी। दूसरी ओर महात्मा गाँधी ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के अन्तर्गत समाज-धर्म के पक्षधर थे। वह पूंजीपति के जीवित रहने का अधिकार स्वीकार करते थे। उनका कहना था कि उनको हृदय परिवर्तन करके अपनी सम्पत्ति समाज के हितार्थ लगाने के लिए तैयार किया जाये। उनका सिद्धान्त साम्यवादियों के वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ता था। कम्युनिस्ट पूंजीपति के प्रति आक्रोश एवं घृणा के पक्षधर होने के कारण उनकी सम्पत्ति को जबरदस्ती अथवा उन्हें मिटाकर उनकी पूंजी छीन लेने का नारा लगाते थे। जो भी हो सबसे प्रमुख बात यह है कि भारत एक अध्यात्मवादी देश है और यहाँ के निवासी दान-पुण्य की परम्परा में पले हैं। मर्यादा जो भी हो, भारत में साम्यवाद बौद्धिक बनकर रह गया है। वह जनमानस का अंग नहीं बन पाया है। प्रमाण यह है कि हिन्दी की प्रगतिवादी कविता का जीवन-काल लगभग 10 वर्ष रहा।

भारत का दैनिक जीवन वस्तुतः समाजधर्मी जीवन-दर्शन पर टिका है। यहाँ भोजन के समय से लेकर उत्सवों तक गाय, कुत्ता, कौआ, निर्धन व्यक्ति, ठाकुर द्वारा आदि के भाग निकालने की रीति है। अतः भारत का समाजशास्त्र धर्म-सापेक्ष है। वह रामराज्य का आदर्श लेकर चलता है। साम्यवादी अराजकता का आदर्श उसकी समझ के परे है। जितने भिखारी, साधु, संन्यासी आदि दान के बल पर भारत में पलते हैं, उतने शायद ही किसी अन्य देश में पलते हों। यही कारण है कि अनेक प्रकार से शोषित होने पर भी भारत का श्रमिक एवं कृषक क्रान्ति की बात नहीं सोच सकता है,

निर्ममता उससे कोसों दूर रहती है। विडम्बना यह है कि हमारे कर्णधार सदैव वोट की राजनीति का चश्मा लगाए रहते हैं और वे भारत के समाज धर्म के साथ एकरस नहीं हो पाते हैं, क्योंकि समाजधर्म के अन्तर्गत घृणा और द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं है। एक लेखक के शब्दों में हमारे वृहत समारोहों के प्रति इनके नेताओं की वोट परक समझ ने इन्हें दुकानदारी में बदल दिया है। इस भीड़ की आस्था के रचनात्मक प्रयोग द्वारा हम भारतीय समाजशास्त्र का पूरा भवन खड़ा कर सकते हैं।

भारतीय मूल्यों के निर्माण में जनता का योगदान विशेष महत्व रखता है। शासन या सत्ता का स्थान गौण माना गया है। यही कारण है कि सत्ता या शासन ने धर्म और संस्कृति के क्षेत्रों में न कभी पदार्पण किया और न हस्तक्षेप ही किया, जैसा कि यूरोप तथा इस्लामी देशों में होता रहा है और अब भी देखने को मिलता है।

राजनीति एवं शासन में चर्च के हस्तक्षेप एवं प्रभुत्व के विरुद्ध उग्र आन्दोलन हुआ था और वहाँ Secularism का जन्म हुआ। यह हवा भारत में आई है। हम राजनीतिज्ञों की बात न करके केवल यह कहना चाहेंगे कि सेक्यूलरिज्म राजनीति के क्षेत्र में एक नारा भले ही हो, परन्तु वह जनमानस की वस्तु नहीं बन पाया है। हमारे नेता उसका रूपान्तर धर्म-निरपेक्ष करके करते हैं। भारतीय जनता धर्म से अलग करके जीवन को देख ही नहीं सकती है। साथ ही वह यह भी सोचती है कि राजनीति में लोग धर्म का नाम क्यों लेते हैं। जो भी हो, भारत में धर्म की राजनीति कभी नहीं रही। महात्मा गाँधी ने भारतीयता की इस विशेषता को पहचाना था और उन्होंने सत्य-अहिंसा के नाम पर राजनीति को नैतिकता से जोड़ दिया, यानी उन्होंने यह कहा कि राजनीति का भी धर्म होता है, राजनीति के भी कुछ नियम होते हैं। परन्तु हमारे अन्य नेता उसे धर्म-निरपेक्ष बताकर न मालूम क्या कहना चाहते हैं? यही कारण है कि भारत की राजनीति में इस कदर बिखराव दिखाई देता है कि उन्हें लोकतन्त्र चाहे खतरे में दिखाई देने लगता है और कोई भी कार्य मनोनुकूल न होने पर वे लोकतन्त्र की हत्या का भी नारा बुलन्द कर देते हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि ग्राम-पंचायतों के रूप में लोकतन्त्र भारतीय जनता के रक्त में है, वह नैतिकता-विरुद्ध राजनीति को देखने अथवा स्वीकार करने की बात को स्वीकार नहीं करते हैं। यही कारण है कि वह न तो इस क्षेत्र में भोगवादी नेतृत्व को स्वीकार करते हैं और न अपनी धर्म-भावना यानी नैतिकता रहित राजनीति को स्वीकार करते हैं। भारतीय जनमानस लोकतन्त्र को स्वतन्त्र जीवन-पद्धति का पर्याय मानता है।

इस्लामी देशों में आज भी मुल्ला और इमाम फतवे जारी करते हुए देखे जाते हैं। वे फतवे इतने प्रभावशाली होते हैं कि इस्लाम के अनुयायियों के लिए ब्रह्मवाक्य बन जाते हैं। इसका एक दुष्परिणाम हमारे देश में स्पष्टतः दिखाई देता है। 55 वर्ष की स्वतन्त्रता के बाद भी भारत के मुसलमान देश अथवा राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ अपने को नहीं जोड़ पाये हैं। इस सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कहना चाहेंगे कि भारत के पण्डितों, पुजारियों ने कभी फतवे जारी नहीं किये। फतवों की परम्परा से परहेज करना और धर्म को सर्वथा व्यक्तिगत वस्तु मानना भारतीयता का एक बहुत ही महत्वपूर्ण जीवन मूल्य है।

धर्म की भाँति संस्कृति के क्षेत्र में भी जनता अपनी देखभाल स्वयं करती है। संस्कृति सत्ता से निरपेक्ष रहकर स्वतः संस्कृति के स्वरूप का निर्माण करती है। संस्कृति हमारी मान्यताओं का बोध भी कराती है और मान्यताओं के परिष्कृत स्वरूप का बोध भी कराती है। इस सन्दर्भ में एक बहुत अच्छा उदाहरण दिया जाता है। मनुष्य गाना गाता है, पक्षी भी गाना गाता है, मनुष्य रहने को भवन बनाता है, पक्षी भी अपने रहने के लिए घोंसला बनाता है। कोयल गाना गाती है, लेकिन वह सदा से उसी प्रकार गाती आई है। परन्तु मनुष्य का चीखना-चिल्लाना गाने में, संगीत में विकसित

होता है। चिल्लाने को परिष्कृत करके संगीत बनाना ही संस्कृति का कार्य है और संगीत संस्कृति की पहचान भी है। इसी प्रकार कोयल सदा से एक ही प्रकार का घोंसला बनाती आई है, जबकि मनुष्य ने निवास के निर्माण को भवन-निर्माण कला के रूप में विकसित किया है और उसने उसमें निरन्तर प्रगति की है। अन्य सन्दर्भों में भी इसी दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

संगीत, भवन-निर्माण निरन्तर विकासशील हैं। अतः संस्कृति भी एक विकासशील वस्तु है। भारतीय कलाकृति के अध्ययन द्वारा दो तथ्य सामने आते हैं, संस्कृति मानव की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है और वह मानव की विशेषता है। पशु-पक्षियों की संस्कृति नहीं होती है। संस्कृति के निर्माण एवं विकास में भारतीय जनता का योग प्रमुख रहा है। सत्ता या शासन का स्थान सदैव गौण रहा है। हर आदमी में एक कलाकार छिपा रहता है। भारतीयता ने व्यक्ति को सदैव महत्व दिया है। इसी से भारतीय जीवन मूल्य मानव को केन्द्र मानकर चलते हैं। वह परिधिस्वरूप समाज को व्यक्ति-सापेक्ष मानती है। भारतीय मूल्य निर्धारण के सन्दर्भ में यह तथ्य दृष्टव्य है कि उसने इस व्यक्ति का समाजीकरण अथवा राष्ट्रीयकरण नहीं किया। उसके निकट व्यक्ति सदैव एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व या आत्मा रहा। धर्म, मूल्यों एवं आचार ने सदैव यही कहा कि तुम अपने गुरु स्वयं हो। बुद्धदेव ने भी कहा – आत्मदीपो भव। अपना अंतःकरण आप हैं। आचारों का सुविचारी यह कथन है आधुनिक कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी कहा-मनुष्य से श्रेष्ठतर कोई नहीं है। अस्तु।

इस सन्दर्भ में एक बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि कलाकार को अथवा सुसंस्कृत व्यक्ति को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जिसके कारण उसको पछताना पड़े अथवा आत्मग्लानि की सजा भोगनी पड़े। इसी से भक्तजन इस प्रकार के कथन करते रहे हैं—कीन्हें प्राकृत जनगुण गाला, सिरधुनि गिरा लागि पछताना (तुलसी- दास), कृष्णभक्त कवि कुंभन को इसी बात का पछतावा था कि वह अकबर के दरबार में गये ही क्यों—संतन को कहा सीकरी सों काम। आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयौ हरि नाम। करिबे परी सलास आदि।

संस्कृति के क्षेत्र में सत्ता या शासन का उत्तरदायित्व यह है कि वह सांस्कृतिक विकास हेतु साधन एवं सुविधाएँ जुटाए तथा किसी कलाकार की मजबूरी का लाभ न उठाए। शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीयता अपने विशेष मूल्य रखती है। वह शिक्षा केवल उपयुक्त अधिकारी अथवा सुपात्र को देने का आदेश देती है। कुपात्र को शिक्षित करना शिक्षा का दुरुपयोग करना है। सुपात्र की पहचान करने के लिए आर्य-ऋषियों के अपने मानदण्ड थे। जो भी हो हमारे यहाँ उच्च शिक्षा समूह के स्तर पर नहीं, व्यक्ति के स्तर पर दी जाने का विधान है। शिक्षा का सदुपयोग, समाज के कल्याणार्थ उपयोग में ही शिक्षा की सार्थकता मानी गई है। आधुनिकतम युग में शिक्षा-विशेषज्ञ विभिन्न स्तरों पर छटनी की बात करने लगे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैण्ड की लेबर सरकार ने बौद्धिकता सम्बन्धी परीक्षण कराए थे। अनेक निष्कर्षों में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह था कि निम्न बौद्धिक स्तर का व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करके अत्याचारी हो जाता है। युद्ध के दिनों में जघन्यतम एवं क्रूरतम अत्याचार करने वाले व्यक्ति प्रायः इसी कोटि के थे। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में पात्र-अपात्र एवं कुपात्र का विचार एक बहुत महत्वपूर्ण मूल्य है। भारतीय संस्कृति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मूल्य है तप या तपस्या। प्रत्येक उपलब्धि तप-सापेक्ष मानी जाती है। जैसा लक्ष्य वैसा तप, जैसा माल वैसा दाम। श्रीराम की सेवा करके जनता द्वारा सेवा के अधिकारी केवल हनुमान बने, क्योंकि उनका तप अखण्ड, और स्पृहारहित था। आजकल की संस्कृति चटपट संस्कृति हो गई है। सब कुछ तैयार (Ready made) मिलना चाहिए। परिणाम सामने है उपलब्धियाँ भी चटपट या कामचलाऊ हो गई हैं। स्थायी उपलब्धि के धनी जीवन भर श्रम करते हैं यानी तपस्या करते हैं। निष्काम कर्म के उपदेश के पीछे निहित यही भाव रहता है कि जल्दी मत करो—ऋतु

आने पर ही फल प्राप्त होगा। जो जैसा करेगा, वैसा पायेगा/भरेगा, प्रकृति में धक्का देकर आगे बढ़ने वाले को पुरस्कृत करने का नियम नहीं है।

अधिकारों के प्रति निस्पृहता का भाव तथा कर्तव्यों के प्रति निष्ठा भारतीयता का एक बहुत महत्वपूर्ण मूल्य है। कर्तव्य का पालन करने पर अधिकार अथवा अधिकार के द्वारा सुविधाओं का विधान स्वयमेव हो जाता है। समाज द्वारा सामाजिक कार्यकर्ताओं का सम्मान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण एवं प्रमाण है। भारतीय आचार संहिताओं में कहीं भी अधिकारों का उल्लेख नहीं है।

फलतः भारतीय संस्कृति में स्वतन्त्रता के लिए स्थान है, स्वच्छन्दता के लिए नहीं। मर्यादा के क्षेत्र में रहकर जो स्वतन्त्रता का अनुभव करता है, वही प्रतिबन्धित क्षेत्र में भी मुक्त होकर अपनी गतिशीलता को प्रदर्शित कर सकता है। **समाज के लिए और इसके आनन्द के लिए ही कुछ करना है, यही भारतीय मूल्य है**। इसको सार्थक क्रियान्वयन प्रदान करने के लिए **तीन ऋणों** का विधान किया गया है-पितृ ऋण, देव ऋण और ऋषि ऋण। इनके मूल में कृतज्ञता का भाव है। मेरे लिए यदि कोई कुछ करता है तो किसी और के लिए मुझे भी कुछ करना चाहिए। कृतज्ञता वापस देना नहीं है, बल्कि समाज के लिए कुछ करने की परम्परा को आगे बढ़ाना है।

तीन ऋण सम्बन्धी मूल्य के अन्तर्गत व्यक्ति अहंकारवादी नहीं हो सकता है। उसकी सन्तान योग्य हो तो वह समझता है पितृ ऋण चुका रहा हूँ। वह वस्तु दान करे तो समझता है कि देव ऋण चुका रहा हूँ और यदि वह किसी पुस्तक या ग्रन्थ का प्रकाशन करता है तो समझता है ऋषि ऋण से उऋण होने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इस प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज दोनों को लाभ होता है, दोनों जुड़े रहते हैं और व्यक्ति अपने को समष्टि का एवं किसी विराट सत्ता का अंग समझता है। निरंहकारता का भाव एक बहुत महत्वपूर्ण मूल्य माना जाता है।

4.5.सारांश

सारांश के रूप में हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास को तो विद्वानों द्वारा दिखाया गया आधार ग्रंथों में बताये गया कालावधि के जरिए जानकारी प्राप्त कर चुकें हैं। साहित्य इतिहास लेखन के समस्याओं को भी दृष्टिपात कर पाएं है लेकिन भारतीय मूल्यों को समझना उतना आसानी नहीं है जितना हम हिन्दी साहित्य का इतिहास को समझें। अन्त में एक निवेदन है कि भारतीयता की पहचान करने के लिए, भारतीय मूल्यों को समझने के लिए हमें भारत के प्राचीन वाङ्मय को समझना होगा तथा कलाकृतियों का क्रमवार इतिहास - क्रम में निरीक्षण करना होगा। हम देखेंगे कि पहले इस लोक को बनाने की बात की गई है, तदुपरान्त परलोक या समाज के निर्माण की बात है। वेदों में हमारे भौतिक जीवन के उत्थान की बातें हैं। उपनिषद् में आध्यात्मिक ज्ञान पर जोर दिया गया है। भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय भारतीय मूल्यों की धुरी है। हमारे जितने भी सिद्ध काव्यकार है, सब इस महत्वपूर्ण मूल्य में अपने को बाँधे दिखाई देते हैं।

4.6. बोध प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास और हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याओं को सोदाहरण लिखिए।

2. हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति के बारे में सविस्तार रूप में लिखिए।

4.7. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, इसमें दस खण्ड हैं, प्रकाशन वर्ष- 1973.

2. हिन्दी के मुसलमान कवि - गंगा प्रसाद अखोरी, 1926.

3. मॉडन हिन्दी लिटरेचर - डॉ इन्द्रनाथ मदान, 1939.

4. खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास- ब्रजरत्न दास, 1914.

5. हिन्दी साहित्य: बीसवी शताब्दी- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, 1950.

6. हिन्दी का गद्य साहित्य- रामचंद्र तिवारी, 1955.

7. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, 1996.

8. हिन्दी साहित्य: युग एवं प्रवृतियाँ - शिवकुमार शर्मा।

9. आधुनिक हिन्दी साहित्य- डॉ. कृष्णलाल, 1925.

10. हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास- अयोध्या सिंह 'हरिऔंध', 1930.

डॉ. एम. मंजुला

5. बंगला भाषा का परिचय-विद्यासुन्दर

(काव्य-शैव सिद्ध साहित्य)

5.0. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है कि भारतीय साहित्य की बात की जाएं तो सबसे पहले भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि में बंगाल भाषा का परिचय और बंगाल साहित्य के पूर्व, उत्तर-मध्यकालीन साहित्य के बारे में जानना है। बंगाल भाषा में विद्यासुन्दर का योगदान के बारे में जानेंगे। इसके अलावा बंगाल साहित्य के सन्धिकालीन का परिचय प्राप्त करेंगे। सामयिक पत्रों का आविर्भाव और प्रभाव के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

5.1. प्रस्तावना

5.2. बंगला भाषा का सामान्य परिचय

5.2.1. बंगला के पूर्व मध्यकालीन साहित्य

5.2.2. बंगला साहित्य के उत्तर-मध्यकालीन साहित्य

5.2.3. अनुवाद या रूपान्तर

5.3. बंगला भाषा में विद्यासुन्दर काव्य

5.3.1. बंगला भाषा में शैव-सिद्ध साहित्य

5. 4. बंगला साहित्य के सन्धिकाल का परिचय

5.4.1. सामयिक पत्रों का आविर्भाव और प्रभाव

5.5. सारांश

5.6. बोध प्रश्न

5.7. सहायक ग्रंथ

5.1. प्रस्तावना

बंगाली साहित्य भारत के पश्चिम बंगाल प्रदेश और बांग्लादेश में प्रचलित है। बंगाली साहित्य का इतिहास बेहद प्राचीन है। प्राचीन भाषा प्राकृत या मध्य भारत-आर्य भाषा के रूप में विकसित हुई है, आधुनिक समय की बंगाली लिपि अशोकन शिलालेखों के ब्राह्मी वर्णमाला (273 से 232 ई.पू.) से ली गई है। बंगाली साहित्य का इतिहास, इस संदर्भ में, तीन अलग-अलग युगों – प्राचीन बंगाली (950-1350), मध्य बंगाली (1350-1800) और आधुनिक बंगाली (वर्तमान में 1800) में विभाजित किया गया है। बंगाली साहित्य का पहला प्रमाण 8वीं -12 वीं सदी का है। यह रहस्यमय संकलन असमिया, उड़िया और बंगाली भाषाओं के प्रामाणिक शुरुआती उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन

चारपदों के कवियों, सिद्धों या सिद्धाचार्यों को असम, बंगाल, उड़ीसा और बिहार के विभिन्न क्षेत्रों से जाना जाता है। चार्यपद भी बंगाली का सबसे पुराना मान्यताप्राप्त रूप है। महान बंगाली भाषा-विद् हरप्रसाद शास्त्री ने वास्तव में 1907 में नेपाल रॉयल कोर्ट लाइब्रेरी में ताड़पत्र चिरपद पांडुलिपि पर मंत्रोच्चार किया था। भारतीय साहित्य के प्राचीन इतिहास के एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार, पुराने बंगाली साहित्य को अड़तालीस कविताओं के संग्रह के माध्यम से जीवित किया गया है। मध्य बंगाली की समय-वधि भारतीय साहित्य के इतिहास में एक विशाल काल-खंड को समाहित करती है। 15 वीं शताब्दी ज्यादातर कथा कविता शैली से संबंधित थी, मुख्य रूप से धार्मिक सामग्री थी। इनमें से, कृतिवास के रामायण को एक शास्त्रीय स्थिति के लिए मान्यता प्राप्त है। अन्य कथात्मक कविताओं में मालाधर वासु द्वारा श्रीकृष्ण विजय और बारू चंडीदास द्वारा श्रीकृष्ण कीर्तन शामिल हैं। 15 वीं सदी के साहित्यिक कारनामों में चैतन्यमंगल या चैतन्य भागवत (1540), संत चैतन्य महाप्रभु की जीवनी, बृंदावन दास द्वारा भी शामिल हैं ।

समय बीतने के साथ, ठीक 16 वीं शताब्दी के दौरान, बंगाली साहित्य में चंडी (चंडीमंगल जैसे कवि कानन मुकुंदराम चक्रवर्ती) और मानसा जैसे लोकप्रिय देवी-देवताओं के साथ मुख्य रूप से निपटने वाली कथा महाकाव्य कविताओं का समावेश होने लगा। इस सदी की परिणति के लिए तत्कालीन बंगाल क्षेत्र में व्यापक वैष्णववाद की लहर आ गई थी और इसने कविता के साथ संगीत के रूप में नई गीतात्मक गतिविधि को जन्म दिया। 17 वीं शताब्दी के बंगाली साहित्य के पास केवल धर्मनिरपेक्ष रोमांटिक कविता छंद थे, जो इस्लामी समुदाय द्वारा पूरी तरह से लिखे गए थे। यहां तक कि अरकान के मुसलमान, जो बंगाल के साथ घनिष्ठ बौद्धिक संपर्क बनाए रखते थे, बंगाली साहित्य में साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय थे। दौलत काज़ी, पहले बंगाली अरकानी कवि ने वास्तव में रोमांटिक कविता की कहानी सती मायाना को लिखा था। अठारहवीं शताब्दी के बंगाली साहित्य में धर्मनिरपेक्ष कविता और कथात्मक कविता के प्रति आत्मीयता दिखाई देती है। रामेश्वर भट्टाचार्य के शिवसंकीर्तन ने शिव को एक गरीब किसान और गौरी, उनकी पत्नी को एक मानवीय नायिका के रूप में चित्रित किया।

5.2. बंगला भाषा का सामान्य परिचय

विद्वानों के अनुसार बंगला भाषा का आरम्भ असमिया, उड़िया और मैथिली की भाँति पूर्व-प्राकृत (मागधी-प्राकृत) से हुआ है। जैसे-जैसे भाषा का विकास होता गया, वैसे-वैसे वह अपने कई अनार्य तत्वों को समाहित करती गयी, न केवल शब्दावली अपितु कल्पना चित्र और विचारों में भी बहुत-सी अनार्य बातें घुलती मिलती गयीं। ध्यातव्य है कि बंगाल देश में आर्यों के पहले जो लोग रहते थे, वे सभ्यता की दृष्टि से बहुत सामान्य कोटि के व्यक्ति थे। ईसा पूर्व तीसरी शब्दावली में मौर्य सम्राटों के समय में तथा ईसा की पाँचवीं शताब्दी के मध्य तक वे लोग सम्पूर्ण प्रदेश में फैलने और बसने लगे। शिक्षा, सामाजिक व्यवहार तथा व्यापार की जो भाषा थी, वह संस्कृत थी और इनकी घरेलू भाषा भी संस्कृत से उत्पन्न प्राकृत थी। बंगाल में साहित्य की नींव इन्हीं उपनिविष्ट आर्यों द्वारा रखी गयी। पहले कई शताब्दियों तक वह जो कुछ लिखते थे, संस्कृत में ही लिखते थे। इन सब लेखों का नमूना ताम्रपत्रों पर लिखित, अनुशासकों या भूमिदान पत्रों एवं एक-दो महाकाव्यों और कतिपय श्लोकों में प्राप्त होता है।

1.2.1. बंगला के पूर्व मध्यकालीन साहित्य

पूर्व मध्यकाल (14वीं शताब्दी का मध्य- 16वीं शताब्दी का आरम्भ) - 12 वीं शताब्दी के अन्त तक बंगाल मुसलमानों के अधिकार में चला गया था। यह बंगाल के सामाजिक और बौद्धिक जीवन के लिए एक विषम आघात

था। इस विषम आघात ने समाज के ऊपरी स्तर को प्रभावित किया। फलतः संस्कृत की परम्परा और संस्कृति ने अपनी पुरानी गरिमा और प्रभाव खो दिये। स्वाभाविक था कि समाज के नीचे के स्तर को सक्रिय और गतिमान होने का अवसर मिला। प्रदेशीय संस्कृति और परम्परा पर नये विषय तथा नये साहित्य के रूप उभरकर सतह पर आये। साहित्य के नये प्राणों का संचार हुआ जिससे बंगला के साहित्यिक विकास में पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई।

• वैष्णव साहित्य

बंगला साहित्य के आदिकाल का अन्त 15वीं शताब्दी का अन्त माना जाता है। लगभग 100 वर्ष का समय किसी सीमा तक अन्धकार का युग है। अतः हम बंगला साहित्य के मध्यकाल का आरम्भ 14वीं शताब्दी के मध्य भाग से मानते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम इसको दो भागों- पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल में विभक्त करते हैं। हम गीत गोविन्द के समय में संस्कृत में ही रचनाएँ रचा जाता था। बंगला साहित्य के मध्यकाल पूर्व मध्यकाल में सर्वप्रथम एवं अग्रणी हैं राधा-कृष्ण विषयक गीतों के रचयिता महान वैष्णव कवि चण्डीदास। उनके उत्तरवर्ती अनेक कवियों ने उनके माधुर्य एवं प्रसादत्व का स्तवन किया। यह भी उल्लेख मिलता है कि चैतन्य देव भी चण्डीदास के काव्य के अनुरागी थे।

चण्डीदास कृत ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण कीर्तन' है। यह अपूर्ण है। इसके साक्ष्य से ज्ञात होता है कि उनका नाम चण्डीदास अथवा अनन्तवाडु चण्डीदास था और वह ग्रामदेवी बासुली (वासली) के भक्त थे। 'श्रीकृष्ण कीर्तन' में पाँच सौ से अधिक गीत हैं और वह 13 खण्डों में विभाजित है। यह देशीय प्रबन्ध- काव्य जैसा ग्रन्थ है। इसका आरम्भ कृष्ण जन्म से और अन्त कृष्ण के वियोग के उपरान्त राधा के करुण विलाप में होता है। इसमें वर्णित प्रेमी-प्रेमिका के रूप में कृष्ण-राधा के प्रेम के आध्यात्मिक स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद इतना तो निर्विवाद है कि इसमें वर्णित प्रेम बहुत कम स्थलों पर ऐहिकता से पूर्णतः मुक्त हो पाता है। फिर भी आलोचकों की राय है कि चण्डीदास के पदों का स्वर ऐसा है कि इनकी नयी दृष्टि से व्याख्या होनी चाहिए, आध्यात्मिक अथवा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से।

चण्डीदास का काव्य यद्यपि अलंकारों के भार से मुक्त है, तथापि उसमें उपमा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का सहज प्रस्फुटन हुआ है और फलतः काव्य की प्रस्तुति में एक विशेषता आ गयी है। मूलतः चण्डीदास का ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण कीर्तन' गीतों का ही संकलन है, परन्तु इसमें नाटकीय तत्व सहज भाव से विद्यमान दिखाई देता है— केवल उपाख्यानों की संघटना में ही नहीं, जो अधिकांशतः उसकी कल्पना से प्रसूत है, बल्कि कथानक के विकास में भी, जो नाटकीय व्यापार का प्रभाव डालता है और पद्य बद्ध - संवादों के निर्वाह-कौशल में भी अभिवृद्धि करता है। यहाँ इतना निवेदन कर देना आवश्यक है कि श्रीकृष्ण कीर्तन के पदों की संख्या के विषय में अभी तक मतभेद बना हुआ है। अस्तु ! श्रीकृष्ण कीर्तन के अलावा चण्डीदास ने अनेक मुक्तक वैष्णव प्रेम-गीत भी अवश्य रचे होंगे, जिनका रूप गायकों की कृपा से परिवर्तित हो गया होगा। जो भी हो, चण्डीदास के नाम से प्रचलित कवियों में ये गुण पाये जाते हैं- मर्मस्पर्शी, भावोष्णता, प्रसादत्व, विशदता, स्वाभाविकता, स्पष्टता और पैनापन।

चण्डीदास के साथ एक अन्य महान शैव कवि मिथिला के विद्यापति का नाम अछेद्य रूप से जुड़ा हुआ है। उनके राधा-कृष्ण विषयक पदों को कुछ आलोचक एवं भक्त आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हैं और विद्यापति को वैष्णव कवियों की कोटि में रखते हैं। सम्भव है वे समसामयिक रहे हों। इनके प्रेम-विह्वल होकर मिलने का वर्णन भी मिलता है। परवर्ती कवियों ने इस दिव्य अवसर को लक्ष्य करके कविताएँ भी लिखी हैं। हमें तो यह दृष्टिकोण बहुत उपयुक्त प्रतीत होता है कि 15वीं शताब्दी के महान वैष्णव भक्त श्री चैतन्य देव के अदम्य धर्मानुराग ने उनका आत्मिक

सम्मेलन अवश्य करा दिया। चैतन्य देव और उनके अनुयायियों ने चण्डीदास के गीतों के साथ-साथ विद्यापति के गीतों को भी अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया- इतना कि बंगाल के परवर्ती वैष्णव कवियों ने विद्यापति की काव्य-भाषा पर मुग्ध होकर अपने काव्य में उनकी अवधारणा का प्रयत्न किया और इसी प्रक्रिया में मध्यकालीन बंगला और मैथिली के मिश्रण द्वारा एक नई काव्य भाषा ब्रजबुली की उद्भावना की जिसका अपना अलग आकर्षण है। बंगाल में ऐसी बहुत-सी कविताओं का संकलन है, जो विद्यापति द्वारा रचित बतायी जाती हैं। इस सन्दर्भ में यह तथ्य ध्यातव्य है कि बहुत दिनों तक यह विवाद का विषय बना रहा था कि विद्यापति बंगला के कवि हैं अथवा हिन्दी के कवि हैं। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वानों ने क्रिया-पदों को आधार बनाकर विद्यापति को हिन्दी कवि के रूप में मान्यता को सुदृढ़ आधार प्रदान कर दिया।

15वीं शताब्दी के बंगला के एक अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं कृत्तिवास ओझा। वह बंगला रामायण साहित्य के सर्वप्रथम और निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कृत्तिवास रामायण को बंगाल में वही लोकप्रियता प्राप्त है जो उत्तर प्रदेश तथा आसपास के स्थानों में तुलसी-कृत रामचरितमानस को। उसका प्रामाणिक पाठ निर्धारित होना शेष है। यह वस्तुतः संस्कृत रामायणों का मुक्त बंगला पद्य में रूपान्तर है। ध्यातव्य यह है कि कृत्तिवास रामायण में यद्यपि धर्म भावना व्याप्त है तथापि एक धर्म ग्रन्थ के रूप में उसको वह सम्मान प्राप्त नहीं है जो उत्तर भारत में तुलसी कृत रामचरितमानस को प्राप्त है। मुख्य कारण यह है कि उत्तर भारत में भक्ति-आन्दोलन राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति दो धाराओं में प्रवाहित हुआ था, जबकि बंगाल में वह केवल कृष्ण भक्ति में सीमित रहा और राम-भक्ति सम्प्रदाय एक स्फुट सम्प्रदाय के रूप में ही जीवित रह सका।

कृत्तिवास रामायण की रचना एक हिन्दू राजा के आश्रय में की गयी थी। 15वीं शताब्दी के एक और यशस्वी कवि मालाधर वसु ने (जो वर्तमान के निकट स्थित कुलीन ग्राम के निवासी थे) बंगाल के एक मुसलमान अधिपति रुकनुद्दीन बरबक शाह के संरक्षण में अपनी काव्य-कृति 'श्रीकृष्ण विजय' अथवा गोविन्द विजय की रचना की। एक मुसलमान शासक के आश्रय में एक वैष्णव भक्ति के ग्रन्थ की रचना यद्यपि मुसलमान शासकों की उदारता का द्योतक है तथापि यह समझना भूल होगी कि कवि मालाधर वसु का प्रेरणा स्रोत एकमात्र मुसलमान शासक था। ध्यातव्य है कि उनकी जन्मभूमि कुलीन ग्राम पन्द्रहवीं शताब्दी में वैष्णव संस्कृति का एक विश्रुत केन्द्र था और भागवत पुराण को बंगला काव्य के माध्यम से सर्वसुलभ करके उन्होंने जनता के मध्य भागवत धर्म का प्रचार-प्रसार किया। सच तो यह है कि मालाधर वसु को चैतन्य के भक्ति- धर्म का अग्रदूत समझा जाता है जिसने 16वीं शती में प्रान्त के धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक जीवन में नये प्राण फेंक दिये।

मुसलमानों के शासन में निम्न स्तर पर धार्मिक भावना को विकसित होने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इसमें प्रादेशिक साहित्यों और विषयों को उभरने का अवसर मिला। तान्त्रिक बौद्धों की देवियाँ हिन्दुओं के देवी-देवताओं के साथ इस प्रकार मिल गयीं कि दोनों के मध्य बहुत कम अन्तर रह गया। इनके मिलन से एक नये प्रकार के काव्य का उदय हुआ जिसे मंगल-काव्य कहा जाता है। मंगल काव्य में हिन्दुओं के मध्य बौद्धों की देवियों की बढ़ती हुई मान्यता के इतिहास का गहरा प्रभाव है। मंगल काव्य लम्बी वर्णनात्मक कविताएँ हैं— प्रायः बहुत बड़े कलेवर की जिनमें देवी-देवताओं द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वियों से संघर्ष कर अपनी प्रतिष्ठा कराने के प्रयत्नों की कथा रहती है।

प्रत्यक्षतः मंगल-काव्यों की रचना का कारण धार्मिक प्रचार ही लगता है। आलोचकों के मतानुसार मंगल-काव्यों के रचयिता मुख्यतः कवि थे। यदि वे किसी रूप में धर्म-प्रचारक थे भी तो बहुत ही गौण रूप में। उत्पीड़ित एवं

त्रस्त जनता के उत्साहवर्धन के लिए सम्भवतः मंगल-काव्य की उद्भावना की गयी हो। जो भी हो, इनमें समसामयिक समाज के सजीव शब्द चित्र हैं। ऐतिहासिक महत्ता भी इनकी कम नहीं। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और भौगोलिक तथ्य भी हमें इनमें मिलते हैं।

मंगल-काव्य के विविध प्रकारों में तीन अधिक महत्वपूर्ण हैं मनसा मंगल (केन्द्र बिन्दु सर्पिणी देवी मनसा), चण्डी-मंगल (केन्द्र महामाता चण्डी) और धर्म-मंगल (जिसके केन्द्र में है दक्षिण-पश्चिम बंगाल के एक स्थानीय देवता धर्म ठाकुर)। इन तीनों में सम्भवतः मनसा-मंगल सबसे पुराना है। विजयगुप्त का मनसा- मंगल अथवा पद्मा पुराण इस विषय की सबसे पहली उपलब्ध रचना है। विजयगुप्त सम्भवतः 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मौजूद थे। मनसा मंगल के एक और सुप्रसिद्ध रचयिता हैं—नारायण देव, जिनका समय सम्भवतः 16वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। बाद के कवियों में केतकादास और क्षेमानन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। चण्डी-मंगल की कथावस्तु की उद्भावना 14वीं - 15वीं शताब्दी में हुई। पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्त और 16वीं शताब्दी का आरम्भ हुसैन शाही शासन के साथ होता है और यहीं से वस्तुतः बंगला साहित्य का उत्तरकाल भी आरम्भ होता है। बंगला साहित्य के उत्तरकाल की चर्चा आरम्भ करने के पूर्व अथवा पूर्व मध्यकाल का समापन करने के पूर्व हम यह निवेदन करना आवश्यक समझते हैं कि 15वीं शताब्दी में आसाम और उड़ीसा में भी 'ब्रजबुली' (ब्रज बोली) में पदावली की रचना हुई थी।

बंगाल के समान आसाम में भी 15वीं शताब्दों के अन्तिम भाग में ब्रज बोली में कृष्णलीला विषयक रचना की प्रथा प्रचलित हुई। उस समय असमिया भाषा बंगला भाषा से स्वतन्त्र नहीं थी। उत्तर-पूर्व वंग की भाषा आसाम में प्रचलित थी। आसाम में वैष्णव धर्म का प्रचार करने वाले श्री शंकरदेव थे— जो 'चैतन्य देव' के समकालीन थे। कूच बिहार के राजा नर नारायण के भाई और सेनापति प्रथम शुक्ल-ध्वज के प्रोत्साहन से शंकरदेव ने 'रामविजय' नामक नाटक की रचना की और प्रथम गान यह गाया-

रासक- परम भकति रस जाना।

श्री शुक्लध्वज नृपति प्रधाना।

रामविजय जो कराओत नार।

मिलह तानि बैकुण्ठक बार।

बंगाल से ही ब्रज बोली की पद-रचना की धारा उड़ीसा में प्रचलित हुई। ध्यातव्य है कि 16वीं शताब्दी के मध्य तक उड़ीसा की हिन्दू स्वाधीनता अक्षुण्ण बनी रही थी। उड़ीसा में रचे प्राचीनतम पदों के रचयिता थे रामानन्द राय, जो उड़ीसा के राजा प्रताप रुद्र के विश्वासपात्र एवं महाप्रभु चैतन्य देव के अन्यतम भक्त थे। इनके द्वारा रचित पद 'पहिलहि राग नयन भंग मेल' इत्यादि रामानन्द राय द्वारा रचित 'चैतन्य चरितामृत' में सबसे पहले उद्धृत हुआ है। रामानन्द राय ने संस्कृत भाषा में एक नाटक लिखा था— 'जगन्नाथ वल्लभ'। इसमें जयदेव की शैली पर रचे गये कई संस्कृत पद हैं।

5.2.2. बंगला साहित्य के उत्तर-मध्यकालीन साहित्य

सामान्य परिचय - श्री चैतन्य महाप्रभु का अभ्युदय (1486-1533 ई.) बंगाल प्रदेश के सांस्कृतिक इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना थी। बंगला साहित्य को तो उसने व्यापक एवं अनुकूल रूप में प्रभावित किया ही, इतना ही नहीं उसने भारत के एक बहुत बड़े भाग को उद्वेलित किया। ब्रज मण्डल में- विशेषकर वृन्दावन में उनका प्रभाव

सर्वविदित है। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में प्रायः 15 वर्षों की अवधि में रची गयी शायद ही कोई ऐसी रचना हो जिस पर चैतन्य देव का प्रभाव न रहा हो। कहने की आवश्यकता नहीं है कि चैतन्य देव का जन्म स्थान नव-द्वीप या नदिया उस समय बंगाली संस्कृति का केन्द्र स्वरूप हो गया था। वह वैष्णव धर्म का केन्द्र होने के साथ संस्कृत अध्ययन का भी महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था।

नवद्वीप का सांस्कृतिक महत्व कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। उसके पीछे एक परम्परा थी जो साहित्य और संस्कृति को प्रभावित करती रही है। अतएव यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा कि भारतीय न्यायशास्त्र के नये सम्प्रदाय नव्य-न्याय की स्थापना भी यहीं हुई थी। इसका प्रवर्तन वासुदेव सार्वभौम ने किया और 'रघुनाथ शिरोमणि' ने उसे पूर्णता प्रदान की। उसका पूर्णोन्मेष भी इस काल-खण्ड में नदिया में ही हुआ। धर्मशास्त्र के महान आचार्य 'रघुनन्दन भट्टाचार्य' भी नदिया के ही थे। यह जानकर अनेक पाठकों को सुखद आश्चर्य होगा कि जीवन के आरम्भ में चैतन्य देव व्याकरण के अध्यापक और महान पंडित थे। कहते हैं उन्होंने व्याकरण सम्बन्धी एक महान ग्रन्थ की रचना भी की थी। धार्मिक और साहित्यिक आन्दोलन के रूप में बंगाल में वैष्णव धर्म की धारा चैतन्य के बहुत पहले से प्रवाहित हो रही थी। चैतन्य ने उसे एक नवचेतना प्रदान की और वह कवियों के एक सशक्त प्रेरणा स्रोत बन गये। यह ध्यातव्य है कि चैतन्य ने वृन्दावन तक साहित्य-रचना को प्रभावित किया। वृन्दावन में चैतन्य के छः महान गोस्वामी शिष्यों ने वैष्णव मत को संहिताबद्ध किया और उसे एक प्रामाणिक रूप प्रदान किया। समकालीन कवियों के एक वर्ग विशेष ने तथा अगली शताब्दी के अनेक कवियों ने चैतन्य के चरित्र और लीला को लक्ष्य करके अनेक कविताएँ लिखीं। चैतन्य के उपदेशों द्वारा उन्हें राधा-कृष्ण की लीलाओं के विषय में जो कुछ ज्ञात हो सका, उस पर भी उन्होंने शत-सहस्र कविताओं की रचना की।

उक्त छः गोस्वामियों में से सनातन गोस्वामी एवं रूप गोस्वामी तथा उनके भतीजे जीव गोस्वामी ने चैतन्य मत के प्रवाह के लिए काव्य-ग्रन्थ लिखे और संस्कृत गद्य-पद्य में आध्यात्मिक प्रवचन एवं निबन्ध- रचना की। यह मत बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इनके अलावा कवि कर्णमूर, परमानन्द सेन, कृष्णदास कविराज, बलदेव विद्या भूषण ने संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन किया। इसी उद्देश्य से संस्कृत में ग्रन्थ लिखने वालों में 17वीं शताब्दी के विश्वनाथ चक्रवर्ती का नाम उल्लेखनीय है।

इस कालावधि में रचित प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं-

• वैष्णव साहित्य

चैतन्य देव से प्रभावित बंगला साहित्य जो उक्त 150 वर्षों की अवधि में रचा गया, उसको दो भागों में बाँटा जा सकता है— (क) गीति-काव्य और (ख) चरित-काव्य।

(क) गीति-काव्य

इस काल में वैष्णव गीतों के रचयिता कवियों की संख्या लगभग एक सौ सत्तर बैठती है। इनमें प्रमुख नाम हैं— मुरारी गुप्त, नरहरि सरकार, वासुदेव घोष और रामानन्द वसु, अन्य कवियों में शेखर और रायशेखर का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। गुणवत्ता और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से राधाकृष्ण के प्रेम-विषयक गीत बंगाल की जनता के वर्गों के मध्य इतने लोकप्रिय हो गये थे कि अनेक मुसलमान कवियों ने भी निस्संकोच होकर इस विषय पर गीतों की रचना की

। आवश्यक नहीं है कि इन मुसलमान कवियों ने वैष्णव धर्म अपना लिया हो। ये गीत कृष्ण (कृष्णलीला के प्रत्येक अवस्थान पर) तथा चैतन्य देव/गौरांग प्रभु पर आधारित थे।

गौरांग विषयक कविताओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है-

(i) जिनमें गौरांग के जीवन के विभिन्न अवस्थानों, कृत्यों एवं उनकी दशाओं का वर्णन है। इन गीतों में युवती, पत्नी और विधवा वृद्ध माता को छोड़कर, नागरिक जीवन से वैराग्य लेने की घटना पर विशेष बल दिया गया है।

(ii) इस वर्ग की कविताओं में गौरांग को कृष्ण का पूर्णावतार मान लिया गया है और नदिया में उन्हें वैसा ही लीलाएँ करते हुए चित्रित किया गया है जैसी कृष्ण ने वृन्दावन में की थी।

(iii) तृतीय वर्ग में वे कविताएँ आती हैं जिनमें गौरांग किसी दिव्य भाव में तन्मय और बेसुध दिखाये गये हैं। मानो अनुभूति की गहनता में उन्होंने कृष्ण या राधा का साक्षात्कार कर लिया हो।

गौरांग के भक्तों का विश्वास है कि वृन्दावन की अलौकिक कृष्ण-लीलाओं का रहस्य समझने के लिए गौरांग के जीवन और कृत्यों से अवगत होना परम आवश्यक है।

- **कृष्ण विषयक कविताएँ**

मुख्यतः राधा-कृष्ण के प्रेम यह आधारित हैं। कुछ श्रेष्ठ कविताएँ कृष्ण की बाल-लीलाओं को भी लक्ष्य करके लिखी गयी हैं।

बंगाली वैष्णव की सबसे बड़ी कामना होती है अप्रकृत वृन्दावन में होने वाली कृष्ण लीलाओं का साक्षात्कार करना, जो अटूट कृष्ण भक्ति द्वारा ही सम्भव है। बंगाल के वैष्णव और अन्य भागों के वैष्णव में मौलिक अन्तर यह है कि बंगाल का वैष्णव कृष्ण-राधा की या कृष्ण की लीलाओं का साक्षी बनना चाहता है और कृष्ण के साथ एकाकार होने की बात उसके निकट महान पाप है। अन्य वैष्णव उनके साथ निकटस्थ सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। यशस्विनी भक्तिन मीराबाई, कृष्ण का पति-रूप वर्ण करती हुई देखी जाती है। बंगाल का वैष्णव विनयवश कभी भी इस प्रकार के उच्च पद का अधिकारी अपने को नहीं मान सकता है। सब कुछ व्यक्तिगत प्रभाव पर आधारित होने के कारण इन गीतों में मानव पक्ष कहीं भी निर्बल नहीं हो पाया है, यद्यपि इनकी प्रेरणा में धार्मिक पक्ष का प्राधान्य है। अगणित कवियों ने एक ही विषय पर कविताएँ लिखी हैं। अतः नूतनता और वैविध्य लाने के लिए उन्हें नयी प्रेम परिस्थितियों की और उसके लिए असंख्य उपाख्यानों की उद्भावना करनी पड़ी है। इसके लिए इन कवियों ने बहुत कुछ पुराणों का सहारा लिया है। शेष इनकी अपनी मनः सृष्टि है।

वैष्णव बंगला कविताएँ भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध हैं। छन्दों में वैविध्य है जिसके कारण पाठक का मन ऊब नहीं पाता। अधिकांश कविताओं में एक ही भाव की अभिव्यक्ति है और वे छोटी हैं। कुछ कविताओं में अनावश्यक विस्तार पाया जाता है, परन्तु इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है।

सहजिया सम्प्रदाय के वैष्णवों ने भी प्रचुर गीत-साहित्य और सैद्धान्तिक निबन्धों का प्रणयन किया है।

(ख) चरित काव्य

16वीं शताब्दी के बाद वैष्णव साहित्य में चरित्र - साहित्य का सृजन आरम्भ हुआ। चैतन्य जीवन को लक्ष्य करके अनेक चरित काव्य लिखे गये, क्योंकि उनके व्यक्तित्व में देवत्व और मानवत्व दोनों का समन्वय था। उनके जीवन काल में ही उन्हें कृष्ण का अवतार माना जाने लगा था। अनेक कवियों ने उनकी पद्यबद्ध जीवनी लिखी। चैतन्य को लक्ष्य करके लिखे गये दो ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है- 'चैन्तय चरिताघृत' और नाटक 'चैतन्य चन्द्रोदय' दोनों के लेखक हैं कवि 'कर्णपूर' नाम से प्रसिद्ध कवि परमानन्द सेन। बंगला में उनकी जीवनी चैतन्य भागवत नाम से सर्वप्रथम वृन्दावन दास ने लिखी। बाद में दो कवियों 'लोचन दास' और 'जयानन्द' ने एक ही नाम के ग्रन्थ-'चैतन्य-मंगल' की रचना की। इन ग्रन्थों से तत्कालीन समाज के विषय में बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है। चैतन्य चरितामृत में काव्य और दर्शन का स्तुत्य समन्वय हुआ है। चैतन्य पर और भी अनेक छोटी-मोटी कृतियाँ लिखी गयी हैं। चैतन्य के अलावा अद्वैताचार्य के जीवन पर भी कुछ ग्रन्थ लिखे गये हैं।

17वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में महत्वपूर्ण कवियों के नाम हैं— 'श्रीनिवास', 'नरोत्तम' और 'श्यामानन्द'। बंगाल और उड़ीसा में 'दिव्यात्माओं' से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं— नित्यानन्द दास कृत 'प्रेम-विलास' और नरहरि चक्रवर्ती कृत 'नरोत्तम विलास' एवं 'भक्ति रत्नाकर'।

5.2.3. अनुवाद या रूपान्तर

श्री चैतन्य के जीवन काल और उसके बाद की दो सदियों में बंगला साहित्य में वैष्णव- साहित्य के साथ अन्य प्रकार के साहित्य का भी सृजन होता रहा। अन्य प्रकार के इस साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(क) अनुवाद साहित्य और (ख) मंगल-काव्य।

(क) अनुवाद साहित्य

बंगला का अनुवाद साहित्य मुख्यतः तीन ग्रन्थों पर आधारित है— दो महाकाव्य महाभारत और रामायण तथा बंगाल के सर्वप्रिय पुराण भागवत पुराण। यह साहित्य वस्तुतः रूपान्तर है। इसे सच्चे अर्थ में अनुवाद नहीं कहा जाना चाहिए। इस काल-खण्ड में कृत्तिवास के अलावा कवयित्री 'चन्द्रावती', कवि 'अदभुताचार्य', 'पठ्ठीश्वर सेन' और उनके पुत्र 'गोपदास सेन' तथा कवि 'चन्द' के नाम उल्लेखनीय हैं। लगभग इसी समय कवीन्द्र परमेश्वर ने एक मुसलमान सेनापति के आश्रय में रहकर 'पाण्डव विजय' अथवा 'विजय पाण्डव कथा' की रचना की। 17वीं शती में 30 से अधिक महाभारत के रूपान्तर हुए, जिनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय रूपान्तर है काशीरामदास कृत 'महाभारत'। इस ग्रन्थ ने बंगाली संस्कृति पर व्यापक प्रभाव डाला। भागवत के ये रूपान्तर उल्लेखनीय हैं- 15वीं शताब्दी में मालाधर वसु कृत रूपान्तर तथा 16वीं शताब्दी में माधव आचार्य रघुनाथ पंडित तथा श्यामदास कृत अनुवाद / रूपान्तर।

(ख) मंगल- काव्य

16वीं शताब्दी के पहले बंगला में दो महत्वपूर्ण मंगल- काव्यों की रचना की जा चुकी थी— 'मनसा मंगल' और 'चण्डी मंगल'। 16वीं व 17वीं शताब्दी में कई कवियों ने मंगल काव्यों की रचना की पर मुकुन्दराम चण्डी मंगल काव्य के सर्वोत्कृष्ट कवि हुए। चण्डी मंगल के मूल में एक बात अधिक कही जाती है कि जो भी हो, काव्य का उद्देश्य धर्म-प्रचार ही है। बंगला साहित्य के कुछ समीक्षकों ने मुकुन्दराम को बंगाल का 'चौसर' कहा है। तुलना विवादास्पद हो सकती है, परन्तु यह निर्विवाद है कि मुकुन्दराम एक महान कवि थे।

मंगल- काव्य का तीसरा प्रकार है धर्म-मंगल। धर्म-मंगल की रचना 17वीं शताब्दी में ही मिलती है। इससे पूर्व रची हुई कोई कृति नहीं मिलती है। निम्नवर्गीय हिन्दुओं द्वारा पूजित दक्षिणी-पश्चिमी बंगाल के एक स्थानीय देवता को लेकर जो साहित्य रचा गया उसका अधिकांश धर्म-मंगलों में निहित है। दूसरे प्रकार के धर्म साहित्य में स्वयं-कृतियाँ आती हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है 'शून्य पुराण मनसा-मंगल' और 'चण्डी - मंगल तथा धर्म मंगल' का व्यापक प्रचार नहीं हुआ। धर्म-मंगल को मोटे तौर पर दक्षिणी-पश्चिमी बंगाल का जातीय काव्य कहा जा सकता है। 16वीं शताब्दी में धर्म-मंगल काव्य लिखने वालों में 'खेलाराम' का नाम आता है। 17वीं शताब्दी में धर्म-मंगल काव्य लिखने वालों में 'रूपराम चक्रवर्ती', 'रामदास आदक' और 'सीताराम' के नाम उल्लेखनीय हैं। मध्यकाल के अन्त में 18वीं शताब्दी में 'धनराम चक्रवर्ती' का नाम सर्वश्रेष्ठ धर्म-मंगल-काव्य के रचयिता के रूप में लिया जाता है। धर्म-मंगल काव्यों में बंगाल में धर्म-पूजा की कथा वर्णित है।

मंगल- काव्यों से सम्बद्ध एक अन्य प्रकार के काव्य- **शैव काव्य** की धारा चली। इस धारा के काव्यों को **शिवायन** कहकर पुकारा जाता है। ये काव्य परिणाम में बहुत कम हैं, इस शाखा का सर्वश्रेष्ठ कवि 'रामेश्वर' माना जाता है, जो 1800-1825 ई. के मध्य किसी समय विद्यमान था। ध्यातव्य है कि 'तुकबन्दियों' के रूप में शैव गीतों की परम्परा किसी-न-किसी रूप में 14वीं शताब्दी से चली आ रही थी। 'शिवायन' तथा इसी प्रकार के 'तुकबन्दियों' वाली रचनाओं में स्थानीय स्वरूप छाया हुआ था। इससे वे ग्रामीण जनों के अधिक निकट आ गये हैं। समग्र रूप में देखने पर कहा जा सकता है कि बंगला साहित्य में शिव का चित्रण उपहास्य के रूप में किया गया है, श्रद्धा-भक्ति के आलम्बन या पात्र के रूप में नहीं।

- **पूर्वी बंगाली गीत**

डॉ. डी. सी.. सेन तथा उनके सहायक अनुसन्धाताओं के द्वारा संकलित और प्रकाशित गीत 17वीं शताब्दी के अन्त में और 18वीं शताब्दी में विद्यमान पूर्वी बंगाल के अनपढ़ किसानों की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। इनमें बंगाल के विशिष्ट ग्रामीण परिवेश को लेकर विभिन्न प्रकार की प्रेम-कथाएँ वर्णित हैं। इनका स्वरूप विशुद्ध लौकिक है। ये गीत बंगाल के भीतरी भागों में गाये जाते हैं और पहले भी गाये जाते थे। इन गीतों के पात्र तथा रचयिता हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। इनकी शब्दावली भावपूर्ण, विशद और स्फूर्तिदायक है। ये हृदयस्पर्शी हैं। इनमें करुणा का कोमल स्वर सर्वत्र मुखर है। वस्तुतः वर्णनात्मक एवं गेय लम्बी कविताएँ हैं।

5.3. बंगला भाषा में विद्यासुन्दर काव्य

18वीं शताब्दी में पश्चिम बंगाल के भगीरथ के निकटवर्ती प्रदेश में विद्यासुन्दर की कहानी बहुत लोकप्रिय रही है। इसका कारण यह था कि पतनोन्मुख मुसलमान सम्राट और नवाबों के दरबार के आडम्बर ने इस प्रदेश के शिक्षित समाज के मन को धीरे-धीरे प्रभावित और विषाक्त बना दिया था। समाज भी उन दिनों अवनति प्रवण था। अतएव विद्यासुन्दर कहानी में इस समय की विकृत रुचि और कविगणों के उन दिनों के शिक्षित और धनी श्रेणी के लोगों की रुचि का परिचय मिलता है।

विद्यासुन्दर कहानी संक्षिप्त रूप में— सुन्दर नाम का एक विदेशी राजकुमार एक मालिनी को दूती बनाकर राजकुमारी विद्या से छिपकर प्रेम करता है। विद्या की माता अपनी बेटी के गुप्त प्रेम की बात अपने पति को बता देती है। पिता राजा तो था ही, वह कोतवाल द्वारा सुन्दर को पकड़वा लेता है और मृत्युदण्ड की आज्ञा देता है। सुन्दर

कालिका देवी का वरद पुत्र था। देवी ने यथासमय प्रकट होकर सुन्दर का उद्धार किया। सुन्दर का परिचय प्राप्त करने के उपरान्त राजा ने विद्या का विवाह उसके साथ कर दिया । इस कहानी का मूल संस्कृत कवि विल्हण कृत 'चौरपंचाशिका' नामक कविता में प्राप्त होता है। अनुमान है कि बाद में वह कविता संस्कृत के नाटक रूप में परिवर्तित हो गयी थी। वररुचि के नाम से विद्यासुन्दर नाटक प्राप्त होता है।

मूल आख्यान में देवी के सम्पर्क वाली बात नहीं थी। बाद में सुन्दर को देवी का उपासक या वरद पुत्र ठहराकर उस पर धर्म की छाप लगा दी और उसको सर्वसाधारण द्वारा ग्रहण करने योग्य बना दिया गया। धर्म की कलई के बाद भी इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि यह कहानी मूलतः लौकिक है। विद्यासुन्दर काव्य की रचना करने वाले कम-से-कम सात कवियों का पता चलता है— 'बलराम कवि शेखर', 'भारतचन्द्र राय गुणाकर', 'राम प्रसाद सेन', 'कवि रंजन', 'निधिराम आचार्य कविरत्न राधाकान्त मिश्र', 'कवीन्द्र चक्रवर्ती' तथा 'प्राणराम चक्रवर्ती'। इनमें भारतचन्द्र और रामचन्द्र द्वारा रचित काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भारतचन्द्र 19वीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि मान जाते हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आनन्द-मंगल' इस शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। भारतचन्द्र के श्रेष्ठत्व का मुख्य कारण उनकी शैली है। शुद्ध बंगला शब्दों के साथ संस्कृत एवं अरबी-फ़ारसी शब्दों का ऐसा सुसामंजस्य पूर्ण प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है। नाना प्रकार के संस्कृत छन्दों में बंगला कविता की रचना इनकी महत्वपूर्ण विशेषता है जो इनके छन्द-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का परिचय देती है। रामप्रसाद कृत 'कालिका मंगल' काव्य काफी प्रसिद्ध है। इनकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार इनका भक्ति विषयक संगीत है। अन्त में यह बता देना आवश्यक है कि हिन्दी के नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी बंगला नाटक विद्यासुन्दर का हिन्दी में अनुवाद किया था। यह विद्यासुन्दर नाटक की लोकप्रियता एवं प्रासंगिकता का प्रमाण है।

5.3.1.बंगला भाषा में शैव-सिद्ध साहित्य

बंगाल में एक योगी सम्प्रदाय प्राचीन काल से चला आता था। उसके सन्दर्भ में चार आदि सिद्धों के नाम लिए जाते हैं—'मत्स्येन्द्रनाथ' अथवा 'मीननाथ', 'गोरक्षनाथ', 'हाड़िया' और 'कानुपा'। इन चार सिद्धों के माहात्म्य को प्रकट करने वाली अलौकिक कहानियाँ अथवा गद्य-रचनाएँ बंगाल में अत्यन्त प्राचीन काल में प्रचलित रही हैं। इन कहानियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है— (1) मीननाथ गोरक्षनाथ की कहानी और (2) गोविन्द चन्द अपनाकती की कहानी। मीननाथ— गोरक्षनाथ की कहानी में देवी के छल से मीननाथ या मत्स्येन्द्र नाथ मोक्ष को प्राप्त होते हैं और बाद में उनके शिष्य गोरक्षनाथ उनका उद्धार करते हैं।

प्राप्त गाथाओं में जो सबसे प्राचीन है वह पश्चिम बंगाल के कवि दुर्लभ मल्लिक की रचना है। सहदेव चक्रवर्ती के अनिल पुराण में मीननाथ और गोरक्षनाथ की कहानी है। कवीन्द्र और शेख फैजुल्ला रचित 'गोरक्ष विजय' उत्तर-पूर्व बंगाल में मिली है। इसका रचनाकाल 14वीं सदी का आरम्भ माना जाता है। 15वीं और 16वीं शताब्दी में शिव की गृहस्थी के सम्बन्ध में प्रचलित कहानियाँ 'मनसा-मंगलों' और 'चण्डी – मंगलों' में अन्तर्युक्त तो थीं ही, किन्तु शिव के विषय में स्वतन्त्र गान भी प्रचलित थे। शिव के विषय में श्रेष्ठ बंगला काव्य रामेश्वर भट्टाचार्य का **शिवायन** अथवा शिव संकीर्तन है। 'शिवायन' 18वीं शताब्दी का एक श्रेष्ठ काव्य है। इसमें साधारण मनुष्यों के घर-गृहस्थी के व्यापार अत्यन्त

सहृदयता के साथ वर्णित हैं। इनके काव्य में विकृत रुचि का परिचय नाम को भी नहीं है। कवि ने ठीक ही कहा है— भवकाव्य, भद्रकाव्य, भगे रामेश्वर, रामेश्वर ने सत्यनारायण की एक पांचाली की भी रचना की थी। 18वीं शताब्दी में

शिवायन करने वाले दो अन्य श्रेष्ठ कवियों के नाम का उल्लेख करना आवश्यक है। वे नाम हैं— 'राय कृष्णदास कविचन्द्र' तथा 'रामदास'। सत्यनारायण की 'पांचाली' की रचना दक्षिण राढ़ देश में हुई और थोड़े ही समय में इसका प्रचार बहुत दूर-दूर तक हो गया। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों की संस्कृतिगत मिलन की चेष्टा है।

- **सत्यनारायण काव्य**

पीर और फकीर हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदाय के लोगों से श्रद्धा पाते हैं। इसी कारण पीर की उपासना दोनों धर्म के मेल के लिए सेतु-स्वरूप सिद्ध हुई। सत्यनारायण अथवा सत्यपीर पीर का देव संस्करण मात्र है। फलतः सहज ही में विष्णु के साथ इनका एकीकरण हो गया। सत्यनारायण की पांचाली व्रतकथा के ढंग की वस्तु है। प्राचीन बंगला साहित्य के सब देवमंगल काव्यों में से केवल यही अब भी पूजा के रूप में व्रतकथा की कथा की तरह पढ़ी और सुनी जाती है। सत्यनारायण काव्य के प्राचीनतम कवि 'धनराम चक्रवर्ती', 'रामेश्वर भट्टाचार्य', 'फकीरराम कवि भूषण' और 'विकल भट्ट' हैं। इनके पश्चात् द्विज 'रामकृष्ण', 'भारतचन्द्र राय गुणाकर', 'कवि वल्लभ', 'जयनारायण सेन', 'कवि शंकर देवकीनदन', 'गंगाराम द्विज', 'हरिदास' और 'विद्यापति' आदि।

- **विशेष-**(i) भारतचन्द्र गुणाकर ने सत्यनारायण की दो पांचाली लिखी थीं, जिनका रचनाकाल क्रमशः 1738 ई. तथा 1740 ई. है।

(ii) जयनारायण सेन के काव्य का नाम 'हरिलीला' है और रचना काल सन् 1773 ई. है।

चटगाँव प्रदेश में सत्यपीर की तरह त्रैलोक्य पीर का गान प्रचलित है। मुसलमानों में मयमन सिंह और चौबीस परगना प्रदेश में गाजी साहब का गान प्रचलित है। पश्चिम और मध्य में प्रायः सभी जगह माणिक पीर का गान अब भी प्रचलित है, परन्तु साहित्य की दृष्टि में इन गानों का विशेष महत्व नहीं है। 18वीं शताब्दी में अनेक कवियों ने गंगा के माहात्य के विषय पर गंगा-मंगल काव्यों की रचना की है। इन काव्यों की मूल कहानी भगीरथ द्वारा 'गंगावतरण' की पौराणिक आख्यायिका है। इस प्रकार के काव्यों में सर्वश्रेष्ठ काव्य है- 'गंगाभक्ति तरंगिणी', जिसकी रचना 18वीं शताब्दी के बिल्कुल अन्तिम भाग में हुई।

सूर्य के सम्बन्ध में भी व्रतकथा जाति के दो काव्य मिलते हैं। इनके रचयिताओं में दो नाम विशेष उल्लेखनीय हैं- 'रामजीवन' और कवि 'द्विज कालिदास'। सरस्वती के माहात्म्य के विषय में केवल दो काव्य उपलब्ध हुए हैं- दासराम रचित 'सारदाचरित' और द्विज विरेश्वर कृत 'सरस्वती मंगल'। लक्ष्मी के माहात्म्य और उनकी व्रत-कथा से सम्बद्ध भी कुछ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इस काव्य के रचयिताओं के रूप में अनेक कवियों के नाम आते हैं, परन्तु महत्वपूर्ण है केवल एक नाम-'गुणराज खाँ उपाधिकारी वैश्व शिवानंदकर'। इनके काव्य का नाम है 'कमला- मंगल'। लक्ष्मी व्रत-कथा से सम्बन्धित अधिकांश रचनाओं का आरंभ काल 19वीं शताब्दी। पश्चिम बंगाल में जिन स्थानीय देवताओं के विषय में एक से अधिक कविता, छन्द अथवा गान प्रचलित हैं, उनमें से प्रधान हैं— 'वैद्यनाथ', 'तारकनाथ', 'मदनमोहन', 'योगाद्या' एवं 'किरीटेश्वरी'।

5.4. बंगला साहित्य के सन्धिकाल का परिचय

1757 ई. में प्लासी के युद्ध के पश्चात् 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने बंगाल की दीवानी अर्थात राजस्व की अदायगी का भार प्राप्त किया। कुछ ही वर्षों में उसने देश के शासन-भार को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण कर लिया। इससे

नवीन सम्भावनाएँ घटित हुई। इसके कुछ पहले ही बंगाल में गद्य रचना आरम्भ हो गयी थी। इस दिशा में केवल ईसाई मिशनरियों ने ही योगदान नहीं किया, बल्कि स्थानीय पंडित वर्ग ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया। ध्यातव्य है कि ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म-प्रचार के लिए हिन्दी गद्य अपनाया था। प्रारम्भिक शिक्षार्थियों के लिए स्मृति और न्यायशास्त्र के किसी ग्रन्थ का बंगला में अनुवाद कार्य 19वीं शताब्दी के मध्य भाग से ही आरम्भ हो गया था। चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित दो-तीन पुस्तकें बंगला में लिखी गयी थीं। इस दिशा में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के योगदान को लक्ष्य करके डॉ. सुकुमार सेन ने लिखा है कि 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अभ्युदय न होने पर यह कार्य कितनी दूर तक अग्रसर हुआ होता, यह कहना कठिन है'। कम्पनी ने शासक के रूप में सर्वप्रथम चिट्ठी-पत्री और दलील- दस्तावेद में बंगला का व्यवहार किया। इसके बाद बंगाली को अंग्रेजी और अंग्रेज को बंगाली सिखाने की आवश्यकता का अनुभव हुआ और व्याकरण एवं कोश ग्रन्थों की रचना होने लगी। इसी सन्दर्भ में बंगला मुद्रण यन्त्र और बंगला टाइप की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

कम्पनी के कर्मचारी 'चार्ल्स विनिकिन्स' ने बंगला टाइप का आविष्कार किया। इन्होंने 'सीरकपुर के पंचानन' नामक लोहार को टाइप बनाना सिखा दिया। बंगला टाइप का प्रथम व्यवहार 'हालहैड' साहब द्वारा रचित बंगला व्याकरण में हुआ। इस प्रकार मृद्रण यन्त्र के लिए बंगला अक्षरों को सृष्टि होने के साथ बंगला-साहित्य में नूतन-युग का आविर्भाव हुआ। मुद्रण यन्त्र के सहायता से पुस्तक-प्रकाशन अनायास एक व्यापार बन गया। अब साहित्य सर्वसुलभ एवं सर्वोपयोग वस्तु बन गया। वह बन्द सीमाओं से बाहर आ गया। बंगला गद्य की प्रतिष्ठा हो जाने पर भी बंगला में 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में वैष्णव-पद रामायण, महाभारत, मनसा-मंगल इत्यादि धर्म-काव्य यथेष्ठ मात्रा में लिखे जाते रहे। श्रीमद भागवत एवं अन्यान्य पुराणों के अनुवाद भी हुए। विक्रमादित्य के उपाख्यान एवं विद्यासुन्दर के अनुकरण पर रचित प्रणय-कहानी वाले ग्रन्थ शहरों में जनप्रिय थे। यद्यपि इनका साहित्यिक मूल्य प्रायः नगण्य ही कहा जायेगा। उत्तर और पूर्व बंगाल में ऐतिहासिक और अनैतिहासिक कहानियों के आधार पर रचित ग्राम-गीत 20वीं शताब्दी के आरम्भ में प्रचलित रहे। अनेक चमत्कारपूर्ण ग्राम-गाथाओं के संग्रह 'मैनसिंह गीतिका' एवं 'पूर्व बंग गीतिका' के नाम से कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किये गये।

18वीं शताब्दी के बिल्कुल अन्त में बंगला में कानून की एक-दो पुस्तकें लिखी गयीं। ध्यातव्य है कि ये पुस्तकें साहित्य की कोटि में नहीं आती है, यह इनका उपयोग-पक्ष निर्विवाद है। ये पुस्तकें दलील-पत्रों के समान अरबी-फ़ारसी शब्दों से पूर्ण हैं। विलायत से आये कम्पनी के नये कर्मचारियों को शिक्षा के लिए 1800 ई. में कलकत्ता में 'फोर्ट विलियम कॉलेज' स्थापित हुआ। कॉलेज के प्राच्य भाषा विभाग के अध्यक्ष 'श्रीरामपुर' के मिशनरी पादरी 'विलियम कैरी' नियुक्त किये गये। आगामी वर्ष के मई मास में 'फेरी साहब' की सहायता के लिए इस विभाग में कई 'मुंशियों' और 'पंडितों' को नियुक्ति की गयी और इस प्रकार कॉलेज का वास्तविक कार्य आरम्भ हुआ।

विदेशी लोगों (सिविलियनों) को बंगला पढ़ाते समय एक कठिनाई सामने आयी। बंगला के समस्त ग्रन्थ पद्य में थे। साहबों का प्रयोजन बोलचाल की व्यवहारोपयोगी भाषा सीखना था। अतएव उनके लिए गद्य में लिखी हुई पाठ्य- पुस्तकों की आवश्यकता का अनुभव हुआ। निदान श्रीमान 'केरी' अपने सहकारी पंडितों और मुंशियों द्वारा बंगला-गद्य में पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराने लगे और इन्होंने स्वयं भी एक व्याकरण, एक कोश, प्रश्नोत्तरी एवं अन्य दो गद्य पुस्तकें संकलित कीं। जिस वर्ष कॉलेज आरम्भ हुआ, उसी वर्ष रामदास बसु का 'प्रतापादित्य चरित्र' एवं गोलोक शर्मा का 'हितोपदेश' प्रकाशित हुआ। रामराम बसु का **'राजाप्रतापादित्य-चरित्र'** ही बंगला अक्षरों में मुद्रित प्रथम मौलिक बंगला गद्य की पुस्तक है। इससे पहले जो भी बंगला गद्य में ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे, ये सब अंग्रेजो से अनूदित

थे अथवा रोमन लिपि में थे। इस सिलसिले में प्रकाशित होने वाले अन्य बंगला गद्य-ग्रन्थ है-'लिपि माला' (रामबाबू 1802 ई.) 'तोता-इतिहास' (चण्डीचरण मुंशी 1905 ई.), 'महाराज कृष्णचन्द्र रामस्य चरित्रम्' (राजीव लोचन मुखोपाध्याय) तथा 'सिंहासन' (मृत्युंजयकार)। फोर्ट विलियम कॉलेज के शिक्षकों में मृत्युंजय विद्यालंकार सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखक थे। वह वस्तुतः कैरी साहब के दाहिना हाथ थे। उन्होंने कई गद्य ग्रन्थ लिखे जिनमें 'राजा बलि' और 'प्रबोधचन्द्रिका' श्रेष्ठ है। राजा बलि वस्तुतः देशी लोगों द्वारा लिखा गया भारतवर्ष का प्रथम इतिहास है। बंगला पाठ्य-पुस्तकों का कार्य केरी, मार्शमैन तथा अन्यायन्य यूरोपीय विद्या प्रचारकगण द्वारा पूरी निष्ठा से किया गया। कुछ स्थानीय बंगालियों ने भी इस दिशा में खुलकर योगदान किया। इसमें 'राजा राममोहन राय', 'राजा राधाकान्त देव' और 'राजा कालीकृष्ण देव' बहापुर के नाम सर्वप्रथम आते हैं। इन लोगों ने शिक्षा-ग्रन्थों के अलावा शुद्ध साहित्यिक महत्व के ग्रन्थ भी लिखे।

इस युग के बंगला-गद्य के मौलिक ग्रन्थों की संख्या बहुत कम है। अधिकांश ग्रन्थ अंग्रेजी, संस्कृत एवं फ़ारसी ग्रन्थों के अनुवाद हैं। इस युग का गद्य प्रमार्जित है और साहित्यिक दृष्टि से उसका महत्व बहुत कम है। इनका महत्व केवल यही है कि इनमें बंगला गद्य-शैली के शैशव का अपरिष्कृत रूप परिलक्षित होता है।

- **तज्जी-** पहेली के छड़ों (छन्द तुक) की सहायता से उत्तर- प्रत्युत्तर द्वारा लोगों के मनोरंजन की प्रवेष्ट बंगाल में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। इस जाति के तज्जी अथवा छड़ा का निदर्शन 16वीं से चला आता है।

- **बैठकी गान**- कीर्तिगान के अलावा अध्यात्म और प्रणय विषयक बैठकी गान का विशेष प्रचलन था। इसका प्रचलन 18वीं शताब्दी में बहुत हुआ।

- **खेड़ू/ खेउड़-** 18वीं शताब्दी में शान्तिपुर प्रदेश में ग्राम भाषा में रचित एवं टप्पे स्वर में गाये जाने वाले स्वर में एक प्रकार के गान का प्रचलन हुआ जो नितान्त श्रृंगारपरक था। इसको खेड़ू अथवा खेउड़ा कहा जाता था। भारतचन्दर के समय में नदिया प्रदेश में इसका चलन हो गया था। परवर्ती काल में यह चुंचुड़ा और कलकत्ता आया। अखड़ाई गान के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करने वालों में प्रमुख नाम है- 'निशिबाबू', 'श्री रामदास', 'रामठाकुर', 'नसीराम सेकरा' आदि।

आखड़ाई में उत्तर- प्रत्युत्तर अथवा वाद नहीं होता तथा वह पर्याप्त कष्टसाध्य है। कुछ लोगों ने तोड़- मरोड़ कर आखड़ाई को आसान बनाकर 'हाफ आखदाई' बनाया। 19वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते यह हो यह मान समाप्त हो गया।

5.4.1. सामयिक पत्रों का आविर्भाव और प्रभाव

फोर्ट विलियम कॉलेज के पाठ्य-पुस्तक रचयिताओं ने बंगला भाषा के अनुशीलन की दिशा मैं तो पर्याप्त कार्य किया, परन्तु भाषा की उन्नति अथवा परिपुष्टि का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। दृष्टव्य यह है कि पाठ्य-पुस्तकों के रूप में लिखे गये उक्त ग्रन्थों का प्रभाव जनता पर बिल्कुल नहीं था। वे जनता के लिए थे और नहीं भी थे। वे तो एक विशेष वर्ग के व्यक्तियों की विशेष आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिखे गये थे। जनसाधारण इसे 'किरस्तानी व्यापार' कहकर इससे परहेज करता था।

केरी के उद्योग से श्रीरामपुर के मिशनरी सम्प्रदाय ने अप्रैल माह, सन् 1818 ई. में 'दर्शन' नामक बंगला मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह पत्र शीघ्र ही बन्द हो गया। मई के ही महीने में 'समाचार दर्पण' नामक साप्ताहिक पत्र आरम्भ किया गया। इसी के आसपास बंगालियों के उद्योग से 'बंगला गजट' प्रकाशित किया गया। इस प्रकार बंगालियों के उद्योग से प्रकाशित होने वाला यह प्रथम सामयिक साप्ताहिक पत्र था। इन सामयिक पत्रों द्वारा हो शिक्षित बंगालियों ने सर्वप्रथम गद्य-साहित्य का रस-ग्रहण किया। नवीन तथ्यों और ग्रन्थों का रस बंगालियों को इन समाचार-पत्रों से प्राप्त होने लगा। जनता में बंगला सामयिक पत्रों की माँग बढ़ने लगी और इस प्रकार बंगला के गद्य की उन्नति का द्वार खुल गया। अतएव बंगला के गद्य-साहित्य की उन्नति का इतिहास प्राचीनतम बंगला सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में खोजना चाहिए।

'समाचार दर्पण' की तरह समाचार चन्द्रिका साप्ताहिक का प्रकाशन 5 मार्च, 1825 ई. को आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक थे भवानीचरण वन्दोपाध्याय। भवानीचरण ने गद्य और पद्य दोनों ही बन्धों में पुस्तक-रचना की। अतएव उनमें प्राचीन पद्यबंध एवं आधुनिक गद्यबंध-बंगला साहित्य की दोनों ही धाराओं का सम्मिलन घटित हुआ। बंगला-साहित्य की उत्कृष्ट व्यंग्य रचनाओं में भवानीचरण के 'नवबाबू विलास' ने उल्लेखनीय योगदान किया। टेकचाँद ठाकुर, दीनबन्दु मिश्र प्रभृति परवर्ती काल के हास्यरसिक लेखकगण प्रायः सभी थोड़े-बहुत भवानीचरण के ऋणी है। भवानीचरण की तरह ईश्वरचन्द्र गुप्त भी दो पथों पर चले और उन्होंने दो युगों के मध्य में सेतु निर्माण कर दिया। वह एक प्रकार से उस युग के सर्वश्रेष्ठ सामायिक पत्र-सेवी साहित्यिक थे। सन् 1832 ई. में उन्होंने 'संवाद प्रभाकर' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। इन्होंने और भी कई सामयिक पत्रिकाओं का सम्पादन किया। उन्होंने 'संवाद-प्रभाकर' के माध्यम से कई नये युवा लेखक तैयार किये जो आगे चलकर अच्छे गद्य-लेखक एवं ग्रन्थकार बने।

बंगला साहित्य को ईश्वरचन्द्र का योगदान स्वदेश और स्वसमाज के प्रीति का प्रवर्तन है। ईश्वरचन्द्र गुप्त के जीवनकाल में उनका केवल एक रचना-संग्रह प्रकाशित हुआ –'प्रबोध-प्रभाकर' उनके निधन के उपरान्त उनके दो अन्य संग्रह प्रकाशित हुए-'हित-प्रभाकर' और 'बोधेन्दुविकास'।

5.5. सारांश

बंगला भाषा भारत की प्रमुख भाषाओँ में से एक है। इस भाषा का साहित्य अत्याधुनिक पुराना तथा उच्चकोटि का है। प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक बंगाल साहित्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाए हैं। राजाराम मोहन राय भारत के नवजागरण के क्षेत्र में पितामह माने जाते हैं। उन्होंने न केवल समाज सुधारक का कार्य किया बल्कि साहित्य को एक नई दिशा दी। इसी प्रकार माईकेल मधुसूदन दत्त ने आडम्बरपूर्ण समाज विषयों को बदलने के लिए विद्रोह किया। साहित्य में नवीन विषयों की समावेश कर उसे नयी गति दी।

विद्यासागर का नाम भारतीय इतिहास में एक प्रमुख समाज सुधारक के रूप में विख्यात है उन्होंने विधवा विवाह की शुरुआत की और कई तमाम विषयों पर रचनाएँ की तथा बंगला भाषा के व्याकरण की रचना की। इस इकाई के द्वारा आप उनके महत्वपूर्ण कार्यों का आकलन कर सकते हैं। इसके अलावा इस कोटि में बंकिमचन्द्र, द्विजेन्द्रलाल राय, द्विजेनद्रनाथ ठाकुर आदि ने बंगाल के नवनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

साहित्यिक दृष्टि से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का योगदान विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, परन्तु इतिहास एवं मार्ग-दर्शन की दृष्टि से बंगला के आधुनिक साहित्य के प्रथम कवि के रूप में भी माना जाता है।

5.6. बोध प्रश्न

1. बंगला भाषा का परिचय देते हुए बंगला साहित्य के पूर्व, उत्तर मध्यकालीन साहित्य के रूप में विस्तृत रूप में बताइए।

2. बंगला भाषा में विद्यासुन्दर काव्य के बारे में बताइए।

3. बंगला साहित्य में शैव-सिद्ध साहित्य के बारे में बताइए।

4. बंगला साहित्य में सन्धिकालीन का परिचय के बारे में लिखिए।

5. सामयिक पत्रों का आविर्भाव और प्रभाव के बारे में सोदाहरण रूप में लिखिए।

5.7. सहायक ग्रंथ

1. बंगाल साहित्य का इतिहास-अनुवादक- निर्मला जैन-साहित्य अकादमी, दिल्ली।

2. सृजनात्मक साहित्य और अनुवाद-संपादक- सुरेश सिहंल और पूरनचंद टंडन।

3. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास- डॉ. नगेन्द्र

4. भारतीय साहित्य- संकलनकर्ता –

डॉ. आर. आई. शान्ति

डॉ. प्रकाश ए.

डॉ. एम. मंजुला

6. 19वीं-20वीं शताब्दी का बंगला साहित्य का उद्भव-विकास

(बंगला गद्य और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर)

6.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम बंगला भाषा का परिचय और बंगला साहित्य के पूर्व, उत्तर- मध्यकालीन साहित्य के अंतर्गत वैष्णव साहित्य, कृष्ण विषयक कविताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इसके साथ-साथ बंगला भाषा में विद्यासुन्दर काव्य और बंगला साहित्य में शैव-सिद्ध साहित्य के साथ बंगला साहित्य के सन्धिकाल का परिचय और सामयिक पत्रों का आविर्भाव और प्रभावों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अब इस इकाई में 19वीं और 20वीं शताब्दियों में बंगला साहित्य का उद्भव और विकास कैसे हुआ और खासकर बंगला गद्य साहित्य में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का योगदान के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

6.1. प्रस्तावना

6.2. 19वीं शताब्दी में बंगला साहित्य का विकास

6.3. 19वीं शताब्दी का साहित्य

6.4. 20वीं शताब्दी का बंगला साहित्य का विकास

6.4.1. बाल साहित्य

6.4.2. वर्णनात्मक संस्मरणात्मक

6.4.3. धार्मिक साहित्य

6.4.4. अनुवाद

6.5. बंगला भाषा के गद्य साहित्य का उद्भव और विकास

6.5.1. बंगला गद्य का आदियुग फोर्ट विलियम कॉलेज की पाठ्य पुस्तक

6.5.2. सामयिक पत्रों का आविर्भाव

6.5.3. बंगला गद्य साहित्य का प्रतिष्ठा

6.6. बंगला गद्य और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

6.6.1. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का आगमन

6.7. सारांश

6.8. बोध प्रश्न

6.9. सहायक ग्रंथ

6.1. प्रस्तावना

बंगाली उपन्यास का युग 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शुरू हुआ। पहला रोमांटिक बंगाली उपन्यास बंकिम चंद्र चटर्जी की दुर्गेशानंदिनी (1865) है, जबकि सामाजिक यथार्थवाद का पहला बंगाली उपन्यास पीरी चंद मित्रा का अललर घर दुलाल (1858) है। हालांकि, सर्वसम्मति से उम्र के अग्रणी उपन्यासकार बंकिम चंद्र चटर्जी थे, जिन्होंने देश को अपना राष्ट्रीय गीत वंदे मातरम अपने राजनीतिक उपन्यास आनंद मठ से दिया, जो आज तक बंगाली साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है। इस शताब्दी में दिग्दर्शन (एक मासिक पत्रिका) और समाचार दर्पण (एक साप्ताहिक) के रूप में समय-समय पर प्रेस के आगमन को भी देखा गया, दोनों को सेराम्पोर मिशनरियों द्वारा प्रकाशित किया गया था। नाटक और साहित्यिक गद्य ने भारत में स्वतंत्रता-पूर्व युग के दौरान एक विशाल नवीकरण देखा, व्यावहारिक रूप से प्रत्येक बंगाली साहित्य राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहा था, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से। 19 वीं शताब्दी के महान नाटककार गिरीश चंद्र घोष (1844-1911), अमृतलाल बोस (1853-1929) और डी. एल. रे (1863-1913) थे, और महान गद्य लेखक देवेंद्रनाथ टैगोर और ईश्वर चंद्र विद्यासागर थे।

इस अवधि के दौरान (19 वीं सदी के अंत से 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में समयावधि का उल्लेख करते हुए), फोर्ट विलियम कॉलेज के बंगाली पंडितों ने अंग्रेजों को भारतीय भाषाओं में शिक्षित करने में मदद करने के लिए बंगाली में पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद का काम किया, जिसमें बंगाली शामिल थे। यह 'काम' वास्तव में बंगाली गद्य के विकास में पृष्ठभूमि में एक महत्वपूर्ण भूमिका का प्रतिनिधित्व करता था। संस्कृत से बंगाली में अनुवाद करना, धार्मिक विषयों पर निबंध लिखना और पत्रिकाएँ जारी करना राजा राम मोहन राय के कुछ ही डोमेन थे।

6.2. 19वीं शताब्दी में बंगला साहित्य का विकास

बंगला साहित्य का विकास पूर्व पीठिका असमिया, उड़िया और मैथिली भाषाओं की भाँति बंगला भाषा की उत्पत्ति एवं विकास पूर्व-प्राकृत एवं मगधी अपभ्रंश से हुआ। जैसे-जैसे इसका विकास होता गया, उसने अपने भीतर कई अनार्य भाषाओं के कई तत्वों को समाहित कर लिया, न केवल शब्दावली, अपितु कल्पना-चित्रों एवं विचारों में भी बहुत से अनार्य तत्व घुल-मिलकर एक हो गये। अन्तिम खोजों के अनुसार बंगला साहित्य का सर्वाधिक आरंभिक रूप 'चर्या' गीत में प्राप्त होता है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री प्रसिद्ध प्राच्य विद्याविद थे। उन्होंने नेपाल के सरकारी पुस्तकालय में इस विषय पर शोध-कार्य किया। उनके अनुसार **चर्या** गीतों का समय 1000-1200 ई. ठहरता है। कुछ विद्वान चर्या गीतों का समय पीछे 8वीं शताब्दी तक से जाते हैं। वास्तव में चर्चा गीत शुद्ध साहित्यिक न होकर 'महायान' बौद्ध धर्म की शाखा के आचार्यों के संकेतात्मक उपदेश हैं। इन गीतों और बंगाल के 19वीं शताब्दी के 'बाउल' नामक रहस्यवादी घुमक्कड़ों के गानों में बड़ी विचित्र समानता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मानव धर्म पर अपने 'हिब्बर' भाषणों में बाउलों और उनके गीतों का उल्लेख किया है।

सेन राजाओं के शासनकाल (सन् 1000-1200 ई.) में बंगाल, जो पूर्व में बौद्ध देश था, प्रमुख रूप से एक हिन्दू देश बन गया। प्राचीन महाकाव्य शून्य पुराण में यह उल्लेख है कि ब्राह्मणवादियों ने बौद्धों का उत्पीड़न किया और इस कारण बौद्ध उस समय के तुर्क विजेताओं की शरण में चले गये और उन्हें अपना मुक्तिदाता मानने लगे। इस आधार पर यह मान लेना उचित हो सकता है कि हिन्दुओं की तरह पुराने बौद्धों से भी मुस्लिम जनता का निर्माण हुआ होगा। पुरानी बंगला की लम्बी कविताओं में मुकुन्दराव चक्रवर्ती का 'चण्डी मंगल' प्रसिद्ध है। मुकुन्दराव 16वीं शताब्दी अथवा उसके आसपास के कवि थे। उन्होंने अपने काव्य के स्त्री-पुरुषों के लिए तत्कालीन रीति-रिवाजों

और घटनाओं के बारे में मार्मिक एवं स्पष्ट चित्र अंकित किये हैं। पृथ्वी पर चण्डी देवी की पूजा किस प्रकार प्रचलित हुई, यह इसमें वर्णित है। मानवीय सम्बन्धों का वैविध्यपूर्ण अंकन करने के कारण चण्डी मंगल को महाकाव्य की कोटि की रचना माना जाता है।

चण्डी मंगल के साथ वैष्णव गीतों का उल्लेख आवश्यक है जिनके रचयिता चण्डीदास, ज्ञान दास, गोविन्द दास, विद्यापति प्रभृति, उच्च कोटि के कवि थे।

इन्हीं के समकक्ष कृतिवास की रामायण और काशी रामदास के महाभारत का उल्लेख आवश्यक है। इन सबका रचनाकाल 16वीं शती है। 17वीं शताब्दी में दौलत काज़ी और शैयद अलाउला दो प्रतिभाशाली मुसलमान कवि हुए। इन्होंने अरकान के मूग राजा और उनके मुसलमान सदस्यों का आश्रय प्राप्त किया था। 18वीं शताब्दी में महाकवि भारतचन्द्र का रचनाकाल आता है। यह बड़े ही सुलझे हुए और चमत्कारी कवि थे। इनका रचनाकाल ह्रासोन्मुख युग रहा। इनके बाद रामप्रसाद आये। उनके धार्मिक गीता कालीमाता के प्रेम और उनकी भक्ति से सम्बन्धित थे। इनके गीत बंगाल में प्रायः सभी वर्गों के लोगों के मध्य प्रचलित हुए।

6.3. 19वीं शताब्दी का साहित्य

19वीं शताब्दी का आरम्भ ब्रिटिश राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा की स्थापना के साथ हुआ। यह एक संक्राति का युग था। इस शताब्दी के प्रतिमार्ध्द के प्रमुख कवि से ईश्वरचन्द्र गुप्त। उन्होंने अपने आसपास की चीजों का सूक्ष्म निरीक्षण किया तथा समकालीन घटनाओं के मूल रूपों का अध्ययन किया और अपनी चुटीली शैली में इनका वर्णन किया। यद्यपि इस वर्णों का साहित्यिक महत्व विशेष नहीं है तथापि इनके वर्णन अत्यन्त मार्मिक एवं प्रभावशाली है। अतः यह एक अत्यन्त लोकप्रिय कवि बन गये। आधुनिक युग के तीन नायक कवि माने जाते हैं- 'रक्षलाल', 'दीनबन्धु' और 'बंकिमचन्द्र'। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन तीनों रचनाकारों पर ईश्वरचन्द्र गुप्त का व्यापक प्रभाव है।

इस शताब्दी में हमको एक अति प्राचीन एवं समृद्ध लोकगीतों एवं लोक-गाथाओं की परम्परा मिलती है। संक्रांति के इस युग में इनका कलेवर बहुत कुछ बदल गया। 19वीं शताब्दी के पूर्व बंगला में उल्लेखनीय गद्य साहित्य नहीं मिलता। इसकी परम्परा का प्रवर्तन कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ होता है। मुख्य शिक्षक विलियम केरी और उनके मुख्य सहयोगी मृत्युंजय ने बंगला गद्य को सुव्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया। इन्होंने अंग्रेज अफसरों को हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान कराने के लिए पाठ्य-पुस्तकों एवं व्याकरण-ग्रन्थों की रचना की। जैसे बंगला के शक्तिशाली गद्य के प्रथम लेखक के रूप में राम मोहन राय हमारे सामने आते हैं। वह बड़े समाज-सुधारक थे। उन्होंने धर्म, नीति और सामाजिक आधार के सन्दर्भ में कई पुस्तकों की बंगाली गद्य में रचना की। उनमें प्रतिभा पुरुषार्थ एवं अन्वेषण शक्ति तीनों गुण थे और साथ ही वह भविष्यदृष्टा भी था। बहुत कम लोग उनके साथ कदम मिलाकर चल सके तथा अपने ही लोगों द्वारा उन्हें उपेक्षित होना पड़ा। जो भी हो, वह निर्विवाद है कि राजा राम मोहन राय के ही प्रयत्नों से बंगाल में नवजागरण का सूत्रपात सम्भव हुआ। आधुनिक संस्कृति के सबसे बड़े उद्गाता कवीन्द्र रवीन्द्र टैगोर राजा राममोहन राय के अत्यधिक ऋणी हैं।

हिन्दू कॉलेज कलकत्ता (स्थापित 1814 ई.) में तरुण विचारकों का एक दल तैयार हुआ जिन्हें 'तरुण बंगाल' कहा जाता था। राममोहन-वादियों के जीवन में जो समाज-सुधार उन दिनों आया था, वह इन तरुण

बंगालियों की दृष्टि से असन्तोषजनक और बहुत धीमा था। चाहते थे कि समाज में शीघ्र ही क्रान्ति हो और समस्त प्राप्य वस्तुओं के स्थान पर पश्चमी चीजें अपना ली जायें। दोनों ही दलों में अच्छे लोग थे और खुले दिल वाले, चरित्र के मजबूत और सच्चे देशभक्त थे। उनके अपने-अपने तरीके थे। बंगाली गद्य ने अल्प समय में 'तत्वबोधिनी शाला' के राममोहन-वादियों के हाथों और भी अधिक प्रगति की। परन्तु रूप तथा अर्थ की दृष्टि से आधुनिक बंगाली साहित्य तरुण बंगाल दल से आरम्भ हुआ। 'माइकेल मधुसूदन दत्त' अपने समय के अग्रगामी तरुण बंगालवादी थे। वे अंग्रेजी पद्य लिखकर प्रसिद्ध होने के इच्छुक थे। यह ईसाई बने और उन्होंने अनेक यूरोपीय भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया। आधुनिक बंगाली साहित्य के वह सबसे प्रथम महाकवि बने। हमारे देश को यूरोप से दूर करके जो खाई बन गयी थी, उसको पाटने वाले वह एक पुल बने। अब यूरोप हमारे लिए विदेश नहीं रह गया। उनकी प्रतिभा ने यूरोप को एकदम निकट कर दिया। बंगाल की जागती हुई आत्मा के लिए यह एक बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। कुछ दिनों के बाद एक अन्य तरुण बंगालवादी बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में 'राजा राममोहन लाइफ' नामक अंग्रेजी उपन्यास की रचना की। कुछ समय बाद यह बंगाल की ओर प्रवृत्त हो गये और उन्होंने एक के बाद एक उपन्यासों की रचना की। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में यह अपने समय के प्रमुख बंगाली साहित्यकार बन गये। आधुनिक बंगाली गद्य के वह पहले महान लेखक माने जाते हैं। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बन्धित कुछ उपन्यास भी उन्होंने लिखे, परन्तु उनमें बंकिमचन्द्र को आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई। अपनी उत्कृष्ट देशभक्ति के फलस्वरूप वह राष्ट्रीय जीवन में एक विधायक शक्ति के रूप में कार्य करते रहे। उनके जातीय पुनर्जागरण के विचारों से प्रेरित होकर हेमचन्द और नवीनचन्द्र उच्च शिखर तक पहुँचे। बंकिमचन्द्र से प्रेरित होकर सरकारी अधिकारी रमेशचन्द्र दत्त ने कई श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की। उसी युग में दो कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती और सुरेन्द्रनाथ मजूमदार आये और उन्होंने अपना योगदान किया। तरुण रवीन्द्रनाथ पर बिहारीलाल का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार हिन्दू जातिवाद के वातावरण में रवीन्द्रनाथ का विकास हुआ, परन्तु यह जातिवाद उन्हें बहुत कम प्रभावित कर सका। इसके दो कारण थे। एक- वह कालिदास, जयदेव तथा अन्य वैष्णव कवियों का भक्त था तथा अंग्रेजी कवियों ब्राउजिंग, शैली, वड्सवर्थ कीट्स की कृतियों के प्रेमी थे। दूसरा कारण यह था कि वह जिस परिवार में जन्मे और पले थे, वह बहुत ही स्वाभिमानी एवं गम्भीर था तथा जातिवाद एवं कट्टरता से मुक्त था। तरुण कवि के संस्कार कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती के प्रभाववश अधिक गम्भीर बन गये। रवीन्द्रनाथ टैगोर मुख्य रूप से प्रकृति के प्रेम के कारण विकसित हुए। उनमें बौद्धिक तीक्ष्णता और सहृदयता दोनों विद्यमान थीं। वह जब मात्र 26 वर्ष के थे, तभी 'कल के लिए कला' मतवाद के पूर्णरूपेण विकसित कवि बन गये थे। अपनी कला पर उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया था। प्रायः 8 वर्षों तक उन्होंने अच्छे भाव गीतों, नाटकों, कहानियों और निबन्धों की रचना की। इससे उनके मन में और भी गहरे पैठ के जीवन के सत्य के निकट अधिकाधिक निकट पहुँचने तथा अपने प्रति और भी अधिक प्रामाणिक होने की भावना जाग्रत हुई। फलतः प्रकृति के प्रति गहरे प्रेम के साथ ईश्वर के प्रति लग्न जुड़ गई। अब राष्ट्र-प्रेम और देश-भक्ति उनके लिए नये अर्थ देने लगे यानी इन्हें वह अधिक व्यापक परिवेश में देखने लगे। उनके लिए राष्ट्र-प्रेम एवं देश-प्रेम, विश्व-प्रेम के समानार्थी बन गये और वह विश्व मानव से प्रेम करने लगे। वह आत्म-विस्मृत हिन्दू के प्रति चिन्ता रखने के कारण लगभग एक जातिवादी हिन्दू बन गये। अन्तर इतना था कि बंकिमचन्द्र और उनकी शाखा के लेखक जहाँ हिन्दुओं में प्रचलित व्यवहार और रूढ़ियों को महत्व देते थे, वहाँ रवीन्द्रनाथ ने उपनिषद् और बुद्ध के जीवन-दर्शन से प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि उनके देशवासी पूर्ववत् उच्च

आदर्श ग्रहण करें। यूरोपीय भोग-वादिता और शक्ति के प्रति आकर्षण उन पर हावी न हो। सन् 1900 में रवीन्द्रनाथ 40 वर्ष के थे। इस समय तक वह प्रत्येक दृष्टि से महाकवि की ऊँचाइयों तक पहुँच गये थे और उनकी साधना यह थी कि क्रमशः ऊँचे उठते जायें।

6.4. 20वीं शताब्दी का बंगला साहित्य का विकास

20वीं शताब्दी के बंगला साहित्य के उदीयमान कवि रवीन्द्रनाथ हैं और उनकी प्रथम रचना का नाम 'नैवेद्य' है। दूसरे शब्दों में बंगला साहित्य में बीसवीं सदी का उदय रवीन्द्रनाथ के नैवेद्य से हुआ। नैवेद्य100 कविताओं का संग्रह है। इनमें सर्वाधिक संख्या सुगठित एवं चुस्त सॉनेट (एक अंग्रेजी छन्द) की है। एक आलोचक के शब्दों में, 'परमात्म तत्व की जाग्रत चेतना, प्रतिदिन के जीवन-व्यवहार की पवित्रता और अभागी मातृभूमि के प्रति कर्तव्य को प्रेरणा इन कविताओं में प्राप्त होती है।' कवि के अनुसार हमारी मातृभूमि दो प्रकार की दासताओं में जकड़ी हुई थी- एक ओर तो अहंकारी विदेशी विजेता था और दूसरी और उसी के पुत्रों का अविवेक एवं प्रमाद। नैवेद्य सचमुच एक वैचारिक पुस्तक है। देश और मानव जाति को रवीन्द्रनाथ की जो देन है, उसमें इस पुस्तक का प्रमुख स्थान है। इसी पुस्तक में कवि ने उस आने वाले संकट को इंगित किया है जो अति-राष्ट्रवादी पश्चिमी जगत के सामने था।

सन् 1905 में 'लॉर्ड कर्जन' ने बंग-भंग किया। बंगाल ही क्यों पूरा देश इसको स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इसका प्रबल विरोध चारों और से हुआ। इस प्रबल विरोध का आध्यात्मिक पक्ष अपनी पूरी दिव्यता के साथ रवीन्द्रनाथ में प्रतिबिम्बित हुआ। उनके गीतों एवं भाषणों ने बंगाल की जनता को अभूतपूर्व रूप से उत्प्रेरित किया। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में उन्होंने आत्म-निर्भरता पर बल दिया और फिर भी अंग्रेजों के प्रति घृणा का एक भी शब्द व्यक्त नहीं किया। आज भी उन गीतों और भाषणों का रस कम नहीं हुआ है। कारण यह है कि उन गीतों में केवल देश-भक्ति की अभिव्यक्ति नहीं हुई है, बल्कि देश-भक्ति परमात्म तत्व से ऊर्जस्वित है। दूसरे शब्दों में, उन गीतों में देश-भक्ति की भावना के साथ सत्य के प्रति निष्ठा तथा मानव मात्र के प्रति उत्तरदायित्व को परम भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी रचनाओं में आश्चर्यजनक संवेदनशीलता, सत्यानुभूति और श्री जीवनानन्द की प्रेरणा का निरन्तर विकास हुआ है। बंग-भंग आन्दोलन की सफलता के बाद 'बहिष्कार' और स्वदेशी आन्दोलन देशव्यापी बने, परन्तु बंग-भंग के समान वे रवीन्द्रनाथ को प्रभावित नहीं कर सके। मुख्य कारण यह था कि वह आन्दोलन कहीं-कहीं आतंकवाद से जुड़ गया था और यह रवीन्द्रनाथ के भावुक हृदय को सहन नहीं था। रवीन्द्रनाथ की मान्यता थी कि सब प्रकार की अहंग्रन्थि और आत्म-समर्थन की भावना कितनी ही पवित्र क्यों न हो, अन्ततः वह मानवीय चरित्र को नष्ट कर देती है। इस प्रकार उनका राष्ट्रवाद वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रवाद का पर्यायवाची बन गया। आरम्भ में अनेक लोगों ने उनके राष्ट्रवाद को ठीक तरह नहीं समझा, परन्तु बाद में घटित होने वाली घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि रवीन्द्रनाथ का चिन्तन सर्वथा सही था। वह वास्तव में एक सच्चे व्यक्ति थे। रवीन्द्रनाथ के अनेक प्रशंसक और अनुयायी थे। अनेक कवियों ने तो उनके शैली-शिल्प की नकल करने की भी कोशिश की थी। उनके समकालीन कवियों में स्मरणीय नाम इस प्रकार है— देवेन्द्रनाथ सेन, अक्षय कुमार बडाल और द्विजेन्द्रलाल राय। उनके शिष्यों में सर्वप्रमुख थे- सत्येन्द्रनाथ दत्त। इस कालावधि में कई अन्य प्रसिद्ध कवि हुए, जैसे करुणानिधान बैनर्जी, जितीन्द्रनाथ सेन गुप्त और मोहित साल मजूमदार। सत्येन्द्रनाथ दत्त की सहानुभूति बहुत

व्यापक थी और उन्होंने बंगाली भाषा का प्रयोग बहुत निपुणता के साथ किया। करुणानिधान ने प्रकृति प्रेम और विगत वैभव सम्बन्धी अच्छे वर्णन लिखे। जितेन्द्रनाथ और मोहितलाल अपने बौद्धिक निराशावाद के लिए विख्यात थे। उसी युग में कुमुदरंजन मल्लिक और कालिदास राय व्यापक रूप से लोकप्रिय हुए। कथा-साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ के साहित्यिक अनुयायियों में प्रभात कुमार मुखर्जी प्रमुख थे। वे अपनी हास्यपूर्ण कहानियों के कारण प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय थे।

सर्वाधिक लोकप्रिय हुए शरतचन्द्र चटर्जी ने यद्यपि 19वीं शताब्दी के अन्त में लिखना आरम्भ कर दिया था, तथा उन्हें लोकप्रियता तब प्राप्त हुई जब उन्होंने रवीन्द्रनाथ के मानवतावाद और उनकी कला से प्रभावित होकर सन् 1913 के आम-राम लिखना शुरू किया। उनको असाधारण प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

शरतचन्द्र ने पुरानी परिपाटी से हटकर यथार्थवादी लेखन आरम्भ किया था और इसी कारण वह आधुनिक विचार वाले पाठकों के मध्य विशेष लोकप्रिय बन गये। आरम्भ में उनकी बहुत आलोचना हुई, परन्तु धीरे-धीरे आलोचक शान्त हो गये। शरतचन्द्र के समान व्यापक एवं सच्ची लोकप्रियता किसी भी अन्य आधुनिक बंगाली लेखक को प्राप्त नहीं हुई। कुछ लोगों की राय में बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ को भी नहीं। शरतचन्द्र यथार्थवादी होने के साथ आदर्शवादी भी हैं। उनके भीतर यह प्रबल आस्था है कि मनुष्य स्वभावतः सुन्दर और महान है। उसके दोष बाहर जमी हुई धूल और मिट्टी के समान हैं। किसी भी क्षण यह मिट्टी या धूल हट जाने पर मनुष्य की निजी महत्ता प्रकट हो सकती है। उनकी इस दिव्य आस्था के कारण ही शरत की कला में इतना निखार आना सम्भव हो सका था।

शरतचन्द्र के आगमन के कुछ वर्षों बाद बंगाली पाठकों को डॉ. नरेशचन्द्र सेन गुप्त नामक एक अन्य यथार्थवादी लेखक कानून विशारद के रूप में प्राप्त हुए। वह एक श्रेष्ठ उपन्यासकार थे। विचित्र प्रकार की जानकारी देकर उन्होंने जनता का ध्यान आकर्षित किया। बंगाल के मुसलमान लेखक भी इस हवा से प्रभावित हुए ये स्वदेशी आन्दोलन से विशेष रूप से प्रभावित हुए। बंगाल के मुसलमानों में जन्मे सुयोग्य साहित्यिकों में प्रमुख नाम के हैं— 'बेगम सकैया' (जिन्हें साधारणतया मिसेज आर. एस. हुसैन के नाम से जाना जाता है।), 'काज़ी इच्दादुल हक़ और बुल्फर रहमान'। ये लेखक 20वीं शताब्दी के आरम्भ में हुए। इन्होंने अपेक्षाकृत कम परिमाण में लिखा, परन्तु अच्छा लिखा, क्योंकि ये सच्चे मानववादी थे और इनकी शैली प्रभावशाली थी। उक्त लेखकों के कुछ ही वर्षों बाद ढाका विश्वविद्यालय के परिमण्डल में 'मुस्लिम साहित्य समाज' नामक एक साहित्यिक संगठन का निर्माण हुआ। उनका मूलमंत्र था बुद्धि की मुक्ति। तुर्की के कमाल पाशा अतातुर्क के सुधारों से उन्होंने स्फूर्ति ग्रहण की। ढाका के मुस्लिम समाज से उक्त संगठन को अच्छा समर्थन प्राप्त हुआ। वहाँ के शिक्षित समाज में कुछ वर्षों तक अच्छा समर्थन मिला, परन्तु कुछ ही समय के बाद इस जाति /सम्प्रदाय के रूढ़िवादी वर्ग ने इसका प्रबल विरोध आरम्भ कर दिया। यह विरोध इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि ढाका विश्वविद्यालय ने तीसरे अधिवेशन के बाद इस संगठन को आयोजित करने की आज्ञा नहीं दी। वस्तुतः यह उस तनातनी का आरम्भ था जिसके फलस्वरूप देश का बँटवारा हुआ। ढाका, अब पूर्वी पाकिस्तान (बंगला देश) को राजधानी है।

जिन दिनों उपर्युक्त मुस्लिम संगठन जागरूक था, उन्हीं दिनों अपने आपको अति-आधुनिक कहने वाले तरुण प्रभावशाली लेखकों का एक दल उभरकर आया, इस दल के प्रमुख लेखक थे-'गोकुलनाथ', 'प्रेमेन्द्र मिश्र',

'जीवनानन्द दास', 'बुद्धिदेव बसु' और 'अचिंत्य सेन गुप्त'। प्रेमेन्द्र मिश्र ने अपने दल का घोषणा-पत्र इस प्रकार लिख-

आमि कवि कामारेर

आर कासारीर आर छुतारे

मूठे मजूरेर

आमि काजि जन इवरेर।

अर्थात मैं लुहरों, पीतल का काम करने वालों, बढ़इयों और रोजनदारी मजदूरों का कवि हूँ। मैं दलितों का कवि हूँ। बुद्धदेव बसु और अचिंत्य सेन गुप्त प्रसिद्ध फ्रायडवादी थे। वे अपनी बात को बहुत जोरदारी से कहते थे और इस बात पर जोर देते थे कि हमारा अपना एक अलग रास्ता है। इन लेखकों से रवीन्द्रनाथ का कुछ वाद-विवाद भी हुआ था, परन्तु वह शीघ्र ही शान्त हो गया। रवीन्द्रनाथ ने अपनी नई कहानियों एवं नये उपन्यासों में इन तरुण लेखकों के प्रभाव को कुछ अंशों में स्वीकार किया। रवीन्द्रनाथ की कलात्मक निपुणता द्वारा ये अति-आधुनिक लेखक भी प्रभावित हुए।

इसके बाद सुधीन्द्रनाथ दत्त, विष्णु दे और अमिय चक्रवर्ती आदि लेखकों का दल आया। इस दल के लेखक रवीन्द्रनाथ तथा अन्य बंगाली लेखकों की अपेक्षा अंग्रेज तथा यूरोप के लेखकों द्वारा अधिक प्रभावित थे। इन लेखकों के अनुयायियों की संख्या पर्याप्त थी। इनके लेखन में आज की दुनिया की हालत के लिए इतना प्रमुख विस्तार, अहंकार और कड़ुवाहट है कि यह यूरोपीय कविता के समान लगती है। इनकी रचनाएँ रवीन्द्रनाथ से एकदम हटकर हैं। इन तरुण कवियों में नरेश गुह, दिनेश दास और गोविन्द चक्रवर्ती उल्लेखनीय हैं।

शरतचन्द्र के पश्चात् विभूति भूषण बनर्जी ने अपनी कहानियों एवं अपने उपन्यासों को समृद्ध बनाया। विशेष कर आरण्यक और पाथेर पांचाली द्वारा (इसके नाम से बनी फिल्म अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है)। विभूति भूषण प्रकृति के बहुत प्रेमी और ग्राम्य जीवन के चाहने वाले थे। विभूति भूषण की आधुनिकता एवं महानता का भेद यह है कि उनकी रचनाओं में प्रकृति के साथ मनुष्य के दैनिक सम्बन्ध की समझ और उसकी अभिव्यंजना के मामले में उनमें गहरी सहृदयता मिलती है।

शरतचन्द्रोत्तर उपन्यासकारों और कहानीकारों के तीन वर्ग मिलते हैं यथा-

(क) वे लोग जिन्होंने रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र की परम्परा का न्यूनाधिक अनुसरण किया।

(ख) वे लोग जो कविता में अति-आधुनिक और अपनी कहानियों में भी उस प्रवृत्ति से भिन्न नहीं।

(ग) वे लोग जो वामपंथी हैं।

प्रथम (क) वर्ग के कथाकारों (उपन्यासकारों) में मुख्य हैं- शैलजानन्द मुखर्जी, प्रेमेन्द्र मित्र, मेहबुबल आलम (चटगाँव के) वनफूल, अन्नदाशंकर राय, ताराशंकर वन्दयोपाध्याय, सरोज राय चौधुरी, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, सुबोध घोष, नारायण गंगोपाध्याय, सतीनाथ भादुड़ी, सुरेन्द्र मित्र और आशापूर्णा देवी।

द्वितीय (ख) वर्ग के लेखकों को रोमांटिक लेखक भी कहा जाता है। इनमें प्रमुख हैं- प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव बसु, अचिंत्यसेन गुप्त, मौनीन्द्र पाल बसु, मनोज बसु और प्रमोद कुमार सान्याल। इनमें प्रेमेन्द्र मित्र विशेषतः कहानियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र के बाद कहानी क्षेत्र में ये हो प्रायः सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। अशीम राय एक तरुण रोमांटिक लेखक हैं।

तृतीय (ग) वर्ग के लेखकों में यानी वामपंथियों में माणिक वन्द्योपाध्याय प्रसिद्ध नेता है। वह अपने उपन्यास पुतुल नामेर इति कला (कठपुतली के नाथ की कहानी) के कारण प्रसिद्ध हुए। अन्य वामपंथी लेखक है- अमरेन्द्र घोष, समदेश बसु, गुलाम कुद्दूस, गोपाल हालदार। कुछ वामपंथी कवि भी सामने आये है- यथा-सुकांत भट्टाचार्य, सुभाष मुखोपाद्याय, मणीन्द्र राय तथा पूर्णेन्दु यत्री।

बंगला के आधुनिक साहित्य को महत्वपूर्ण देन, देने वाली महिला लेखिकाओं में उल्लेखनीय नाम है- 'स्वर्ण कुमारी देवी', 'गिरीन्द्र मोहिनी दासी', 'मानकुमारी देवी', 'कामिनी राय', 'प्रियम्बदा देवी', 'बेगम सकैया', 'निरुपमा देवी', 'प्रतिभा बसु', 'बेगम सूफिया कमाल', 'अनुरूपा देवी', 'सीता देवी', 'शान्ता देवी', 'लीला मजूमदार', 'मैत्रेयी देवी', 'प्रभावती देवी और वाणी राय।

6.4.1. बाल साहित्य

बालोपयोगी साहित्य में रामायण, महाभारत और लोक साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन ग्रन्थों में बहुत काम की बातें थीं, परन्तु हमारे आधुनिक लेखकों ने इस विधा को विशिष्टता प्रदान की है। रवीन्द्रनाथ का योगदान विशेष महत्वपूर्ण है। उनके शिशु-गीत विश्व में विख्यात है। इनके बाद अवनीन्द्र नाथ ठाकुर का नाम लिया जा सकता है। इनके अलावा बालोपयोगी गीत एवं कहानियाँ लिखने वालों में ये नाम उल्लेखनीय हैं— 'दक्षिणरंजन मित्र मजूमदार', 'उपेन्द्र किशोर', 'राय चौधरी', 'योगीन्द्र नाथ बसु', 'सुकुमार राय', 'सुखलता राय' और 'सुनिर्मल बसु'।

नाटक का आरम्भ वीरबन्धु मित्र के नील दर्पण नाटक(रचनाकाल 1800 ई.) से हुआ, परन्तु अतिनाटकीयता ने उसके विकास- पथ को अवरुद्ध कर दिया। गिरीशचन्द्र घोष और द्विजेन्द्रलाल राय- ये दो प्रसिद्ध नाटककार हैं, परन्तु इनके नाटकों में भी अतिनाटकीयता का दोष है। रवीन्द्रनाथ अपने ढंग के नाटककार हैं। उनके नाटक इनसे अलग हैं और अधिक सफल हैं। इनके नाटक साहित्यिक दृष्टि से सफल हैं, परन्तु वे जनता के मध्य लोकप्रिय नहीं हो सके।

निबन्ध के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। इस क्षेत्र में कई श्रेष्ठ निबन्धकारों के नाम लिये जा सकते हैं, यथा— रवीन्द्रनाथ तो सर्वोपरि हैं ही, अन्य नाम हैं—'अमल चौधरी', 'भूदेव मुखोपाध्याय', 'विपिनचन्द पाल', 'रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी', 'शशांकमोहन सेन', 'मोहितलाल मजूमदार', 'अतुलचन्द गुप्त', 'गोपाल हालदार', 'धूर्जरी प्रसाद मुखोपाध्याय', 'अन्नदाशंकर राय', 'हुमायूँ कविर', 'श्रीकुमार बनर्जी', 'प्रेमनाथ विशी', 'अबु सैयद अयूब', 'बुद्धदेव बसु', 'काजी मोहत्तर हुसैन', 'संजय भट्टाचार्य' और 'शिवनारायण रे'।

जीवनियों का क्षेत्र दुर्बल ही कहा जायेगा। कुछ जीवनियाँ अवश्य उच्च स्तर की हैं।

6.4.2. वर्णनात्मक संस्मरणात्मक

ललित-साहित्य में दो लेखक बहुत लोकप्रिय हैं- यायावर और सैयद मुक्तवा अली।

हास्य के क्षेत्र में परशुराम का नाम प्रसिद्ध है। उनकी कोटि विशिष्ट है।

बंगला साहित्य का इतिहास — इस क्षेत्र में यानी इतिहासकार के रूप में तीन नाम उल्लेखनीय हैं- डॉ. दिनेशचन्द्र सेन, डॉ. सुकुमार सेन और सजनीकांत दास।

भाषा वैज्ञानिक के रूप में दो नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं - सुनीति कुमार चाटुर्ज्या और डॉ. मुहम्मद शहीदुल्ला।

डॉ. क्षितिज मोहन सेन और प्रो. रजाउल करीम **हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी लेखकों** के रूप में प्रसिद्ध हैं।

6.4.3. धार्मिक साहित्य

आधुनिक काल में बंगला में धार्मिक साहित्य की रचना हुई है। इस क्षेत्र में उल्लेखनीय नाम हैं- महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन, श्रीरामकृष्ण, गिरीशचन्द्र सेन, अश्विनी कुमार दत्त और रवीन्द्रनाथ।

6.4.4. अनुवाद

नाटक की भाँति बंगला साहित्य में अनुवाद का क्षेत्र अपेक्षाकृत दुर्बल है। प्राचीन बंगला साहित्य में बहुत कम अनुवाद मिलते हैं। आधुनिक काल में कुछ तरुण लेखकों ने इस दिशा में अच्छा प्रयत्न किया है। बंगला दर्शन, इतिहास आदि विषयों पर भी उत्तम ग्रन्थ लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। हमारे प्राचीन विश्वकोशों के रूप में एक उत्तम विश्व-कोश बंगला भाषा में है तथा नये विश्व-कोश भी लिखे जा रहे हैं।

पूर्व पाकिस्तान की भी भाषा बंगला है। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है- तरुण लेखकों का विकास, जो सच्चे देशभक्त और बुद्धिजीवी हैं। वे मूलतः बहावी चिन्ताधारा से बहुत भिन्न हैं। वे बंगाली साहित्य की प्रगति के प्रति अति-गम्भीर हैं।

सारांश रूप में यह कह सकते हैं कि कविता एवं कथा-साहित्य की दृष्टि से बंगला साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। नाटक का क्षेत्र अपेक्षाकृत दुर्बल है। रवीन्द्रनाथ ने गद्य के क्षेत्र को उत्कृष्टता प्रदान की है। उनके अनेक अनुयायियों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। बंगला साहित्य के क्षेत्र में भविष्य में अनेक सम्भावनाएँ हैं। इसका भविष्य सर्वथा उज्जवल है।

6.5. बंगला भाषा के गद्य साहित्य का उद्भव और विकास

16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की युग-सन्धि में बंगला में गद्य-रचना का सूत्र माना जाता है, परन्तु अनेक गाथाएँ और कहानियाँ एवं पांचालियाँ काफी पहले से चली आयी थीं। शिवोपासक योगी सम्प्रदाय के चार सिद्धों- मत्स्येन्द्र नाथ अथवा मीननाथ, गोरक्षनाथ, हाड़िया और कानुयाल के महात्म्य को प्रकट करने वाली अलौकिक कहानियाँ अथवा गद्य बंगला में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित रही थीं। इन कहानियों को दो भागों में किया जा सकता है- (1) मीननाथ- गोरखनाथ की कहानी एवं (2) गोविन्द चन्द्र की कहानी। इन दोनों कहानियों को सारांश रूप में प्रस्तुत करने के उपरान्त **डॉ. सुकुमार सेन** ने लिखा है कि 'इस कहानी के मूल में सम्भवतः कुछ ऐतिहासिक घटना थी,

किन्तु अब तो गल्प में से ऐतिहासिक अंश को निकाल लेना असाध्य हो गया है।' बंगलादेश को मिनी कथावस्तु गोविन्द चन्द्र के संन्यास की करुण कहानी बंगला की सीमा छोड़कर बहुत दूर चली गयी है। सुदूर पंजाब, सिन्धु, महाराष्ट्र, राजपूताना, प्रभृति प्रदेशों में इसी गाथा को गाकर आज भी योगी-संन्यासी भिक्षा माँगते घूमते हैं। किन्तु बंगाल में, उत्तर बंग को छोड़कर अन्य प्रदेशों में गोविन्द चन्द्र की कहानी लुप्त हो गयी है। प्राप्त गाथाओं में जो सबसे प्राचीन है, यह पश्चिम बंग के दुर्लभ मल्लिक की रचना है। सहदेव चक्रवर्ती के अनिल पुराण में मीगनाथ और गोरक्षनाथ की कहानीकार कवींद्र और शेख फैजुल्ला रचित 'गौरक्ष विजय' उत्तर-पूर्व बंग में मिली है। भवानीदास और सुकुर मुहम्मद को पांचाली उत्तर बंग में उपलब्ध हुई है। इन दोनों का रचनाकाल 19वीं शताब्दी का आरम्भ होना चाहिए।

सन् 1757 ई. में प्लासी युद्ध के पश्चात् कुछ ही समय में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पूरे देश की राज शक्ति को हस्तगत कर लिया और इसी साथ भारत में सामान्य रूप से तथा बंगाल में विशेष रूप से नवीन युग की सम्भावना जाग्रत हुई। इस समय कुछ पहले से बंगाल में गद्य-रचना आरम्भ हो गयी थी। इस दिशा में ईसाई मिशनरियों के अलावा स्थानीय पंडित लोग भी साहित्य और गद्य में रचनाएँ कर रहे थे। आरम्भिक शिक्षार्थियों के लिए 19वीं शताब्दी में स्मृति और न्यायशास्त्र के बंगला में अनुवाद का कार्य आरम्भ हो गया था। वैद्यों ने चिकित्सा सम्बन्धी कुछ पुस्तकें बंगला में लिखी थीं। परन्तु शासन के सहयोग के अभाव में- यानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अभ्युदय के पहले -यह कार्य बहुत ही सीमित रूप में हो सका। कानून, अदालत का काम भी सामान्य रूप से बंगला में होने लगा। प्रशासन की आवश्यकता की दृष्टि से यह भी आवश्यक था कि बंगाली को अंग्रेजी तथा अंग्रेजों को बंगला सिखायी जाये। इसे आवश्यकता को पूरा करने के लिए कोश एवं व्याकरण-ग्रन्थों की रचना की जाने लगी।

केवल हाथ से लिखकर यह कार्य करना कठिन था। अतः आवश्यकता आविष्कार की जननी है, के अनुसार मुद्रण यन्त्र एवं बंगला टाइप का आविष्कार हुआ। बंगला टाइप का प्रथम व्यवहार हालहैड साहब द्वारा रचित बंगला व्याकरण में हुआ। पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गयी थी और 1778 ई. में हुगली से प्रकाशित हुई। यह कहा जा सकता है कि मुद्रण यन्त्र के लिए बंगला अक्षरों की सृष्टि होने से ही बंगला साहित्य में नूतन युग का आविर्भाव हुआ। मुद्रण यंत्र की सहायता से पुस्तक प्रकाशन अनायास ही साध्य व्यापार हो गया। उसी समय में साहित्य संकीर्ण मर्यादाओं से बाहर आकर सबके लिए सब समय के लिए उपयोग की सामग्री बन गया। बंगला गद्य की प्रतिष्ठा हो जाने के उपरान्त 19वीं शताब्दी के प्रथम भाग में पहले के ही अनुसार वैष्णव पद, रामायण, महाभारत, मनसा मंगल इत्यादि धर्म काव्य काफी संख्या में लिखे गये। श्रीमद् भागवत एवं अन्यान्य पुराणों के अनेक अनुवाद भी हुए। विक्रमादित्य का उपाख्यान एवं विद्यासुन्दर के अनुकरण पर रचित प्रणय-कहानी वाले ग्रन्थ शहरों में जनप्रिय थे। यद्यपि उनका साहित्यिक मूल्य नहीं के बराबर है तथापि वे लोकप्रिय रहे। उत्तर एवं पूर्व बंगाल में ऐतिहासिक एवं अनैतिहासिक कहानियों के आधार पर रचित ग्राम गीत 20वीं शताब्दी में भी प्रचलित रहे। इस प्रकार 18वीं शताब्दी के अन्त तक बंगला गद्य के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण हो गया।

6.5.1. बंगला गद्य का आदियुग फोर्ट विलियम कॉलेज की पाठ्य पुस्तक

18वीं शताब्दी के अन्त में बंगला में दो-तीन कानून की पुस्तकें लिखी गयी। वे अरबी-फ़ारसी के शब्दों से पूर्ण थीं और इसी के साथ विलायत से आने वाले कर्मचारियों को बंगला सिखाने की आवश्यकता की पूर्ति हेतु पाठ्य-पुस्तकें तैयार की जाने लगीं। इन साहबों का प्रयोजन बोलचाल की व्यवहारोपयोगी भाषा सीखना था। इस कार्य में केरी

नामक अंग्रेज विद्वान विशेष प्रयत्न किया और फोर्ट विलियम कॉलेज का विशेष योगदान रहा। जिस वर्ष कॉलेज की स्थापना हुई, उसी वर्ष फेरी साहब का व्याकरण और कथोपकथन, रामराम वसु का प्रतापादित्य चरित्र एवं गोलोक शर्मा का हितोपदेश प्रकाशित हुआ। रामराम वसु रचित राजा प्रतापादित्य चरित्र ही बंगला अक्षरों में मुद्रित प्रथम मौलिक बंगला गद्य की पुस्तक है। इसके पहले प्रकाशित गद्य ग्रन्थ या तो अंग्रेजी से अनुवादित थे अथवा रोमन लिपि में थे। रामराम वसु का दूसरा गद्य ग्रन्थ 'लिपिमाला' अगले वर्ष 1801 ई. में प्रकाशित हुआ। 1905 ई. में चण्डीचरण मुंशी का 'तोता इतिहास',, 'राजीवलोचन मुखोपाध्याय' का 'महाराज कृष्णचन्द्र रामस्य चरित्रम' और 'मृत्युंजय विद्यालंकार' का 'त्रिशसिंहासन' प्रकाशित हुआ।

फोर्ड विलियम कॉलेज के शिक्षकों में श्रेष्ठ गद्य लेखक मृत्युंजय विद्यालंकार थे। यह संस्कृत में विशेष निपुण थे। वह एक प्रकार से केरी साहब के दाहिना हाथ थे। मृत्युंजय ने बंगला में कई गद्य-ग्रन्थों की रचना को जिनमें 'राजा बलि' और 'प्रबोध चन्द्रिका' श्रेष्ठ हैं। इनकी पुस्तक ''राजा बलि' देशी लोगों का लिखा प्रथम भारतवर्ष का इतिहास है। केरी मार्शमैक एवं अन्यान्य यूरोपीय शिक्षा प्रचारकगण स्वयं लिखकर अथवा पंडितों द्वारा लिखाकर प्रचुर परिमाण में बंगला पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करने लगे। इस कार्य में कई प्रतिष्ठित स्थानीय लोगों ने भी भरपूर सहयोग प्रदान किया। इनमें प्रमुख एवं अग्रगण्य थे राजा राममोहन राय, देव और राजा कालीकृष्ण देव बहादुर। राजा राममोहन राय ने पंडितों के साथ वितर्क में जुटवर वेदान्त दर्शन एवं शास्त्र विचार विषय पर कई उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने एक बंगला व्याकरण भी लिखा। राधाकान्त ने नाना प्रकार से बंगला में शिक्षा, बंगला भाषा के विस्तार और बंगला साहित्य की पोषकता के विषय में असामान्य सहायता की। विराट संस्कृत कोष 'शब्द-कल्पद्रुम' महाराज की अक्षय कीर्ति के रूप में बहुत समय तक विराजता रहेगा।

इस युग में रचित अधिकांश ग्रन्थ संस्कृत, फ़ारसी या अंग्रेजी अनुवाद है। मौलिक गद्य ग्रन्थ बहुत थोड़े हैं- केवल मृत्युंजय के गद्य मौलिक रचनाएँ हैं और उन्हीं का गद्य किसी सीमा तक ठिकाने का है। अन्यथा इस समय का बंगला का रूप अपरिमार्जित है। इन ग्रन्थों में बंगला गद्य-शैली के शैशव रूप के दर्शन होते हैं।

6.5.2. सामयिक पत्रों का आविर्भाव

फोर्ट विलियम कॉलेज के विद्वानों ने पाठ्य-पुस्तकों की रचना करके बंगला गद्य का प्रवर्तन अवश्य किया और गद्य को अध्ययन का माध्यम भी बना दिया, परन्तु भाषा की उन्नति अथवा परिपुष्टि का मार्ग में प्रशस्त नहीं कर सके। वे इस सामग्री को जनता की वस्तु नहीं बना सके। यह कार्य पत्र-पत्रिकाओं द्वारा सम्पन्न किया गया। थोड़े से निर्दिष्ट व्यक्तियों के लिए लिखे हुए होने के कारण इन गद्य-ग्रन्थों का समाचार जनता तक नहीं पहुँच सका पर क्रिस्टियन पादरियों द्वारा एक ऐसी नूतन वस्तु का प्रवर्तन हुआ कि जिससे पढ़ने की क्षमता रखने वाले साधारण नूतन गद्य साहित्य से अधिक समय तक उदासीन अथवा वीतराग नहीं रह सके। मिस्टर केरी के उद्योग से श्रीरामपुर के मिशनरी सम्प्रदाय ने 1818 ई. में बंगला सामयिक पत्र का प्रवर्तन किया। अप्रैल के महीने में 'दिग्दर्शन' नामक मासिक-पत्र प्रकाशित हुआ किन्तु यह कुछ ही समय बाद बन्द हो गया। इसके बाद मई मास में प्रथम बंगला समाचार-पत्र 'समाचार दर्पण' प्रकाशित हुआ। इसी के आसपास गंगा किशोर भट्टाचार्य ने 'बंगला गजट' प्रकाशित किया। इसी को प्रथम सामयिक पत्र माना जाना चाहिए। दृष्टव्य है कि यह स्थानीय बंगालियों के उद्योग से प्रकाशित हुआ था।

इस प्रकार सामयिक पत्रों के माध्यम से बंगालियों ने बंगला गद्य का रसास्वादन किया। नई-नई खबरें और प्राचीन काव्य की गल्पें जनता को इन सामयिक पत्रों के माध्यम से मिलने लगी। निदान इन पत्रों की माँग अप्रत्याशित रूप से बढ़ गयी। इस प्रकार इन पत्रों ने बंगला गद्य को उन्नति का द्वार खोल दिया। जिन अनेक सामयिक और संवाद पत्रों को सृष्टि हुई, उनमें 'समाचार चन्द्रिका' प्रमुखतम है। उसका प्रथम अंक 5 मार्च, 1822 ई. को प्रकाशित हुआ। समाचार चन्द्रिका के सम्पादक थे भवानीचरण वन्द्योपाध्याय। वह अपने समय के एक मान्य लेखक थे। उधर राजा राममोहन राय आदि ने भी इस क्षेत्र में कदम रखा था। भवानीचरण वन्द्योपाद्याय की शैली व्यग्यात्मक एवं हास्यपूर्ण थी। इस शैली में उन्होंने गद्य की कुछ पुस्तकें लिखीं। बंगला साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं में भवानीचरण विरचित 'नव बाबू विलास' एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है। भवानीचरण से प्रभावित होकर जिन लोगों ने व्यंगपूर्ण गद्य रचनाएँ लिखी, उनमें मुख्य नाम हैं- हेकचाँद ठाकुर, दीनबन्धु मिश्र आदि परवर्ती लेखक।

उसी युग में ईश्वरचन्द्र गुप्त सर्वश्रेष्ठ सामयिक पत्र सेवी साहित्यकार के रूप में उभरकर आये। सन् 1831 में इन्होंने 'संवाद प्रभाकर' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। सन् 1859 ई. के आसपास इनका परलोकवास हुआ। 'संवाद प्रभाकर' तब तक चलता रहा। संवाद प्रभाकर के माध्यम से आपने अनेक नवयुवक लेखकों को प्रोत्साहित किया। परवर्ती काल के अनेक कवियों और ग्रंथकारों ने 'संवाद प्रभाकर' के पृष्ठों से ही साहित्य-सृष्टि के कार्य की शिक्षा प्राप्त की थी। इस प्रकार बंगला के पत्रकार साहित्य में ईश्वरचन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक साहित्यकारों ने गर्वपूर्ण ढंग से आपको अपना शिक्षा गुरु स्वीकार किया है। ईश्वरचन्द्र की शैली, जैसी कि संवाद-पत्र सेवियों की हुआ करती है, व्यंग और हास्य-प्रधान हल्की एवं समय-समय पर ग्राम्यता को स्पर्श करती हुई थी। यही कारण था कि एक पत्रकार के रूप में वह काफी सफल हुए, यद्यपि स्थायी साहित्य की दृष्टि से उनके द्वारा रचित पद्य का मूल्य बहुत कम है। उन्होंने अपनी गद्य एवं पद्य रचनाओं के माध्यम से स्वदेश और स्वसमाज की प्रीति का प्रवर्तन किया।

6.5.3. बंगला गद्य साहित्य का प्रतिष्ठा

फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों ने पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से जिस गद्य शैली को प्रवर्तन किया, सामान्य रूप से वही आगामी समय में पाठ्य-पुस्तक- रचयिताओं के लेखों में 19वीं शताब्दी के मध्य भाग तक चलती रही। यह शैली अंग्रेजी से अनभिज्ञ पाठकों के लिए बिल्कुल बन गयी थी, क्योंकि एक तो उसमें संस्कृत के शब्दों की भरमार रहती थी और दूसरे अंग्रेजी का अनुवाद करने के कारण वे लोग अपनी वाक्य-रचना में हू-ब-हू अंग्रेजी शैली का अनुकरण करते थे।

सामयिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा साधारण लोगों को समझ में आने वाले का चलन तो हो गया था, परन्तु यह शैली भी दोषपूर्ण थी। बंगला भाषा के शब्दों के साथ संस्कृत के शब्दों का प्रयोग मनमाने ढंग से किया जाता था और वाक्य प्रायः अत्यधिक लम्बे हुआ करते थे, जिससे वाक्य की समाप्ति तक पाठक प्रायः आरम्भ में कही हुई बात या बातों को भूल जाया करते थे। विराम-चिह्नों का भी प्रयोग व्यवस्थित ढंग से नहीं होता था। फलतः बंगला गद्य में उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना के प्रश्न-चिह्न लगा गया था।

जिस प्रकार हिन्दी गद्य को अनेक पत्रों से युक्त करके भारतेन्दु ने उच्च साहित्य का वाहन बनाया, उसी प्रकार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगला गद्य को उस दोषों से मुक्त करके श्रेष्ठ साहित्य का माध्यम बना दिया। शिक्षा समाप्त करके ईश्वरचन्द्र नौकरी के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज में प्रविष्ट हुए और बंगला गद्य में पाठ्य-पुस्तकें लिखना आरम्भ किया।

इन प्रथम गद्य-ग्रन्थ 'वासुदेव चरित्र' प्रकाशित नहीं हो सका, क्योंकि यह कॉलेज के अधिकारियों के मनोनुकूल नहीं था। इनके द्वारा लिखा हुआ द्वितीय ग्रन्थ 'वेतालपञ्चविंशति' सन् 1847 ई. में प्रकाशित हुआ और उसी के साथ बंगला गद्य में नूतन युग का प्रवर्तन हुआ। गद्य के उसी रूप को आजकल प्रयोग में लाया जाता है। तदुपरान्त इन्होंने अनेक पाठ्य-पुस्तकों की रचना की, यथा-बंगाल का इतिहास (1848), जीवन चरित्र (1849 ई.), शिश शिक्षा चतुर्थ भाग अथवा वोधोदय (1851 ई.), शकुन्तला (1854), कलामाला (1856 ई.), चरित्रावली (1836 ई.), महाभारत का उपक्रमणिका पर्व (1860 ई.), सीता का वनवास (1860 ई.), आख्यान मंजरी (1863-68 ई.), शान्ति विलास (1869 ई.) इत्यादि। ये पुस्तकें प्रायः संस्कृत या अंग्रेजी के ग्रन्थों के आधार पर लिखी गयी थीं, तथापि इनको विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण सर्वथा मौलिक था तथा भाषा परिमार्जित एवं परिष्कृत थी। अनुवाद के लिए जिस वस्तु का बोध होता है, वह नहीं थी।

विद्यासागर ने केवल पाठ्य-पुस्तकें ही नहीं, अन्य अनेक पुस्तकें भी लिखों। उन्होंने कई संस्कृत ग्रन्थों के शुद्ध संस्करण भी प्रकाशित किये। विद्यासागर के पहले बंगला गद्य में तो शुद्ध संस्कृत अथवा चलित भाषा के शब्दों का अनुचित बाहुल्य रहता था अथवा दोनों का शोभाशुन्य समप्रयोग। विद्यासागर ने इन दोनों प्रकार के शब्दों के प्रयोग में ऐसा सामंजस्य स्थापित किया कि उससे भाषा की ओजस्विता भी नष्ट नहीं हुई और रचना का लातित्य भी इसमें आ गया। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि बंगला गद्य के प्रवर्तन में यही विद्यासागर का कृतित्व है, इसी के अभाव में सन् 1847 ई. के पूर्व का बंगला -गद्य साहित्य अथवा साधारण कामकाज की भाषा होने की योग्यता प्राप्त नहीं कर सका था।

विद्यासागर ने ही सबसे पहले बंगला गद्य की स्वाभाविक ताल को लक्ष्य किया एवं उसके अनुसार काव्य-रचना करके सुललित गद्य-शैली का प्रवर्तन किया है। **डॉ. सुकुमार सेन** के शब्दों में, 'बंगला साधुभाषा के गद्य के पिता विद्यासागर हैं -इस बात में तनिक भी अत्युक्ति नहीं। बंगला गद्य के विकृत कंकाल में मेद-माँस, रक्त संयोजन और प्राण-संचारण करके विद्यासागर ने ही इसको साधारण व्यवहार के योग्य जीवित भाषा के रूप में खड़ा कर दिया।'बंगला गद्य के प्रवर्तन में विद्या के प्रधान सहयोगी थे अक्षय कुमार दत्ता। वह कई विषयों के विद्वान थे। सन् 1843 में ब्रह्म समाज द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'तत्वबोधिनी' के वह प्रथम सम्पादक नियुक्त हुए। इस पत्रिका का सम्पादन उन्होंने 12 वर्षों तक किया। इस पत्रिका में उनके विविध प्रबन्ध प्रकाशित हुआ करते थे, इन्हीं प्रबन्धों का संकलन करके वह पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित किया करते थे। उनकी गद्य-शैली वैज्ञानिक विषयों के विशेष अनुकूल थी।

विद्यासागर के पथ का अवलम्बन करके 19वीं शताब्दी के मध्य भाग में जिन्होंने बंगला गद्य की प्रतिष्ठा में विशेष योग दिया उनमें से नाम उल्लेखनीय है- राजनारायण वसु, राज राजेन्द्र मित्र, ताराशंकर तर्करत्न, रामगति न्यायरत्न, राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय, कालीप्रसन्न सिंह, भूदेव मुखोपाध्याय महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं कृष्णकमल भट्टाचार्य। राजेन्द्रलाल मित्र ने कई पाठ्य-पुस्तकों की रचना के अलावा दो मासिक पत्रों का सम्पादन भी किया। वे पत्रिकाएँ अत्यन्त सम्मानीय एवं लोकप्रिय रही। इनके बड़े भाई गोपाललाल मित्र ने भी बंगला गद्य में दो अच्छी पुस्तकें लिखी थीं (1) ज्ञान चन्द्रिका और (2) भारतवर्ष का इतिहास। सन् 1851 ई. विविधार्थ संग्रह पत्रिका प्रकाशित हुई। इसमें राजेन्द्रलाल विज्ञान, इतिहास, जासूसी कहानी आदि विविध विषयों पर साधारण लोगों के पठन योग्य प्रबन्ध प्रकाशित करते थे। यह कार्य वह सन् 1859 ई. तक करते रहे, जबकि उक्त पत्र का प्रकाशन ही बन्द हो

गया । इसके 6 वर्ष बाद राजेन्द्रलाल ने रहस्य सन्दर्भ नामक पत्रिका का सम्पादन किया । ताराशंकर तर्करत्न एवं रामगति न्यायरत्न ने भी सम्पादन के साथ पाठ्य- पुस्तकों के लेखन का कार्य किया ।

संस्कृत कॉलेज के एक अन्य सुविख्यात छात्र द्वारकानाथ विद्याभूषण उस समय के एक शक्तिशाली गद्य लेखक थे । इनके द्वारा सम्पादित 'सोमप्रकाश' ने उन दिनों विशेष आदर प्राप्त किया था । कहने का तात्पर्य यह है कि पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों ने बंगला गद्य का प्रवर्तन किया और बंगला के पत्र-पत्रिकाओं ने उसको प्रतिष्ठित किया । इस कार्य में मुख्य योगदान देने वाले महानुभाव है, मिस्टर करे, ईश्वरचन्द्र सेन, तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर । तदुपरान्त बंकिमचन्द्र के हाथ में पड़कर बंगला भाषा सर्वथा सहज एवं व्यवहारोपयोगी बन गयी । दुर्गेशनन्दिनी पूर्णतया विद्यासागरी शैली पर लिखी गयी है । 'कपाल कुण्डला' और 'मृणालिनी' को भाषा भी सामान्यतः उसी शैली पर है । बंगदर्शन की स्थापना के समय से लेकर ही बंकिम ने बोलचाल की भाषा का ढंग मिलाकर और वाक्यों के विस्तार को घटाकर उनको छोटा करके भाषा को सरल और अधिक सहज बोध्य कर दिया । यह बंकिम की प्रधान देन है ।

20वीं शताब्दी में बंगला गद्य को निखार प्रदान करने वालों में दो हस्ताक्षर अत्यन्त सशक्त है- शरवाल दास वन्द्योपाध्याय और शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय । रवीन्द्रनाथ की छाया में कई गल्प लेखकों ने बंगला गद्य के विकास में अच्छा योगदान किया । अति-आधुनिक काल में बंगला के अनेक लेखक शक्तिशाली रचनाएँ करके बंगला गद्य के विकास में अच्छा योगदान कर रहे हैं । बंगला-गद्य पूर्ण विकास के पथ पर अग्रसर है । उसका भविष्य सभा सुरक्षित एवं उज्वल है ।

6.6. बंगला गद्य और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

बंगला भाषा के गद्य साहित्य में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का बहुत बड़ा योगदान रहा । फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों ने पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से जिस गद्य शैली का प्रवर्तन किया, वही वस्तुतः भविष्य में अंग्रेजी और बंगाली पाठ्य-पुस्तक रचयिताओं के लेखों में होकर 19वीं शताब्दी के मध्य भाग तक चलती रही । यह गद्य सीधा-सपाट था और चलती भाषा में शब्दों के साथ उसमें कोश से छाँटकर निकाले हुए संस्कृत शब्दों के उत्कट प्रयोगों की भरमार रहती थी और इन सबके ऊपर थी संस्कृत-अंग्रेजी साँचे की वाक्य-रचना । प्रथम युग में पंडित लोग संस्कृत के अनुकरण पर वाक्य- रचना करते थे । यह तो समझ में आ जाती थी, परन्तु परवर्ती काल में इस श्रेणी के समस्त लेखक अंग्रेजी से अनुवाद करने के कारण हू-ब-हू अंग्रेजी शैली का अनुकरण करते थे । फलतः वह गद्य शैली अंग्रेजी से अनभिज्ञ पाठकों के लिए दुर्बोध बन गयी थी । बाइबिल के बंगला अनुवादों में यह शैली अभी तक बनी हुई है, परन्तु बंगला साहित्य के क्षेत्र में यह काफी पहले लुप्त हो गयी । इस श्रेणी के श्रेष्ठ लेखक मनीषी पादरी 'कृष्णमोहन वन्द्योपाध्याय' (1813-1885 ई.) थे । 'विद्या कल्पद्रुम ग्रन्थ-माला' में उन्होंने बहुत से ग्रन्थों और थोड़े से संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये । सन् 1843 ई. में विद्या कल्पद्रुम के प्रथम पाँच खण्ड प्रकाशित हुए थे ।

सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से साधारण लोगों की समझ में आने वाले गद्य का चलन हो गया था । परन्तु इस शैली में अनेक दोष थे, यथा--(1) चलती बंगला भाषा के शब्दों के साथ संस्कृत शब्दों के प्रयोग का कोई निश्चित नियम अथवा उनके प्रयोग की कोई मान्य परम्परा नहीं थी;

(2) वाक्य समुचित प्रकार से लम्बे होते थे, जिससे काव्य की समाप्ति के समय आरम्भिक बातें पाठक के मन में तिरोहित हो जाती थीं;

(3) वाक्य में छन्द अथवा ताल न होने के कारण श्रुति माधुर्य का सर्वथा अभाव रहता था;

(4) वाक्य रचना में संस्कृत व्याकरण की रीति का प्राधान्य रहता था;

(5) विराम चिह्नों का उपयुक्त प्रयोग न होने के कारण वाक्य का अर्थ समझने में पाठक को कठिनाई का अनुभव होता था।

फलतः इन दोषों के कारण 19वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध को बंगला साधु भाषा गद्य प्रायः पंगु बन गया था। इसमें उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था।

6.6.1. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का आगमन

बंगला गद्य के इन सब दोषों को दूर करके जिन्होंने पंगुत्व छुड़ाकर इसको उस श्रेणी के साहित्य का वाहन बनाने का कठिन कार्य किया वह थे, आधुनिक बंगाल के वरद पुत्र 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर'। शिक्षा समाप्त करके ईश्वरचन्द्र ने कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज में बंगला गद्य में पाठ्य-पुस्तकों के लेखक के रूप में कार्य आरम्भ किया। इनके द्वारा लिखा गया प्रथम ग्रन्थ 'वासुदेव चरित' था। कॉलेज के अधिकारियों के मनोनुकूल न होने कारण वह प्रकाशित नहीं हो सका। उनका दूसरा ग्रन्थ वेताल पंचविंशति सन् 1847 में प्रकाशित हुआ और उसी के साथ बंगला गद्य में नूतन युग का प्रवर्तन हुआ। इसके बाद इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई— 'बंगाल का इतिहास' (सन् 1848 ई.), 'जीवन चरित' (1849 ई.), 'शिशु शिक्षा चतुर्थ भाग अथवा बोधोदय' (1851 ई.), 'शकुन्तला' (1854 ई.), 'कथामाला' (1856 ई.), 'चरितावली' (1856 ई.), 'महाभारत का उपक्रमणिका पर्व' (1800 ई.), 'सीता का वनवास' (1860 ई.), 'आख्यान मंजरी' (1863-68 ई.)। ये सब पुस्तकें हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी ग्रन्थों के आधार पर रचित हैं, परन्तु वस्तु और शैली दोनों ही दृष्टियों से इन पर ईश्वरचन्द्र की मौलिकता की छाप है। वह केवल पाठ्य-पुस्तकों के ही रचयिता नहीं थे। उन्होंने विविध सामाजिक विषयों पर कई पुस्तकों की रचना की। ये ग्रन्थ साहित्यिक महत्व की दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन्होंने बोलचाल की भाषा में रसिकतापरक कई पुस्तकें भी लिखीं।

इन सबके अलावा ईश्वरचन्द्र के उपक्रमणिका और व्याकरण-कौमुदी इन दो संस्कृत व्याकरण की पुस्तकों की बंगाली भाषा में रचना करके बंगाली छात्रों के लिए संस्कृत सीखने का मार्ग सुगम बना दिया। आपने संस्कृत के कई ग्रन्थों के पाठ शोधन किये और उन्हें प्रकाशित किया। बंगला गद्य के प्रवर्तन में विद्यासागर ईश्वरचन्द्र के प्रधान सहयोगी थे, अक्षय कुमार दत्त (1820-1886 ई.)। सन् 1842 में 'ब्रह्म समाज' द्वारा तत्वबोधिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया गया था। अक्षय कुमार दत्त इसके प्रथम सम्पादक थे और उन्होंने इसका सम्पादन 15 वर्षों तक किया था। इस पत्रिका में प्रकाशित निबन्धों को संकलित करके पाठ्य-पुस्तकें तैयार कर देते थे। इनकी प्रथम पुस्तक सन् 1852 ई. में प्रकाशित हुई, नाम था – 'बाह्य वस्तु के साथ मानव प्रकृति के सम्बन्ध पर विचार'। इसी प्रकार के शीर्षकों - चारूपाठ नीलंभरा, धर्म-नीति भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय दो भाग, इत्यादि पुस्तकें प्रकाशित हुई। इनकी कई पुस्तकें अंग्रेजी में संकलित हैं। वैज्ञानिक आलोचना के पथ-प्रदर्शक के रूप में अक्षय कुमार का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। 19वीं शताब्दी में बंगला गद्य की प्रतिष्ठा में जिन्होंने विशेष योगदान किया, उनमें से नाम महत्वपूर्ण हैं- राजनारायण बसु, राजा राजेन्द्र लाल मित्र, ताराशंकर तर्करत्न, रामगति न्यायरत्न, राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय, काली प्रसन्न सिंह, भूदेव मुखोपाध्याय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं कृष्ण कमल भट्टाचार्य।

संस्कृत कॉलेज में एक और सुविख्यात छात्र द्वारकानाथ विद्याभूषण उस समय के एक शक्तिशाली लेखक थे । इनके द्वारा सम्पादित 'सोम प्रकाश' ने उन दिनों विशेष आदर प्राप्त किया । इस शताब्दी के अन्तिम भाग में एक प्रसिद्ध लेखक से कृष्ण कमल (मृत्यु सन् 1932 ई.) । यह संस्कृत के प्राकाण्ड पंडित थे । विदेशी भाषाओं की मनोहर कहानियों का अवलम्बन लेकर इन्होंने कहानियाँ लिखीं जिनसे सामान्य पाठकों का मनोरंजन हुआ और जिन्होंने बंकिमचन्द्र के बंगला उपन्यासों का पथ-प्रशस्त कर दिया । कृष्ण कमल की पुस्तक 'दुराकाल का भ्रमण', 'सिपाही विद्रोह के समय' (सन् 1857-58 ई.) प्रकाशित हुआ । इन्होंने विचारक नामक पत्रिका भी प्रकाशित की । इनकी मौलिक रचनाएँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थी । फ्रैंच से अनूदित 'पोल वर्जीनिया' कहानी 'प्रबोध बन्धु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी । इस कहानी की धूम रही । कहते हैं इस कहानी ने रवीन्द्रनाथ के बचपन पर काफी गहरा प्रभाव डाला था ।

6.7. सारांश

अंतः सारांश के रूप में यह कह सकते हैं कि सन् 1857 में, प्रसिद्ध पौराणिक 'सिपाही बिदरोहा' (सिपाही विद्रोह) पूरे भारत में हुआ, जिसकी प्रगति की जड़ बंगाल में थी । वास्तव में, बंगाली साहित्य बस अपने सभी रक्तस्राव की महिमा के बारे में बताने के लिए क्षणों की गिनती के बारे में था । इसका तूफान उठाते हुए 'निल बिद्रोह' (इंडिगो विद्रोह) पूरे बंगाल क्षेत्र में फैल गया । यह निल विद्रोह एक वर्ष से अधिक (1859 से 1860 तक) रहा । बंगाली साहित्य और इसके विकास के अत्यंत महत्वपूर्ण संदर्भ में, 19 वीं शताब्दी वास्तव में वह दौर था जब बंगाली भाषा का वास्तविक साहित्य पुनर्जागरण हुआ ।

6.8. बोध प्रश्न

1. 19वीं शताब्दी में बंगला साहित्य का विकास, बंगला साहित्य के बारे में विस्तृत रूप में बताइए।

2. 20वीं शताब्दी में बंगला साहित्य का विकास और गद्य साहित्य का उद्भव और विकास के बारे में बताइए।

3. बंगाल साहित्य में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का योगदान के बारे में बताइए।

6.9. सहायक ग्रंथ

1. बंगाल साहित्य का इतिहास-अनुवादक- निर्मला जैन, सुकुमार, साहित्य अकादमी, दिल्ली ।

2. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-अनुवादक - शुभवर्मा, बनर्जी हिरण्मय,साहित्य अकादमी, दिल्ली ।

3. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका - इन्द्रनाथ चौधुरी

4. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास- डॉ. नगेन्द्र

5. भारतीय साहित्य- संकलनकर्ता -

डॉ. आर. आई. शान्ति

डॉ. प्रकाश ए.

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

7. बंगला उपन्यास, कहानी और नाटक का उद्भव एवं विकास

7.0 उद्देश्य -इस इकाई में आप जान पाएंगे

1. इस पाठ के माध्यम से आप बंगला के गद्य साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे।
2. बंगला साहित्य के महत्वपूर्ण विधाओं को समझ सकेंगे।
3. बंगला के उपन्यासों का परिचय प्राप्त करेंगे।
4. बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासकारों से परिचित होंगे।
5. बंगला के प्रसिद्ध विधा नाटकों के संबंध में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त करेंगे।
6. बंगला के प्रसिद्ध नाटकारों की रचनाओं से अवगत होंगे।
7. बंगला के पौराणिक, ऐतिहासिक नाटकों के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
8. बंगला साहित्य में कहानी के महत्व से परिचित होंगे।
9. बंगला साहित्य में कहानी विधा और कहानीकारों के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
10. बंगला के गद्य साहित्य के संक्षिप्त इतिहास से परिचित होंगे।

रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 बंगला उपन्यास उद्भव एवं विकास

7.3 बंगला उपन्यास 1936 तक

7.4 बंगला कहानी का उद्भव एवं विकास

7.5 बंगला साहित्य के प्रमुख हास्य-व्यंग्य कहानीकार तथा उनकी कहानियाँ निम्नलिखित हैं

7.6 बंगला नाटकों का उद्भव एवं विकास

- 7.6.1 पौराणिक नाटकों का उद्भव एवं विकास
- 7.6.1.1 रामायण पर आधारित नाटक
- 7.6.1.2 महाभारत की कथा पर आधारित नाटक
- 7.6.1.3 अन्य पुराणों पर आधारित नाटक

7.7. बंगला के ऐतिहासिक नाटकों का उद्भव एवं विकास

7.8. सारांश

7.9. बोध प्रश्न

7.10. सहायक ग्रंथ

7.1 प्रस्तावना

बंगला भाषा का साहित्य भारतीय भाषाओं में एक समृद्ध रहा साहित्य है। इसके साहित्य के देन विश्व साहित्य में विख्यात है। इसे जानने या समझने के लिए पाठक को बंगला भाषा के साहित्यकारों की रचनाओं से परिचित होना आवश्यक हो जाता है। इस पाठ में बंगला के गद्य साहित्य की उद्भव एवं विकास का परिचयात्मक अध्ययन किया गया है। एक तरह से बंगला साहित्य के गद्य विधा की रूपरेखा का संक्षिप्त रूप ही है। इस रूपरेखा से साहित्य का मूल मर्म झलक उठता है। यह सच है कि उसकी एक झलक ही मिल सकती है। हाँ, इस पाठ से बंगला भाषा के साहित्य के पठन-पाठन के लिए मन ललच सकता है। यदि ऐसा हो सकता तो इस पाठ की सार्थकता हो सकती है। यह पाठ एक तरह से भारतीय साहित्य में बंगला भाषा के गद्य साहित्य का परिचय देता है। अतः बंगला भाषा के गद्य साहित्य के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

7.2 बंगला उपन्यास उद्भव एवं विकास

बंगला उपन्यास का प्रचार, प्रसार आधुनिक युग में स्पष्ट रूप से हुआ है। इस युग के पूर्व लोक कहानियों छंदोबद्ध काव्यान्तर्गत होती थी। यथा विद्यासुन्दर, कामिनी कुमार आदि काव्यात्मक उपन्यास थे, जो वास्तविक रूप में उपन्यास कहलाने के अधिकारी नहीं थे। इन रचनाओं की कहानी का प्रारूप ही केवल उपन्यास जैसा था। न कि उपन्यास के सभी लक्षण। उपन्यास की रूपरेखा आधुनिक युग में निर्मित हुई। सन् 1850 ई. में प्रकाशित 'अलालेर घरेर दुलाल' को कुछ विद्वान बंगला साहित्य का प्रथम उपन्यास मानते हैं।

1865 में प्रकाशित बंकिम चंद्र चटर्जी का प्रथम उपन्यास 'दुर्गेश नंदिनी' है। वास्तव में उपन्यास की पूर्ण परिभाषा तथा पूर्ण लक्षणों से ओत-प्रोत यही एक उपन्यास है जो बंगला साहित्य का प्रथम उपन्यास कहलाने की क्षमता रखता है। बंकिम चंद्र चटर्जी के उपन्यास रोमांसपूर्ण एवं ऐतिहासिक है। राजनीतिक उपन्यासों के अतिरिक्त सामाजिक उपन्यासों की रचना भी चटर्जी ने की। दुर्गेश नंदिनी, कपाल कुंडला, म णालिनी, चंद्रशेखर, राजसिंह, आनंद मठ, देवी चौधुरानी, सीताराम ऐतिहासिक हैं तथा विष वक्ष, इंदिरा, मुगलांगुरीय, रजनी, राधारानी, कृष्णकान्तेर विल- सामाजिक उपन्यास हैं। इन समस्त उपन्यासों का प्रकाशन सन् 1865 ई. से 1888 ई. के मध्य हुआ।

बंकिम चंद्र चटर्जी के पश्चात तथा शरतचंद्र चट्टोपाध्याय से पूर्व तीन उपन्यासकार हुए जो प्रभात कुमार, जलघर, मनोमोहक चट्टोपाध्याय के नाम से विघ्यत हैं।

प्रभात कुमार का समय 1908 ई. से 1938 ई. तक चलता है। इस समय के बीच इन्होंने रमा सुन्दरी, नवीन सन्यासी, रत्नदीप, जीवनेर मूल्य, सिंदूर कांटा, मनेर मानुष, सत्यबाला, सतीर पति आदि उपन्यासों की रचना की।

जलघर का समय 1911 से 1920 ई. तक अनुमानित किया जाता है। इनकी रचनाओं में विशुदादा, करिम शेख, किशोर, अभागो, ईशानी, हरिश भाण्डारी, चौखेर जल, घोल आनि, सोनार, बाला, दान पत्र शिव सीमन्तिनी, पारस पाथर, भवितव्य, तिन पुरुष, उत्स आदि उपन्यास हैं।

मनोमोहक चट्टोपाध्याय का प्रथम उपन्यास 'अपराजिता' (1902 ई.) प्रकाशित हुआ। फिर इन्होंने मानदा, अश्रु कुमार, मोक्षदा नामक उपन्यासों की रचना की।

इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों के राखालदास बंधोपाध्याय का नाम सदैव अमर रहेगा। इन्होंने इतिहास को जीवन प्रदान किया। इनके महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास शशांक, करुणा, ध्रुवा, धर्मपाल, मयूर असीम आदि है।

शरदचन्द्र ने उपन्यास के क्षेत्र में आकर एक गहरा एवं भयंकर मोड़ खड़ा कर दिया। इनके उपन्यासों में पूर्ववर्ती लेखकों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बंकिम चंद्र, रवीन्द्रनाथ की शैली के प्रभाव का अमिट रूप इनके उपन्यासों पर है। बंकिम चंद्र के उपन्यासों के प्रभाव, अंतर्गत आने वाले उपन्यासकारों में देवदास, परिणीता, विराज बहू, पल्ली समाज, चंद्रनाथ, दत्ता, देना पाओना, पथेर दावों आदि उपन्यास हैं। रवीन्द्रनाथ के प्रभाव में लिखे गये उपन्यास में मंदिर, बड़ीदीदी, चरित्रहीन, अरक्षणीय, ग हदाह, विप्रदास आदि हैं। श्रीकांत, चरित्रहीन का कुछ अंश अपनी कथा पर आश्रित होकर लिखा गया है। इनका 'शेष प्रश्न' नामक उपन्यास दिग्भ्रांत हैं।

शरत चंद्र के पश्चात बंगला उपन्यासकारों की तो कमी नहीं हुई किन्तु उपन्यासों की कमी जरूर हो गयी। लेखकों ने अपनी लेखनी कम चलायी। शरतचंद्र के बाद के उपन्यासकारों तथा उनकी रचनाओं की सूची निम्नलिखित है – विभूति भूषण भट्ट-स्वेच्छाचारी, सुरेंद्र नाथ मजूमदार-सहजिया, अनुरुपा देवी-पोष्यपुत्र, वागदत्ता, ज्योतिहारा, मंत्रशक्ति, महानिशा, मां, इंदिरा-स्पर्शमणि, निरुपमा देवी-अन्नपूर्णार मंदिर, दीदी, शैलबाला घोषजाया-शेख आदू, मिष्टि शरबत, अवाक, नमिता, जन्म अपराधी, जन्म अभिशप्ता, मंगल मठ, ईमानदार, महिमा देवी।

बंगला सन् 1330 के लगभग एक कल्लोल पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसी कल्लोल पत्रिका के साथ-साथ 'सहंति' नामक एक पत्रिका मजदूरों की निकली थी। कल्लोल परिवार के सदस्य अंचित्यकुमार सेन गुप्त ने कल्लोल का परिचय इस प्रकार दिया है – 'कल्लोल कहने पर ही समझ में आता है कि वह क्या है। उद्भव यौवन की झाग देती हुई उद्दामता, समस्त बाधाओं और बंधनों के विरुद्ध मुक्त विद्रोह, स्थविर समाज को उखाड़ फेंकने का आंदोलन।'

बंगाल के सभी ऊंची श्रेणी के साहित्यिक कलाकार इन कल्लोल पत्रिका से किसी न किसी प्रकार से संबंधित अवश्य थे। इन साहित्यकारों में कुछ साहित्यकार (उपन्यासकार) इस प्रकार हैं – तारा शंकर, प्रबोध सान्याल, बुद्धदेव बसु, अन्नदाशंकर, नजरूल इस्लाम, जीवनानंद दास, न पेन्दर कृष्ण चट्टोपाध्याय, पवित्र गंगोपाध्याय, जसीमुद्दीन, प्रेमेन्द्र मित्र, विश्वपति चौधुरी, विष्णु दे, गोकुल नाग, माणिक बंधोपाध्याय, यतीन्द्र सेन गुप्त, शिवराम चक्रवर्ती, यतीन्द्र बागची, राधारानी देवी, शैलजानन्द मुखोपाध्याय, सरोज राय चौधुरी, सुनिर्मल वसु, सुधीर चौधुरी, हुमायूं कबीर आदि।

उपर्युक्त बंगला साहित्यकारों में से कुछ के उपन्यासों की सूची निम्नलिखित है -

गोकुल नाग -पथिक, अचिंत्य कुमार - माँ, तारा शंकर बन्धोपाध्याय- चेताली धूर्णि, गण देवता, पंच ग्राम, हांसुली वांकेर उपकथा, धात्री देवता, कलिन्दी, कवि, मन्वंतर, आरोग्य निकेतन रचना काल (1939 ई. से 1944 ई. तक) विभूति भूषण मुखोपाध्याय-रानू का प्रामि भाग, गरीयसी (1937) बुद्ध देव वसु साडा, जेदिन फुटलोकमल, धूसर गोधुली, कालोहावा, विशाखा, तिथोडोर, अन्नदाशंकर **राय-विचित्रा पात्रिका-** पथेप्रवासे, तारुराय, सत्या सत्य-(उपन्यास संग्रह) छह उपन्यास -जार जेथा देश (जिसका जहाँ देश), अज्ञातवास, कलंकवती, दुःख मोचने, मर्त्येर स्वर्ग (मर्त्य का स्वर्ग) अपसरण, **अचिन्त कुमार** – सेन गुप्त-बेटे या बहु, जायजेदिजाक (जाये तो जाये) डॉ. बलाईचांद

मुखोपाध्याय- तण खंड, शनिवारेर चिठी कुछ क्षण, विभूति भूषण बन्धोपाध्याय-पथेर पांचाली, अपराजिता, आरण्यक, द ष्टिप्रदीप, देवयान, आदर्श हिन्दू होटल, शैक्षजानन्द मुखोपाध्याय- कयला कुटी (कोयले की खान) माणिक बन्धोपाध्याय-पद्मा नदी का मांझी, सत्यनारायण गागुंली-उपनिवेश, स्वर्णसीता, सूर्य सारथी, गोपाल हालदार-एकदा, सतीनाथ भादुरी-जागरी, विमल मित्र-साहब बीवी गुलाम, दीपक चौधुरी-पाताले एक ऋतु (पाताल में एक ऋतु), शंख विष, रमापद चौधुरी-प्रथम पहरद्ध वरेन वसु-रंगरूट आदि।

इस प्रकार बंगला साहित्य उपन्यासों से भरा पड़ा है। इन समस्त उपन्यासों की रचना जीवन जगत के प्रत्येक वातावरण से ओत-प्रोत है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि कोई ऐसा क्षेत्र शेष नहीं है, जिसका वर्णन इन समस्त उपन्यासों में न हुआ हो।

7.3 बंगला उपन्यास 1936 तक

बंगला में बहुत प्राचीन-समय से पद्य, गद्य अथवा पद्य-गद्य के मिले हुए रूपों में कथाओं का प्रचलन पाया जाता है। बंगला-कथाओं का प्राचीनतर रूप प्रायः देवी-देवताओं के प्रशस्ति-गान के रूप में प्राप्त होता है। सत्रहवीं शताब्दी में अराकान राज्य सभा की रोमान्टिक आख्यायिकाएँ प्राप्त होती हैं। इसके उपरान्त अठारहवीं शती में बंगाल के नवाबों की ही भांति पश्चिमी बंगाल के जमींदारों के यहाँ भी इसी प्रकार की काव्यमय गाथाएँ चलती रही। इस प्रसंग में भारतचंद्र की 'विद्यासुन्दर' कहानी उल्लेखनीय है। पाश्चात्य आन्दोलन का भी काफी हद तक प्रभाव बंगाल साहित्य पर पड़ा। इस आंदोलन ने बंगला साहित्य को एक नवीन रोमांटिकता प्रदान की, जो पंचतंत्र, जातक, कथा सरित्सागर, वैताल पंचविशंति तथा अरबी उपन्यासों की रोमांटिकता से बिल्कुल अलग थी। आधुनिक अर्थ में बंगला उपन्यास का विकास ऐतिहासिक कहानियों से हुआ है।

भूदेव मुखोपाध्याय का 'अंगुरीय विनमय' (प्रकाशन काल 1862 ई.) बंगला साहित्य का प्रथम उपन्यास कहा जाता है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी कथा के रोमांस ने बंकिम बाबू की 'दुर्गेशनन्दिनी' पर भी प्रभाव डाला है। गोपी मोहन घोष का 'वियज वल्लभ'(1863 ई.) भी उपन्यास के अधिक निकट पहुँच गया है। 'आलालेर और दुलाल' (1261-64 बंगाब्द) में भी उपन्यास के तत्व मिलते हैं।

बंकिम चंद्र की 'दुर्गेशनन्दिनी' प्रादुर्भाव से बंगला साहित्य में हमें उपन्यास-कला के दर्शन प्राप्त होने लगते हैं। 'दुर्गेशनन्दिनी' में बंगला साहित्य में पहले से चली आती हुई नक्शा परम्परा, देशी प्रेम कहानी तथा विदेशी रोमांस की अनुयायिनी पद्धति का सुन्दर समन्वय क्रमशः आगमनी दिग्गज, तिलोत्तमा तथा आयेषा के चरित्रों में हुआ है। इसकी भाषा सरल है। इसके उपरान्त बंकिम के उपन्यासों को दो भागों में रखा जा सकता है – 1. 1875 ई. तक लिखे गए, 2. 1875 से 1882 ई. के बीच लिखे गये उपन्यास है। विष वक्ष, इंदिरा, युगरांगुरीय, चंद्रशेखर रजनी, राधारानी 1875 ई. के पूर्व के लिखे गये उपन्यास है। बंकिम के जीवन-काल में उनसे प्रेरणा ग्रहण करने वाले अनेक लेखक हुए किन्तु उतनी अधिक उच्च कोटि के नहीं हो सके। उनके समकालीनों में प्रताप चंद्र का 'बंगाधिप पराजय' (दो खंड, 1884 ई.) उल्लेखनीय है।

बंगला उपन्यास की उत्पत्ति में योग देने वाली, अनेक स्वतंत्र धाराएँ हैं। इनमें में से पहली धारा तो लोक रंजक, शिक्षात्मक नक्शा वाले टाइप विशेष की है। उदाहरणतः श्रीकृष्ण कीर्तन 'बड़ायि', चण्डींगल का 'भाड़दत्त' भारतचंन्द का 'हीरा-मालिनी' तथा प्यारी चाँद का 'ठकदादा' आदि आते हैं।

दूसरी धारा अद्भुत रसात्मक उपकथा की है, जिसके अंतर्गत हमें रामगति न्याय रत्न के 'रोमावली' (1862 ई.), 'राम सदय', केदारनाथ दत्त के 'नलिनीकांत' (1858 ई.), प्रियम्बदा (1855 ई.), जयनारायण बन्धोपाध्याय के 'पारिजात विकास' (1863 ई.), मधुसुदन मुखोपाध्याय के 'सुशीला उपाख्यान' (1858-60 ई.), द्वारकानाथ राय के सुशील मंत्री (1856 ई.), जगदीश तर्कालंकार का 'वासन्तिका' (1860 ई.), केदारनाथ चट्टोपाध्याय के 'नीलांजन' (1860 ई.), अविनाशचंद्र चट्टोपाध्याय का 'पुरंजन' (1861 ई.) इत्यादि उपन्यास प्राप्त होते हैं।

तीसरी धारा अंग्रेजी ऐतिहासिक रोमांटिक कहानी के आधार पर लिखे गये उपन्यासों की है, जिनमें रामराय बसु का 'लिपिमाला' (1802 ई.), 'प्रतापादित्य चरित्र' (1801 ई.) तथा प्रतापचंद्र घोष के 'बंगाधिप-पराजय' (1869 ई.) इत्यादि है।

चौथी धारा में विवाहित नर-नारियों की रसमयी को एक नवीन दृष्टि से देखा गया है। इसके अंतर्गत बंकिम का 'विषव क्ष' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

1875 ई. से 1882 ई. तक लिखे गये बंकिम के उपन्यास 'कृष्ण कान्तेर विल', राजसिंह आनंद मठ, तथा 'देवी चौधुरानी' हैं। उनका अंतिम उपन्यास 'सीताराम' 1888 ई. में 'प्रचार' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। बंकिम के उपन्यासों के नाम भी अधिकतर नायिकाओं के नाम पर ही रखे गये हैं। इन उपन्यासों में पूर्व-राग तथा अनुराग को स्थान नहीं दिया गया है। बंकिम ने शैली तो अवश्य पाश्चात्य अपनायी किंतु उनका भाव-संसार तथा आदर्श भारतीय ही रखा। बंकिम के उपन्यासों में स्कॉट का आदर्श अवश्य आया है किन्तु उसमें पूर्व प्रचलित देशी कथाओं के आदर्श भी घुले हुए हैं। 'कमला कान्तेर दफ्तर' में बंकिम चंद्र जी ने एक विचित्र कौतुक रस की सृष्टि की है। यह रचना 'डिक्वेन्सी' के 'कन्फेशंस ऑव अन् ओपिअम ईटर' के आधार पर लिखी गयी है।

7.4. बंगला कहानी का उद्भव एवं विकास

सन् 1891 ई. से छोटी-छोटी कहानियों से बंगला साहित्य भरने लगा। आरंभ में रवीन्द्रनाथ ने छोटी-छोटी लगभग सौ कहानियों का ढेर बंगला साहित्य को प्रदान किया। रवीन्द्रनाथ ने अपनी कहानियों का विजय सामान्य जीवन के सुख-दुःख को बनाया। रवीन्द्रनाथ की ही भांति श्रीशचंद्र मजूमदार, श्रीमती शरतकुमारी चौधुरानी तथा जतीन्द्र मोहन सिन्हा आदि ने भी अपनी कहानियों में सामान्य जन-जीवन-वृत्त खींचा।

प्रभात कुमार मुखर्जी को रवीन्द्रनाथ ने कहानी लेखक बनने की प्रेरणा दी। इन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप मुखर्जी महाशय ने 12 कहानियों से अधिक संग्रह तैयार किये जो इस प्रकार हैं – नव कथा, षोडशी, देशी ओ विलात, गल्पांजलि, गल्प वीथी, पत्रपुष्प, गहनार बाक्स, हताश प्रेमिक, नूतन बऊ, जमाता बाबा जी आदि। ये समस्त कहानियाँ 1900 ई. से 1931 ई. तक में प्रकाशित हुई थी। प्रभात कुमार मुखर्जी के समकालीन गल्प लेखक

सुधीरन्द्रनाथ ठाकुर, सुरेन्द्र नाथ मजूमदार भी बहुत अच्छे सफल गल्प कहानीकार थे। वही नवीन कहानीकारों में सौरीन्द्र मोहन मुखर्जी, चारुचंद्र बनर्जी आदि आते हैं।

शरतचंद्र चटर्जी का नाम कहानीकारों में बड़े ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है। कहानियों में विन्दूर छेले, रोमर सुमित, अरक्षणीया आदि हैं।

इसके पश्चात नये लेखकों में इंदिरा देवी, विभूति भूषण का नाम आता है। इसी श्रीमती शैलबाला घोषजाया की लगभग सात-आठ कहानियाँ प्रकाश में आई। शान्तादेवी, सीतादेवी ने 'प्रवासी' नामक पत्र में कहानियाँ लिखी। विपिन चन्द्र पाल का प्रथम कहानी संग्रह 'कथाकुंज' था, जो 1907 ई. में लिखा गया। इसके अतिरिक्त हरिदास हालदार, सत्येन्द्र कृष्ण गुप्त, डॉ. नरेश चंद्र गुप्त आदि कहानीकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

1922 ई. में चार गल्पों की एक लघु पुस्तक प्रकाशित हुई। इन चारों गल्पों की रचना चार कलाकारों द्वारा की गयी जिनमें गोकुलचंद्र नाग, दिनेश रंजन दास, श्रीमती सुनीतिदेवी तथा मणीन्द्रलाल बसु के नाम उल्लेखनीय हैं।

शैलजानन्द मुखर्जी की कहानियाँ अत्तसी, नरमेघ, वधुवरण, पौषपार्वण, सती-असती, नारी जन्म संग्रहों में विशेरू रूप से प्राप्त हैं।

यथार्थवादी चित्रण में जगदीश चंद्र गुप्त का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इनका प्रथम कहानी संग्रह 'विनोदिनी' है जो 1928 ई. में प्रकाशित हुआ। रवीन्द्रनाथ मैत्री की कहानी 'एक झलक' थर्ड क्लास प्रकाशित हुई। अपनी रचनाएँ दिवाकर शर्मा के नाम से प्रकाशित कराई।

बंगला साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों में कुछ ऐसे कहानीकार हुए जिनकी कहानियाँ बंगला साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। उन कहानीकारों में से प्रमुख कहानीकारों एवं उनकी प्रसिद्ध रचनाओं के नाम निम्नलिखित हैं-

रवीन्द्रनाथ ठाकुर – मुन्ना बेटा लौट आया।

शरतचंद्र चट्टोपाध्याय – अभागी का स्वर्ग।

प्रभात कुमार मुखोपाध्याय – देवी, षोडशी, सिन्दूर कोटा, ननकथा, नवीन सन्यासी, देशी ओ विलाती, गल्पविथि, सत्यबाला, गहनार-बाक्स, सतीरपति, रत्नद्वीप, जामाता बाबूजी, हताश प्रेमिक आदि।

विभूतिभूषण बन्धोपाध्याय – विधु मास्टर।

परशुराम – भुशंड़ी का मैदान, गडड्लिका, कज्जली, हनुमानेर स्वप्न, लघु गुरु, भारतेर खनिज, मेघदूत, हितोपदेश गल्प आदि।

उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय – नास्तिक, राजपथ, छद्यवेशी, दिक्सूल, अमूलतरु, नवग्रहा, अमला, विदूषीमार्या, अभिज्ञान, शशिनाथ, स्मतिकथा।

विभूतिभूषण मुखोपाध्याय – सर्टिफ़िकेट।

ताराशंकर बन्धोपाध्याय – नारी और नागिन, रसकली, हलसाघर, राइकमल, गणदेवता, पंचग्राम, कालिन्दी, धात्रि-देवता, डाकहरकारा, तिनशून्य, माटी, कामधेनु, हारानोसुर, हीरा पन्ना, काला, शिलासन, स्थलपद्य, छलनामयी, जादूकरी।

बनफूल – निपुणिका, जंगम, विंदूविसर्ग, वैतरिणी तीरे, द्वैरथ, त णखंड, दशभाग, म गया, रात्री, सप्तर्षि, श्री मधुसुदन।

मनोज बसु – दुनिया किसकी, भुलिनाइ, प्लावन, जलकल्लोस, कांचरे आकाश गल्प पंचाशत, ओ गो बधु सुन्दरी, रूपवती आदि।

माणिक बन्धोपाध्याय – जिसे रिश्वत दी जात है।

सुबोध घोष – अंजनगढ़, फासिल, जतूग ह, त्रियामा, सुजाता, छायाव ता आदि।

नारायण गंगोपाध्याय (1918 ई.) – शेर का चारा, उपनिवेश, एक तल्ला, काला बन्दर, तिमिर तीर्थ, शिला लिपि, हासिर गल्प, शीलावती आदि।

वाणी राय (1919 ई.) – पुनराव ति, प्रेम, निस्संग विहंग, निरसिंह, चोखे आमार त ष्णा, सकाल संध्या रात्रि, सातटि रात्रि आदि।

ज्योतिरिन्द्र नन्दी – खेलना, सूर्यमुखी, शालिक कि चड़ूइ, बंन्धु-पत्नी, मीरार दुपुर, टैक्सी ड्राइवर, बारो घर एक उठोन, पासेर फ्लैटर मेये आदि।

नरेन्द्रनाथ मित्र (1916 ई.) – असमतल, उल्टोरथ, हलदे वाड़ी, पागल, अक्षरे-अक्षरे, देह-मन, चेना-महल, मयूरी, मिसेस ग्रीन आदि।

नवेन्द्र घोष – सुख नामे शुकपांखी, आगुनेर उक्ति, भालो बासार, अनेक नाम, फीयर्स लेन, डाक दिए जाइ आदि।

विमल कर (1921 ई.) – देवाल, ग्रहण, खड़कूटो, सूर्यमय, ह्रद, बालिका वधू।

रमापद चौधुरी (1922 ई.) – अन्वेषण, लालबाई, प्रथम प्रहार, शुभ द ष्टि, दरबारी, छीपेर नाम दिया रंग आदि।

कविता सिन्हा (1931 ई.) सोनारूपार काठी, पाप-पुण्य पेरिए, सलिल सीता आदि।

उपर्युक्त सभी कहानीकारों की रचनाओं में कहानियों के अतिरिक्त अन्य रचनाओं (उपन्यास निबंध, स्मति ग्रंथ, जावनी आदि) का उल्लेख किया गया है।

हास्य-व्यंग्य युक्त कहानियों के अधिष्ठाता राजशेखर बसु थे। ये अपनी कहानियाँ 'परशुराम' के नाम से लिखते थे। इनकी प्रथम कहानी 'विरंचि बाबा' थी।

प्रबोध कुमार सान्याल, प्रेमेन्द्र मित्र, अचिंत्यकुमार सेनगुप्त, बुद्धदेव बसु, अन्नदाशंकर राय, सरोजकुमार राय चौधुरी, ताराशंकर बन्धोपाध्याय, बालाईचंन्द्र मुखर्जी, माणिक बनर्जी, प्रमथनाथ चौधरी, बंकिम चंद्र चटोपाध्याय, कालीप्रसन्न सिंह, त्रैलोक्यनाथ मुखर्जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय, शरतचंद्र चटर्जी, राजशेखर बसु (परशुराम), असमंज मुखर्जी, जगदीश गुप्त, सुकुमार राय, रवीन्द्रनाथ मैत्र, प्रेमांकुर आतर्थी, विभूतिभूषण बन्धोपाध्याय, परिमल गोस्वामी, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, शरविन्दु बन्धोपाध्याय, प्रमथनाथ बिशी, मनोज बसु, शिवराम चक्रवर्ती, आशापूर्णा देवी, लीला मजूमदार, गजेन्द्र कुमार मित्र, वीरेन्द्र भद्र, अमूल्य कुमार दासगुप्त, विमल मित्र, नारायण गंगोपाध्याय, संस्कृति शंकर आदि हास्य-व्यंग्य कहानी के कहानीकार हुए।

बंगला हास्य कहानियों में भू-धातु, रेलवे, विद्याधरी और अरुचि, राजतिलक, फर्माइशी कहानी, बूढ़ा बिलन्दिया, तगड़ा जमाई, लालू, श्री श्री सिद्धेश्वरी लिमिटेड, उल्टे पंचानन, अठारह कलाओं की एक कला, सर्वज्ञजी, त्रिलोचन कविराज, कलुए ने काटा, आइनस्टाइन और इन्दुबाला, दिल्ली का लड्डू, अद्वितीया, श्याम बाजार की जय, धर्मतल्ला से कॉलिज स्क्वायर, भक्ति-भाजन, सिख, अभिभावक, कलाकाल, प चजन्य, चुपके-चपके, पहला अक्षर, कोरी कहानी, हरप्यारी, दुर्घटना, रवीन्द्र रचनावली, औरतें और उनकी पसंद, स्पर्श, एक और महापुरुष, ईदु मियां का मुर्गा, कलकतिया षण्ड (सांड) आदि कहानियाँ बंगला साहित्य के अंतर्गत अद्वितीय स्थान रखती हैं।

7.5 बंगला साहित्य के प्रमुख हास्य-व्यंग्य कहानीकार तथा उनकी कहानियाँ निम्नलिखित हैं –

बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय – दुर्गेशनंदिनी, अंगुरीय विनिमय, कपाल कुण्डला, ण णालिनी, विष वक्ष, चंद्रशेखर, रजनी, कृष्ण कान्तेर बिल, राजसिंह, आनन्दमठ, देवी चौधुरानी, सीताराम, कमलाकांत, धर्मतत्त्व, कृष्ण चरित।

त्रैलोक्यनाथ मुखर्जी – कंकावती, भूत और मानुष, फोक्ला दिगंबर, मुक्तामाला, मयना कोथाय, मजार गल्प, पापेर परिणाम, डमरू चरित, बीरबाला नाभे, लूलू, नयनाचांदरे व्यवसाय, विद्याधरीर अरुचि।

प्रमयनाथ चोधुरी – सानिट पंचाशत, पदचारण, चार यारी कथा, फर्माइशी कहानी।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर – शकुन्तला, क्षीरेर पुतुल, राजकाहिनी, बुड़ो आंग्ला, आगुनरे फुल्कि, घरोआ, जोड़ा सांकार धारे, भूतपत्री, खाजाजीर खाता, पथे विपथे, आपना कथा, बूढ़ा विलन्दिया।

प्रभात कुमार मुखोपाध्याय- नवकथा, षोडशी, देशी और विलाती, गल्पांजलि, गल्पविधि, पुत्रपुष्प, गहनार बाक्स, हताश प्रेमिक, विलासिनी, युवकेर प्रेम, नूतन बहु, जामाता बाबाजी, रमासुन्दरी, नवीन सन्यासी, रत्नदीप, आरति, सत्यबाला, सिन्दूर, कोटो, तगड़ा जमाई।

राजशेखर बसु (परशुराम) – गुड्डलिका, कज्जली, हनुमानेर स्वप्न, कृष्णकवि, चमत्कुमारी एवं अन्यान्य गल्प, धुस्तरी माया, आनन्दी बाई, श्री श्री सिद्धेश्वरी लिमिटेड।

असमंज मुखर्जी - जमा खर्च, उल्टे पंचानन।

जगदीश गुप्त – विनोदिनी, रूपेर बाहिरे, श्रीमती, गति हारा, जाह्नवी, शशांक कविराजेर स्त्री, पाइक श्री मिहिर प्रमाणिक, मेघाव त्ति अशनि, अठारह कलाओं की एक कला।

सुकुमार राय - हयवरल, आबोल-तबोल, खाई-खाई, पगला दाशु, झालापाला, बहुरुपी, भावुक सभा, चलचित्र चंचरी, हेशोराम हंशियारेर डायरी, सर्वज्ञ जी।

रवीन्द्रनाथ मैत्र – थर्ड क्लास, वास्तविकता, उदासीर मठ, दिवारी, त्रिलोचन कविराज।

प्रेमांकुर आतर्थी – बाजीकर, झढेर पाखी, दुई रात्रि, करुणा, अचल पथेर यात्री, चाषार मेये, कलुए ने काटा।

विभूतिभूषण बंन्धोपाध्याय – पथेर पांचाली, अपराजित, मेघ मल्लार, जात्रा बादल, द ष्टिप्रदीप, आरण्यक, आदर्श हिन्दू होटेल, विपिनेर संसार, देवयान, इच्छामती, आइनस्टाइ और इन्दुबाला।

ताराशंकर बन्धोपाध्याय (1898 ई.) रसकली, कालिन्दी, कवि दुई पुरुष, हांसुली बाकेर उपकथा, धात्री देवता, आरोग्य निकेतन, विचारक, राधा, दिल्ली का लड्डू।

बलाईचांद मुखोपाध्याय- बनफूलेर कविता, अंगारपर्णी, आहवनीय, वैतरिणी-तीरे, बाहुल्य अद श्यलोक, त णखण्ड, किछु क्षण, द्वैरक, निर्मोक, जंगम, रात्रि, स्थावर डाला, पंचपर्व, श्री मधुसुदन, विद्यासागर, अद्वितीया।

परिमल गोस्वामी – घूघू, मार के लेंगे, श्रेष्ठ व्यंग्य गल्प, मैजिक लैन्टर्न, पथे-पथे, सप्तपंच, बुद्बुद्, ट्रामेर सेई लोकटि, ब्लैक मार्केट, दुस्मन्तरे विचार, व्यन्मगा व्यन्मगी, श्याम बाजार की जय।

विभूतिभूषण मुखोपाध्याय – रानूर कथा माला, नीलांदुरीय, वरयात्री, वसन्ते, विशेष रजनी, स्वर्गादपि गरीयसी, दुआ रहते अदूरे, कलकत्ता, नोआखाली और बिहार, धर्मतल्ला से कालिज स्कवायर।

शरदिन्दु बन्धोपाध्याय – जातिस्मर, विषकन्या, बूमरैंग, जिन्देर बन्दी, कालकूट, कालिदास, भक्तिभाजन।

प्रमथनाथ बिशि – ऋणं कृत्वा ध तं पिबेत्, मौचा के ढिल, परिहास-विजल्पितम्, सिख।

मनोज बसु – (1901 ई.) – बनमर्मर, भूलिनाइ, सैनिक, मानुष गड़ार कारीगर, एक विहंगी, चीन देखे एलान, सोवियतेर देशे-देशे, नूतन प्रभात, जल जंगल, अभिभावक।

अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त – वाषा भूषा, कलाकार।

शिवराम चक्रवर्ती (1905 ई.) मेयेदेर मन, प्रेमेर विचित्र गति, बाड़ी थेके पालिये, जखन तारा कथा बाल्बे, आभार लेखा, पंचजन्य।

प्रेमेन्द्र मित्र (1904 ई.) प्रथमा, पांक, मिछिल, वेनराती बन्दर, पुतुल ओ प्रतिमा, आगामी कल, कुयाशा, छाया, फेरारी फौज, महानगर सागर थेरे फेरा, पहला अक्षर।

आशापूर्ण देवी (1909 ई.) अग्नि परीक्षा, शशिबाबूर संसार, कोरी कहानी, सोनाली संध्या, अनिवार्य, वलय ग्रास, प्रेम ओ प्रयोजन, दिगान्तेर रंग, उत्तर लिपि, सोनार हरिण।

लीला मजूमदार (1909 ई.) – जोनाकी, मणिकुन्तला, श्रीमती, दिन दुपरे, पदी पीसीर बर्मी वक्ष, बूडो ओ देखा, सागर, हरप्यारी, झांपताला, हलदे पांखीर पालक, एइ जा लंगा दहन आदि।

गजेन्द्र कुमार मित्र (1909 ई.) – स्त्रियश्चरित्रम्, नववधु, भाड़ातेवाडो, रजनीगंधा, रात्रिर तपस्या, काले आछे जारा, वहि-वन्या, कलकातार काछेई, उपकण्ठ, दुर्घटना, नारी ओर नियति आदि।

बुद्धदेव बसु – रेखाचित्र, अभिनय नय, एरा ओरा एवं आरो अनेके, मिसेस गुप्ता, घरे ते भ्रमर एलो गुनगुनिये, फेरी वाला रवीन्द्र रचनावली।

वीरेन्द्र भद्र (अरूप, विष्णुशर्मा, विरूपाक्ष) – विरूपाक्षेर झंझट, विरूपाक्षेर विषम विपद, विरूपाक्षेर निदारुण अभिज्ञता, विरूपाक्षेर आयाचित उपदेश, विरूपाक्षेर विचित्र चरित्र। मैस नं. 49., औरतें और उनकी पसंद।

विमल मित्र (1912 ई.) – साहब, बीवी, गुलाम, कौड़ी दिये की नलाभ, रानी साहेबा, मनेरइलो, पुतुल दीदी, म त्युहीन प्राण, अन्यरूप, कन्यापक्ष, मिथुनलग्न, एक और महापुरुष, बेनारसी, सरस्वतिया, स्तरी, एक राजार छय रानी।

नारायण गंगोपाध्याय (1918 ई.) – उपनिवेश, शिलालिपि, श्रेष्ठ गल्प, सम्मोहन, पद संचार, साहित्ये छोट्ट गल्प, ईदु मियाँ का मुर्गा।

शंकर (1933 ई.) कत अजाना रे, या बोलो ताई वालो, पद्यपायात जल, एक दुई तीन।

बंगला नाटकों का उद्भव एवं विकास

7.6 बंगला नाटकों का उद्भव एवं विकास

बंगला के नाटकों का दो भागों में विभाजित कर उसके दो वर्ग बनाए गए हैं जिनमें प्रथम वर्ग के रूप में बंगला के पौराणिक नाटकों को रखा गया है। वही दूसरे भाग में बंगला के ऐतिहासिक नाटक तथा आधुनिक नाटकों को रखा गया है। अतः इन दोनों नाटकों को क्रमशः इस प्रकार देख सकते हैं -

7.6.1 पौराणिक नाटकों का उद्भव एवं विकास

बंगला नाटक की शुरुआत ही पौराणिक नाटक से हुई। ताराचरण शिकदार कृत 'भद्रार्जुन' (1852) इसका प्रमाण है। पौराणिक नाटकों के भी हम रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों के आधार पर वर्ग बना सकते हैं।

7.6.1.1. रामायण पर आधारित नाटक -

सन् 1850-1900 के मध्य कई नाटक लिखे गये। सीता के विवाह पर हरिशचंद्र मित्र ने 'जानकी' (1963), राजकृष्ण राय ने 'हरधनुभंग' (1881), बिहारी लाल चट्टोपाध्याय ने 'सीता स्वयंवर' (1888) लिखा। रावन द्वारा सीता-हरण की कथा पर आधारित हरिमाहन कर्मकार का 'जानकी विलाप' (1867), श्रीशचंद्र राय चौधुरी का 'लक्ष्मण वर्जन' (1870), रसिकचंद्रराय का 'सीतान्वेषण' (1875), क्षेत्रनाथ बंद्योपाध्याय का 'मायाम ग' (1880), केदारनाथ गंगोपाध्याय का 'लक्ष्मण वर्जन' (1880), गीरीशचंद्र घोष के 'सीताहरण' (1882), 'लक्ष्मण वर्जन' (1882) आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा को लेकर राजकृष्णराय ने 'अनेले बिजली' (1878) लिखा। सीता-वनवान की कथा को लेकर भी कुछ नाटक लिखे गये हैं। उमेशचंद्र मित्र का 'सीतार वनवास' (1866) में लिखा गया। इसी नास से केदारनाथ गंगोपाध्याय और भोलानाथ मुखोपाध्याय ने 1879 में तथा गिरीशचंद्र घोष ने (1882) में नाटकों की रचना की। राम-राज्य की प्राप्ति पर मनमोहन बसु ने 'रामाभिषेक' (1867) और केदारनाथ

गंगोपाध्याय ने 'रामेर राज्यभिषक' (1878) तथा 'राम वनवास' (1878) लिखे। राम वनवास हरिशचंद्र मित्र रामेर अधिवास (1877), कामिनी सुन्दरदासी, रामेर वनवास (1883), गिरीशचंद्र घोष 'रामाभिषेक' (1883) आदि नाटक भी रामाभिषेक की कथा पर आधारित हैं। मेघनाथ की कथा पर त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय ने 'मेघनाथ वध' (1867), हरिशचंद्र तर्कालंकार ने 'मेघनाथ वध' (1877) तथा बिहारी लाल चट्टोपाध्याय ने एक व्यंग्य 'मेघनाथ वध' (1878) की रचना की। केदारनाथ गंगोपाध्याय ने लक्ष्मण-शक्ति की घटना पर 'रामविलाप' (1878) तथा रावण की तपश्चर्या और वरदान प्राप्ति पर 'रावणेर दिग्विजय' (1878) नामक नाटक लिखे। रावण की मृत्यु पर सन् 1881 में गिरीश घोष तथा बिहारी लाल चट्टोपाध्याय के लिखे हुए 'रावण वध' नामक दो नाटक प्राप्त होते हैं। कृतिवास रामायण की एक कथा के आधार पर राजकृष्णराय ने 'तरणीसेन वध' (1884) नामक नाटक लिखा। ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'उत्तररामचरितम्' का अनुवाद उत्तरचरित (1900) के नाम से किया। रामजन्म पर आधारित बंगला में कुंजबिहारी बसु कृत 'श्रीरामवमी' (1892) और शैलेन्द्रनाथ सरकार कृत 'राम' (1900) नामक नाटक प्राप्त होते हैं।

सन् 1900 से 1934 के मध्य लिखे गये नाटकों में 'पाषाणी' (1900), द्विजेन्द्रलाल राय, सीता (1908), योगेंद्रचंद्र चौधुरी के नाम लिये जा सकते हैं। इस काल में रामायण पर आधारित नाटक मिलते हैं। उसी प्रकार युद्ध-पूर्व (1934-35) के मध्य केवल एक नाटक मिलता है और वह है योगेशचंद्र चौधुरी कृत 'सीता' (1934)।

7.6.1.2 महाभारत की कथा पर आधारित नाटक

सन् 1850-1900 ई. के मध्य महाभारत की कथा को आधार बनाकर बहुत से नाटक लिखे गये। उषा और अनिरुद्ध के प्रेम को लेकर मणिमोहन सरकार ने 'उषानिरुद्ध' (1863), जगन्नाथप्रसाद बंधोपाध्याय ने 'उषाहरण' (1875), राधानाथ मित्र ने 'उषाहरण' (1880) लिखा। अभिमन्यु के चरित्र को लेकर गिरीशचंद्र घोष ने 1881 में 'अभिमन्यु वध' नामक दुःखांत नाटक की रचना की। दुर्गादास कर का स्वर्णश्रंखल (1863), रामनारायण तर्करत्न का 'वेणीसंहार' (1856), नगेन्द्रनाथ घोष का 'विमुक्त वेणीबंधन' (1882), हरलाल राय का शत्रुसंहार (1874), द्वारकानाथ सरकार का सौरंध्री (1875), बिहारीलाल चट्टोपाध्याय का 'द्रोपदीर स्वयंवर' (1884) आदि नाटक द्रौपदी के चरित्र पर आधारित हैं। कर्ण के चरित्र पर हरिपद चट्टोपाध्याय ने 'दाता कर्ण' (1890) लिखा। वभ्रवाहन द्वारा उर्जुन के पराजय को लेकर 'पार्थपराजय' (1881), मनमोहन बसु और विद्याविनोद ने क्षीरोपप्रसाद 'वभ्रुवाहन' (1900) नाटक लिखे। पांडवों के अज्ञातवास पर भोलानाथ मुखोपाध्याय ने 'पांडवेर अज्ञातवास' (1875), अर्जुन द्वारा क्लीन जीवन-यापन पर मदन मोहन मित्र ने 'ब हन्नला' (1874), कीचक-वध कथा पर यादवचंद्र विद्यालंकार ने 'कीचक-वध' (1858, हरिचंद्र घोष), जयद्रथ वध, (1864, हरिश्चंद्र मित्र), भीष्मेर शरशय्या (1885, अतुलकृष्ण मित्र), पांडव कौरव (1900, गिरीश घोष) आदि उल्लेखनीय हैं। पांडवों के वंशज परीक्षित की कथा पर बिहारीलाल चट्टोपाध्याय ने 'परीक्षितेर ब्रह्मशाप' (1882) नामक नाटक लिखा।

यदुवंश के विनाश की कहानी को लेकर राजकृष्णराय ने अपना 'यदुध्वंश' नामक बंगला नाटक लिखा। कृष्ण को लेकर भी बंगला में कई नाटक लिखे गये जिनमें से कुछ तो कृष्ण के बाल्यजीवन से संबंधित हैं, कुछ उनकी युवावस्था से संबंधित और कुछ उनकी भक्ति से संबंधित है। बंगाल के अधिकांश नाटक कृष्ण की बाललीला अथवा रासलीला पर आधारित हैं। रुक्मिणी के कथानक पर आधारित दो नाटक हैं- 1. रामनारायण तर्करत्न का 'रुक्मिणी

हरण' (1871), और 2. राखलदास भट्टाचार्य का 'रुक्मिणी रंग' (1887)। अतुलकृष्ण राय ने उद्धव कथा पर 'उद्धव संवाद' तथा अक्रूर कथा पर 'अक्रूर संवाद' (1873) लिखा। सन् 1875 में रामनारायण तर्करत्न ने 'कंसवध' नामक नाटक लिखा। चंद्रावली के कृष्ण-प्रेम पर आधारित 'चंदावली' (1890) नामक राजकृष्णराय का गीति नाट्य है, जो चंद्रावली की मान विषयक एक हास्य-रचना है। कृष्ण कथान्तर्गत 'प्रभास मिलन' को लेकर बंगला में कई नाटक लिखे गये। नगेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय ने 1870, गिरीशचंद्र घोष (1878), बिहारीलाल चट्टोपाध्याय ने 1887 तथा कालीकृष्ण मुखर्जी ने 1900 में 'प्रभास मिलन' लिखा। कृष्ण जन्मोत्सव पर आधारित गिरीशचंद्र कृत नंद दुलाल (1900), अतुलकृष्ण मित्र कृत नंदविदाय (1888) हैं। बंगला में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं पर आधारित नाटकों की संख्या सर्वाधिक हैं, जिनमें से प्रमुख दोललीला (गिरीशचंद्र घोष, 1878), शरद प्रतिमा (मदनमोहन मित्र, 1878), कृष्ण लीला (कुंजबिहारी बसु, 1884), युगल मिलन (त्रैलोक्यनाथ, 1886) बनलीला, प्यारीमोहन चौधुरी, 1888, रासलीला, मनमोहन बसु, 1889, लीला, अघोरनाथ पाठक, 1891, योगेश, सुरेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय, 1891, प्रेमाजलि, क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद, 1896, फूलशय्या, क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद, 1894, मिलन, हरि अन्वेषण, बिहारीलाल चट्टोपाध्याय, 1894), मानकुंज, अमरेन्द्रनाथ दत्त, 1894, रूपमाधुरी, मन्मथनाथ मित्र, 1894, मान वैकुंठनाथ बसु, 1894, दानलील, नगेंद्रनाथ घोष, 1895, कृष्णेर बाल्यलीला, दुर्गादास दे, 1890, राधाकुंज, प्रमथानाथ राय, 1897, श्रीकृष्ण, अमरेन्द्रनाथ दत्त, 1899, बसंतलीला, ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर, 1900. लीलाम त, रामचंद्र दत्त आदि हैं।

7.6.1.3. अन्य पुराणों पर आधारित नाटक –

अन्य पौराणिक कथाएँ जिनपर अनेक नाटक लिखे गये हैं – हरिश्चंद्र, शकुन्तला, सावित्री तथा शिव-पार्वती से संबंधित हैं। सर्वप्रथम हम 1850-1900 के नाटकों के अगर लेंगे तो इसमें राजा हरिश्चंद्र की जीवनी पर हमें पाँच नाटक प्राप्त होते हैं – मनमोहन बसु का 'हरिश्चंद्र' (1874), रामनारायण तर्करत्न का 'धर्माविजय' (1875), रामगति न्यायरत्न का 'कुपति कौशिक' (1878), आशुतोष मुखोपाध्याय का 'हरिश्चंद्र' (1885), भोलानाथ मुखोपाध्याय का 'दुर्वासारपारण' (1875)। उर्वशी और पुरूरवा के आख्यान पर कामिनी सुन्दरी देवी कृत 'उर्वशी' (1866) और कालीप्रसन्नसिंह कृत 'विक्रमोर्वशी' (1857), नामक दो नाटक प्राप्त होते हैं। शकुन्तला के आख्यान पर बंगला में छह नाटक प्राप्त होते हैं जिनमें सर्वप्रथम नंदकुमार राय कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल' (1855) है। सावित्री के कथानक को लेकर चार नाटक लिखे गये – कालीप्रसन्नसिंह का 'सावित्री सत्यवान' (1858), हरिनाथ मजूमदार का 'सावित्री' (1874), केदारनाथ गंगोपाध्याय का 'सावित्री सत्यवान' (1878), गिरीशचंद्र घोष का 'सावित्री' (1898)। 'नल दयमंती' नामक तीन नाटक प्राप्त होते हैं जो क्रमशः उमाचरण दे (1869), भोलानाथ मुखोपाध्याय (1874) और गिरीशचंद्र घोष (1887) द्वारा लिखे गये। राजा श्रीवत्स की कथा को लेकर तीन नाटक लिखे गये – हरिमोहन कर्मकार कृत 'श्रीवत्साचिंता' (1884)। बंगाल की सर्वाधिक पूजित देवी दुर्गा पर चार नाटक प्राप्त होते हैं – दुर्गोत्सव (बिहारीलाल चट्टोपाध्याय, 1868), विजया प्रतिमा विसर्जन (1879) और 'माँ' (1894), सन् 1877 में प्रथम बार आमगनी की कथा को आधार बनाकर गिरीशचन्द्र घोष ने 'आमगनी' नाटक लिखा। उसी आधार पर उसी नाम से क्रमशः सन् 1870 में अतुलकृष्ण राय और राधामित्र न् 1880 में नाटक लिखे। हिमालय कन्या सती पर आधारित मनोमोहन बसु का 'सती नाटक' (1873) और गिरीशचंद्र घोष का 'दक्षयज्ञ' (1889) है। गिरीशचंद्र चूडामणि ने

'पार्वती परिणय' (1871) तथा केदारनाथ गंगोपाध्याय ने 'गौरीमिलन' (1878) में शिव-पार्वती विवाह को अपने नाटकों की कथावस्तु बनाया। हरिमोहन कर्मकार का मार्ग सर्वस्व (1870), राधानाथ मित्र का हरिविलास (1882), हरिभूषण भट्टाचार्य का कुमारसंभव (1887) तथा शिवचंद्र गंगार्णव का गंगेश (1898) लिखे गये। 'कुमारसंभव' नाटक कालिदास के 'कुमारसंभव' पर पूर्णतया आधारित है। पौराणिक स्त्री पात्रों का महत्व दर्शाने वाले नाटक भी लिखे गये, जैसे- मधुसुदनदत्त का शर्मिष्ठा (1858), रामानारायण तर्करत्न का रत्नावली (1858), कालिदास शर्मा का मुक्तावली (1859), केदानदाथ गंगोपाध्याय का 'चित्रांगिणी' (1872), कालिदास मुखोपाध्याय का मत्स्यधारा (1873)। इनके अतिरिक्त पौराणिक कथानकों पर आधारित अन्य नाटकों की नामावली इस प्रकार है –

निमाईचांद शील – तीर्थमहिमा (1873), वेणीमाधव घोष – ऋषि चरित्र (1873), भोलानाथ मुखोपाध्याय – मानभिक्षा (1875), वामन भिक्षा (1875), योगेन्द्रनाथ तर्कचूडामणि – कानन कथा (1879), प्रेमनाथ मित्र – शंभुसंहार 91880), अतुलकृष्ण – अप्सरकानन (1880), रत्नवेदी (1880), राजकृष्णराय – तारक संहार (1880), रवीन्द्रनाथ ठाकुर – वाल्मीकि प्रतिभा (1881), बिहारीलाल चट्टोपाध्याय – अहल्याहरण (1881), भुवनकृष्ण मित्र – धर्मपरीक्षा (1886), नगेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय – पुनर्वसंत (1899)।

7.7. बंगला के ऐतिहासिक नाटकों का उद्भव एवं विकास

1850 से 1900 तक लिखे गये ऐतिहासिक नाटकों में हमें दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है। एक तो इन नाटकों में हिन्दू राष्ट्र तथा हिन्दू जातियता की प्रशंसा तथा मुसलमानों और उनके अत्याचारों की भर्त्सना है। 1872 से 1900 के बीच लिखे गये नाटकों में हमें शुद्ध राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। इन नाटकों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है – नायक प्रधान और नायिका प्रधान। नायक प्रधान नाटकों में सर्वप्रथम ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर का 'पुरुविक्रम' (1874) नाटक है। इसके अतिरिक्त उमेशचंद्र गुप्त कृत 'महाराष्ट्र कलंक' (1875), हरलाल कृत 'बंगेर सुखावसान' (1874), राजकृष्णराय कृत 'लौह कारागार' (1878), अतुलकृष्ण कृत 'बाप्पाराव' दि नाटकों का निर्माण हुआ।

नायिका प्रधान नाटकों की संख्या नाटक प्रधान नाटकों की अपेक्षा कहीं अधिक है। माइकेल के 'कृष्णाकुमारी' (1861), दीनबंधु कृत 'कमले कामिनी' (1870) जगबंधु कृत देवली देवी (1870), ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'सरोजिनी' (1875), अश्रुमती, (1875), स्वप्नमयी (1879), हरलाल राय कृत हेमलता (1873), उमेशचंद्र गुप्त कृत 'बीरबाला' (1875) आदि नाटक प्रमुख हैं।

सन् 1901 से 1934 के मध्य लिखे गये नाटकों में नाटककारों में मुस्लिम काल को प्रमुखता दी है। तथा मुसलमान पात्रों का सहानुभूति पूर्ण चित्रण किया है और कई बार उन्हें राष्ट्रीय नायकों के पद पर प्रतिष्ठित किया है। इस काल के ऐतिहासिक नाटकों में द्विजेन्द्रलाल राय कृत ताराबाई (1903), प्रतापसिंह (1905), दुर्गादास (1915), नूरजहाँ (1908), मेवाड़पन (1908), शाहजहाँ (1909), चंद्रगुप्त (1911), सिंहल विजय (1915), सोहराव रुस्तम (1908), क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद कृत रघुवीर (1903), प्रतापादित्य (1903), पलाशीर प्रायश्चित (1906), पद्मिनी (1906), चांद बीबी (1907), अशोक (1908), बांगलार मसनद (1910), आलमगीर (1921), विदूरथ (1922), मनमोहन राय कृत रजिया (1902), हरिसाधन मुखोपाध्याय कृत औरंगजेब (1904), निशिकांत बसु राय कृत

'देवलादेवी' योगेशचंद्र कृत दिग्विजयी (1928), अपरेशचंद्र कृत 'राखीबंधन' (1920), अजोध्यार बेगम आदि की गणना होती है।

सन् 1934 के बाद का काल रवीन्द्रोत्तर काल कहलाता है। इसके पुनः दो भाग हो सकते हैं- युद्ध पूर्व (1934-45) तथा युद्धोत्तर (1945-60 तक)। युद्ध पूर्व बंगला में ऐतिहासिक नाटक बहुत कम लिखे गए। मन्मथ राय ने खना (1935), अशोक (1934), और अम त अतीत की रचना की। युद्ध पूर्व के अधिकांश नाटकों में हिन्दू-मुस्लिम एक्ट पर आधारित शुद्ध राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की गौरव गाथा गायी गयी है। इन नाटकों में मन्मथ राय की 'मोरकासिम' (1939), शचीन्द्रसेनगुप्त का 'गैरिक पताका' (1930), सिराजुद्दौला (1938), धापी पन्ना (1944), राष्ट्रविप्लव (1945), कमाल अतातुर्क महेन्द्रगुप्त का 'पंजाब केशरी रंजीतसिंह' (1944), निशिकांत बसु राय के 'बंगेबर्गी', 'देवला देवो', रमेश गोस्वामी का 'केदारराय' (1936), पीरेन्द्रमोहन मुखोपाध्याय का 'पलाशी' (1945) तथा योगेश चौधुरी का 'दिग्विजयी' (1928) प्रसिद्ध है। 'दिग्विजयी' में नादिरशाह का जीवन चित्रित है।

युद्धोत्तर कालीन बंगला साहित्य में नाटक लिखे ही नहीं गये। मात्र एक नाटक का पता चलता है और वह है महेन्द्रगुप्त का 'रायगढ़' (1947)।

द्विजेन्द्रलाल राय के नाट्य साहित्य को हम कथावस्तु के आधार पर चार भागों में बांट सकते हैं।

1. ऐतिहासिक – ताराबाई (1903), प्रतापसिंह (1905), दुर्गादास (1906), नूरजहाँ (1908), मेवाड पतन (1908), शाहजहाँ (1909), चंद्रगुप्त (1911), सिंहल विजय (1915), सुहराब रुस्तम (1918)।
2. पौराणिक – पाषाणी (1900), सीता, (1908), भीष्म (1914)।
3. सामाजिक प्रहसन – कल्कि अवतार (1895), विरह (1895), त्रयःस्पर्श का सुखी परिवार (1900), प्रायश्चित (1902), पुनर्जन्म (1912), आनंदविदाय (1912)।
4. सामाजिक (समस्या प्रधान) – परपारे (1912), बंगनारी (1916)।

उपर्युक्त नाटकों के परिप्रेक्ष्य में जब हम राय की नाट्यकला पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि उनकी नाट्यकला प्रारंभ से अंत तक विकासशील रही है।

उनके प्रारंभिक नाटकों में काव्यमय संवादों की अतिशयता पायी जाती है, साथ ही काव्य गुण की नाटकीयता के साथ सामंजस्य दृष्टिगोचर नहीं होता किंतु परवर्ती कृतियों में यह समन्वय हो जाता है और नाट्यकार संयम से काम लेता दिखाई देता है। 'ताराबाई' (1903) के बाद में अधिकांश नाटकों को द्विजेन्द्रलाल ने गद्य में ही लिखा है, यह उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है – 'लोग बातचीत पद्य में नहीं गद्य में करते हैं . अतएव पद्य में नाटक की रतना करने से संवाद अस्वाभाविक लगते हैं। इसलिए मैंने 'ताराबाई' के परवर्ती नाटकों (प्रतापसिंह, दुर्गादास, नूरजहाँ, मेवाड पतन आदि। की गद्य में ही रचना की। किन्तु कविता से मुझे अत्यधिक प्रेम है, अतएव गद्य की भाषा को कविता के आसन पर बिठाने के लोभ का त्याग मैं नहीं कर पाता।'

उनके नाटकों में प्रारंभ से अंत तक सुन्दर तथा मधुर गीतों की प्रचुरता है। ये गीत इतने सुन्दर हैं कि कभी-कभी तो ऐसा लगता है मानो गीतों के लिए ही दृश्यों की अवतारण की गयी है। नाटकों की यह संगीतमयता ही उनकी सबसे अपूर्व विशेषता और गुण है। उन गीतों की स्पर्धा करने वाले कम ही गीत तत्कालीन कविता में ढूँढे जा सकते हैं।

द्विजेंद्रलाल राय की भाषा को एक आलोचक (सुधार चट्टोपाध्याय) ने 'उच्छ्वसित हृदयावेग मंडित अलंकार बहुल' नाम दिया है। बंगला में उनके पूर्व, रवीन्द्रनाथ के अतिरिक्त अन्य किसी नाटककार ने उपर्युक्त प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं किया है। राय की भाषा पर कृत्रिमता, एकरूपता तथा अति काव्यमयता के कारण अस्वाभाविकता का दोषारोपण आलोचकों द्वारा किया जाता रहा है। वे उच्च-नीच तथा काल-स्थान भेद से भाषा की विविधता नहीं उत्पन्न कर सके। इनकी भाषा के विषय में आलोचक रवीन्द्रनाथ ने ठीक ही कहा है – 'नाटककार के स्थान-काल-पात्र को भूलकर विह्वल रूप तृषा को ही काव्यधर्मी गद्य में रूपान्तरित किया है। द्विजेन्द्रलाल जैसे काव्य के गीतों तरंगों पर तैरने लगते हैं, अपनी कवि-काकली में खुद ही रास्ता भूल जाते हैं और क्षण भर के लिए भूल जाते हैं कि यह काव्य नहीं, नाटक है।'

वीर रस, उच्छ्वसित आदर्शवाद और उत्कट देश-प्रेम तथा युवा हृदय के स्वप्नावेश से नाट्यकार ने अपनी भाषा को अलंकृत किया है। किन्तु जीवन का प्रत्येक क्षण उच्च भावों को लेकर प्रवाहमान नहीं होता। साधारण दैनदिन जीवन के स्तर पर कभी उनकी भाषा नहीं उतरती यही उसकी कमी है। राय के प्रारंभिक नाटकों में स्वगत-कथन की प्रचुरता है किन्तु 'नूरजहाँ' (1908) में प्रथम बार उन्होंने स्वगतोक्तियों को त्याग दिया। परवर्ती काल में लिखे गये नाटकों में कहीं भी स्वागत-भाषण प्राप्त नहीं होता। एक प्रकार से उनके अधिक संख्यक नाटक इस दोष से मुक्त हैं। 'नूरजहाँ' की भूमिका में स्वयं नाट्यकार ने लिखा है –

'मैंने इस नाटक में दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति में किसी पात्र की स्वगतोक्ति को एकदम से वर्जित कर दिया है। एक व्यक्ति की इस प्रकार चीत्कार करके की गयी स्वगतोक्ति, जिसे समरत श्रोतागण सुन सकते हैं, केवल उसके पार्श्व में स्थिति नट-नटी ही नहीं सुन पा रहे हैं, यह जबरदस्ती हमें हास्यकर लगी।'

राय के नाटकों का चरित्र-चित्रण सबल और स्पष्ट है। इसके कई कारण हैं। एक तो इनके नाटक रोमांटिक होते हुए भी शेक्सपियर के नाटकों से प्रभावित हैं और दूसरे नाटकों की रमवादिता में राय की आस्था नहीं है। उन्होंने अपने नाटकों में कम चरित्रों और उप-कथाओं को स्थान दिया है, फलस्वरूप उनके नाटकों में चरित्र-चित्रण के लिए पर्याप्त अवकाश है। उनके पात्रों का बहिर्द्वन्द्व उनके आंतरिक अन्तर्द्वन्द्व के फलस्वरूप उपस्थित होता है।

राय ने अपने नाटकों में शेक्सपियर के किंग लियर और हैलमेट की भांति ट्रैजिक चरित्रों का निर्माण किया है। उनके 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' के मुख्य चरित्र ट्रैजिक पात्रों के रूप में अद्वितीय है। रवीन्द्रनाथ के शब्दों में – 'द्विजेन्द्रलाल की नाट्य-प्रतिभा की अनेक दुर्बलताएँ और अपूर्णताएँ हैं किन्तु बंगला नाटक में सर्वप्रथम शेक्सपियर की नाट्य शैली को सार्थक भाव से रूपायित करने की चेष्टा उन्होंने ही की। अन्तर्द्वन्द्व सृष्टि और 'ट्रैजडी' की परिकल्पना उनके बीच सबसे प्रमुख है।'

द्विजेन्द्रलाल अपने नाटकों में संकलन-त्रय की ओर जागरूक हैं। अधिकांश नाटकों में स्थान और काल के संकलन की चिंता किये बिना भी उन्होंने घटनावली के गठन पर ध्यान रखा है। अतः यह कहा जा सकता है कि बंगला नाटकों में पाश्चात्य नाट्य शैली के अनुकरण पर द्विजेन्द्रलाल राय ने प्रथम बार विस्तृत रंगमंच निर्देश देना प्रारंभ किया। इस संदर्भ में पी. आर. सेन ने कहा है – 'आडंबरपूर्ण विस्तृत रंगनिर्देश और रंगसज्जा उनकी विशेषता थी। यह प्रभाव भी उन्होंने पश्चिम से ग्रहण किया था, संभवतः शॉ और गाल्सवर्दी से।'

7.8. सारांश

अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय साहित्य में बंगला साहित्य की प्रसिद्धि इस बात का प्रमाण है कि साहित्य का गद्य रूप किस प्रकार का होता है। बंगला का गद्य साहित्य काफी विस्तृत रहा और उसके बाद ही भारत के अन्य प्रांतों में साहित्य लेखन की एक धारा को प्रवाह मिला। इस पाठ के अंतर्गत हमने बंगला साहित्य के सफल विधाओं पर विस्तृत रूप से चर्चा करने का प्रयास किया है। इसमें बंगला के उपन्यासों के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला तथा बंगला साहित्य में उपन्यासों का महत्व रहा है इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। वहीं दूसरी तरफ गद्य की सफल या लघु गद्य के रूप में बंगला की कहानी के उद्भव एवं विकास की चर्चा करते हुए उसे काल क्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास इस पाठ के माध्यम से किया जा रहा है। इसमें बंगला के प्रसिद्ध कहानीकार और उनकी कहानियों पर विस्तार से चर्चा की गया है। पाठ के अंतिम भाग में गद्य के सबसे रोमांचक विधा याने बंग भाषा के नाटकों पर चर्चा की गयी है जिसमें बंगला साहित्य के नाटकों में पौराणिक नाटक, आख्यान तथा बंगला भाषा के ऐतिहासिक नाटक आदि की जानकारी देना का प्रयास किया है। जिसमें बंगला के प्रसिद्ध नाटककारों के नाटकों को काल क्रमानुसार दिखाने का भी प्रयास किया गया है।

7.9. बोध प्रश्न

1. बंगला साहित्य के उद्भव और विकास के बारे में लिखिए।

2. बंगला साहित्य के उपन्यास का उद्भव और विकास के बारे में लिखिए।

3. बंगला भाषा का कहानी और नाटकों के बारे में सोदाहरण रूप में लिखिए।

7.10. सहायक ग्रंथ

1. भारतीय भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास- केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।

2. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास- डॉ. नगेन्द्र।

3. समकालीन भारतीय साहित्य – डॉ. नगेद्र।

डॉ. सोनकांबळे पिराजी मनोहर

8. बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का योगदान

8.0. उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप जान पाएंगे

1. इस पाठ के माध्यम से आप रवीन्द्रनाथ टैगौर का परिचय प्राप्त करेंगे।
2. रवीन्द्रनाथ और भारतीय साहित्य के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. रवीन्द्रनाथ और बंगला भाषा के अंत संबंध को जान पाएंगे।
4. रवीन्द्रनाथ का बंगला साहित्य में क्या महत्व रहा है यह भी जान पाएंगे।
5. रवीन्द्रनाथ बंगला साहित्य में क्या योगदान रहा है।
6. रवीन्द्रनाथ और बंगला कविता का परिचय प्राप्त करेंगे।
7. रवीन्द्रनाथ और बंगला कविता के अंत संबंध से परिचित होंगे।
8. रवीन्द्रनाथ और बंगला गीति नाट्य से परिचित होंगे।

रूपरेखा

8.1. प्रस्तावना

8.2. रवीन्द्रनाथ टैगोर व्यक्ति एवं रचनाकार

8.3. बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का योगदान

8.4. सारांश

8.5. बोध प्रश्न

8.6. सहायक ग्रंथ

8.1 प्रस्तावना

रवीन्द्रनाथ टैगोर एक बंगला कवि, कहानीकार, गीतकार, संगीतकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार थे। वह आधुनिक युग के एक महान दार्शनिक एवं शिक्षाविद थे। अपने मौलिक एवं नये विचारों के माध्यम से उन्होंने भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अपनी भारतीय संस्कृति के आधार पर ये केवल भारतीय शिक्षा की नींव ही नहीं डाली वरन् पाश्चात्य शिक्षा में भी पूर्व एवं पश्चिम के आदर्शों को नये रूप में स्थापित किया। इनके इन्हीं महान कार्यों के कारण राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने उन्हें 'गुरुदेव' की उपाधि से सम्मानित किया था। बंगला साहित्य को शिखर पर आसीन करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ जा को प्राप्त है उन्होंने साहित्य सृजन किया है जिनमें उपन्यास, निबंध, कहानियाँ आदि प्रमुख है। रवीन्द्रनाथ जी ने अनेक शक्तिशाली राजनीतिक लेख भी लिखे, जिसके कारण उस समय कुछ राजनीतिक परिवर्तन भी नजर आया। रवीन्द्रनाथ को कविता लिखने का काफी शौक था। कवि रवीन्द्र के जीवन में न केवल कविता ही घुली-मिली नहीं थी बल्कि साहित्य, सभ्यता, कला और शिक्षा का भी उनमें अद्भुत समन्वय था

। अपने लेखों में उन्होंने प्रचलित राजनीतिक विचारधारा के प्रति असहमति प्रकट की थी । उनका विचार था कि वास्तविक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हृदय परिवर्तन, आंतरिक शुद्धि और साथ ही सामाजिक कार्यक्रम स्वीकार करके तदनुसार कार्य करना आवश्यक है । भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ रूप से पश्चिमी देशों का परिचय और पश्चिमी देशों की संस्कृति से भारत का परिचय कराने में टैगोर की बड़ी भूमिका रही । उनके कार्यानुसार उन्हें आधुनिक भारत का असाधारण सृजनशील कलाकार माना जाता है ।

8.2. रवीन्द्रनाथ टैगोर व्यक्ति एवं रचनाकार

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म 6 मई, 1861 ई. को प्रातः तीन बजे हुआ था । इनके पिता का नाम देनेन्द्रनाथ था । रवीन्द्रनाथ अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे थे । क्योंकि इनके माता-पिता की पंद्रहवीं संतान की मृत्यु सूतिकागृह में ही हो गयी थी । रवीन्द्रनाथ के जन्म के समय पिता की अवस्था 44 वर्ष तथा माता की अवस्था 36 वर्ष की थी । अंतिम संतान होने के कारण इनका स्वास्थ्य बचपन से ही अच्छा था । रवीन्द्रनाथ का बचपन सुखप्रद एवं स्वर्गमय था । इनका मन बचपन से ही कल्पनामय था । ये सदैव कल्पना सागर में गोता लगाते रहते थे । अपने विद्यार्थी जीवन में रवीन्द्रनाथ तड़के ही कुश्ती लड़ने का अभ्यास करते थे । अखाड़े से निवृत्त होने पर मेडिकल स्कूल के एक छात्र की प्रतीक्षा में इनका समय बीतता था । सवेरे के सात बजे मास्टर नीलकमल से वे ट्यूशन पढ़ते थे । रवीन्द्रनाथ का मन कविता-संगीत के अतिरिक्त किसी विषय में लगता ही नहीं था । सवेरे के दस बजे स्कूल जाना तथा साढ़े चार बजे सायं व्यायाम, शाम को ड्राईंग, अंग्रेजी अध्यापक द्वारा शिक्षा प्राप्त करना रवीन्द्रनाथ की दिनचर्या थी । इस प्रकार सवेरे छः बजे से रात्रि दस बजे तक रवीन्द्र का जीवन व्यस्तमय रहता था । एक घंटे की भी फुर्सत इन्हें नहीं मिल पाती थी ।

सन् 1873 ई. में दो अन्य भाईयों के साथ रवीन्द्रनाथ का उपनयन संस्कार हुआ । अपने पिता महर्षि देनेन्द्रनाथ के सान्निध्य में रहकर रवीन्द्रनाथ को असीम ज्ञान भंडार की प्राप्ति हुई । इन्होंने अपने पिता के साथ देशाटन भी खूब किया । बोलपुर से चलकर साहबगंज, दानापुर, इलाहाबाद, कानपुर आदि स्थानों पर भ्रमण करते हुए रवीन्द्रनाथ अम तसर अपने पिता के पास पहुँचे । वहाँ पर प्रकृति की सुन्दर छटा ने रवीन्द्र को आत्मविभोर कर दिया । इनका अध्ययन कार्य वहाँ भी चलता रहा । कुछ समय के उपरान्त इनके पिता ने इन्हें कलकत्ता वापस भेज दिया । लगभग तेरह वर्ष की अवस्था प्राप्त करते ही उनकी माता शारदादेवी का स्वर्गवास हो गया ।

8.3. बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का योगदान

रवीन्द्रनाथ टैगोर एक महान कवि, उपन्यासकार, शिक्षाविद, चित्रकार एवं विचारक थे और भारतीय साहित्य के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता हैं । वे बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान फूँकने वाले युगदृष्टा थे । वे एशिया के प्रथम नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले व्यक्ति थे । वे एक मात्र कवि हैं जिनकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनी – भारत का राष्ट्रगान 'जन गन मन अधिनायक जय हो ।' तथा बांग्लादेश का राष्ट्रगान 'आमार सोनार बांग्ला ।'

गुरुदेव के नाम से प्रसिद्ध रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बांग्ला साहित्य और संगीत को एक नई दिशा दी । उन्होंने बंगाली साहित्य में नए तरह के पद्य और गद्य और बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया । इससे बंगाली साहित्य

क्लासिकल संस्कृत के प्रभाव से मुक्त हो गया। टैगोर की रचनाएँ बांग्ला साहित्य में नई बहार लेकर आई। उन्होंने एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखें। इन रचनाओं में, 'चोखेर बाली', 'घरे बहिरे, 'गोरा' आदि शामिल हैं। उनके उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज विशेष रूप से उभर कर सामने आया। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं में उनकी रचनात्मक प्रतिभा सबसे मुखर हुई है। उनकी कविताओं में नदी और बादल की अठखेलियों से लेकर अध्यात्मवाद तक के विभिन्न विषयों को बखूबी उकेरा गया है। इसके साथ ही उनकी कविताओं में उपनिषद जैसी भावनाएँ भी महसूस होती हैं। साहित्य की शायद ही कोई विधा हो जिनमें रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ ना हो। उन्होंने कविता, गीत कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं में रचना की है। उनकी कई कृतियों का अंग्रेजी अनुवाद किया गया है। अंग्रेजी में अनुवाद के बाद पूरा विश्व उनकी प्रतिभा से परिचित हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाटक भी अनोखे हैं। वे नाटक सांकेतिक हैं। उनके नाटकों में डाकघर, राजा, विसर्जन आदि शामिल हैं। टैगोर का कथा साहित्य एवं भले ही बंकिम चंद्र और शरत चंद्र की तरह लोकप्रिय न रहा हों, लेकिन साहित्य के मापदंडों पर उनका कथा साहित्य बहुत उच्च स्थान रखता है। उन्होंने बांग्ला साहित्य में नए मानक रचे जो आगे आने वाले बांग्ला साहित्यकारों के लिए एर प्रेरणास्त्रोत बने। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बांग्ला सभ्यता की अच्छाइयों को पश्चिम में तथा पश्चिम की अच्छाइयों को यहाँ लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बचपन से कुशाग्र बुद्धि के रवीन्द्रनाथ टैगोर ने देशी और विदेशी साहित्य, दर्शन, संस्कृति आदि को अपने अंदर समाहित कर लिया था। वे मानवता को विशेष महत्व देते थे। इसकी झलक उनकी कृतियों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। नोबेल पुरस्कार प्राप्त कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साहित्य, संगीत, कला, रंगमंच और शिक्षा के क्षेत्र में अपनी अनूठी प्रतिभा का परिचय दिया।

बचपन से ही रवीन्द्रनाथ की विलक्षण प्रतिभा का आभास होने लगा था। उन्होंने पहली कविता मात्र आठ वर्ष की आयु में लिखी थी और केवल 16 वर्ष की आयु में पहली लघुकथा प्रकाशित हुई थी। उन्होंने 2 हजार से अधिक गीतों की रचना की। रवीन्द्र संगीत बांग्ला संस्कृति का अंग बन गया। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से प्रभावित उनके गीत मानवीय भावनाओं के विभिन्न रंग पेश करते हैं। टैगोर के संगीत को उनके साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। उनकी अधिकतर रचनाएँ अब तो गीतों में शामिल हो चुकी हैं। उनके गीत हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के ठुमरी शैली से प्रभावित है। अलग-अलग रागों में गुरुदेव के गीत यह आभास कराते हैं, मानो उनकी रचना उस राग-विशेष के लिए ही की गई हो। गुरुदेव सही मायने में विश्व कवि होने की पूरी योग्यता रखते हैं। उनके काव्य के मानवतावाद ने उन्हें दुनिया भर में पहचाना जाता हैं। दुनिया की तमाम भाषाओं में आज भी टैगोर का बांग्ला साहित्य, संगीत, संस्कृति आदि को विश्व के समक्ष शानदार तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है। बांग्ला साहित्य और संगीत को उन्होंने सही मायने में एक नई दिशा और दशा प्रदान की है।

रवीन्द्रनाथ ने अपने आयु के तेरह या चौदह वर्ष में ही साहित्य के क्षेत्र में अपने कदम बढ़ाये थे। इनका प्रथम लेख 'ज्ञानांकुर' नामक मासिक पत्रिका में निकला। इसके बाद इसी पत्रिका में 'वनफूल' नामक कविता का भी प्रकाशन हुआ। 'भारती' नामक पत्रिका में रवीन्द्रनाथ के कई लेख छपे। इन रचनाओं में 'कवि-काहिनी' नामक रचना सर्व प्रसिद्ध है। सन् 1877 ई. में 'भानुसिंहेर पदावली' नामक रचना इसी पत्रिका 'भारती' में छपी। ठाकुर-परिवार के सदस्यों द्वारा आयोजित 'हिन्दू मेला' में रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक रचना जो देश प्रेम विषयक थी, जनता के सामने एक

वृक्ष के नीचे खड़े होकर सुनायी थी। यह रचना कविता के रूप में थी जो फरवरी, सन् 1875 की अमृत बाजार पत्रिका में छपी थी।

17 वर्ष की अवस्था में रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ ने ठाकुर रवीन्द्रनाथ को विलायत ले जाने का प्रस्ताव रखा, जिसे उनके पिता ने स्वीकार भी कर लिया। उन दिनों सत्येन्द्रनाथ अहमदाबाद में जज थे। इंग्लैंड में सत्येन्द्रनाथ के बच्चों के साथ बाइटन में रवीन्द्र को भी रहना पड़ता था। कानून की शिक्षा दिलाने के लिए कुछ समय के उपरान्त रवीन्द्रनाथ को लन्दन यूनिवर्सिटी में भेज दिया गया। इस प्रवास का कवि के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी लेखकों का प्रभाव रवीन्द्र के हृदय में घर कर गया। अब वे विदेशी लेखकों के काव्यों की आलोचना 'भारती' में छपवाने के लिए प्रेषित करने लगे। इस कवि की छंद रचना शैली में घोर परिवर्तन हुआ और अब वे पुराने छंदों के स्थान पर नये प्रकार के छंदों की रचना करने लगे। सन् 1879-80 में इन्होंने यूरोप-प्रवास के कुछ अनुभव 'भरती' पत्रिका में छपवाये।

विलायत से लौटने के बाद रवीन्द्रनाथ कुछ समय तक अपने भाई ज्योतिरन्द्र ठाकुर के साथ चंद्र नगर में रहें। इन दिनों इन्होंने कई सुन्दर कविताओं की रचना की। इन गीतों (कविताओं) का संग्रह 'संध्या संगीत' के नाम से बाद में प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में अंग्रेजी कवि 'शेली' का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, इसलिए रवीन्द्रनाथ के बंगाली मित्र इन्हें 'बंगाल का शेली' कहने लगे। सन् 1881 ई. 'भारती' में रवीन्द्रनाथ के प्रथम उपन्यास 'बो ठाकुरानीर हाट' का प्रकाशन हुआ। सन् 1884 में 'करुणा' नामक रचना क प्रकाशन कार्य 'भारती' में प्रारंभ हुआ। लेकिन दुर्भाग्यवश यह रचना अपूर्ण ही रही।

उपर्युक्त रचनाओं केप पश्चात रवीन्द्रनाथ का दूसरा गीत-संग्रह 'प्रभावसंगीत' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस गीत-संग्रह में 'निझरेर स्वप्न भंग' सर्वश्रेष्ठ कविताओं में से एक है। इसी समय के दौरान कवि अपने भाई सत्येन्द्रनाथ के यहाँ खारवार गये। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों से प्रभावित होकर एक पद्य नाटक 'प्राकृतिर प्रतिगोध' का सृजन किया। काव्य की दृष्टि से यह रचना पिछली रचनाओं से अधिक प्रौढ़ प्रतीत होती है।

सन् 1884 में इनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक 'छवि ओ गान' प्रकाशित हुई। इसी समय इनके कई लेख बालक और अक्षयचंद्र सरकार द्वारा प्रकाशित 'नवजीवन' पत्रिका में छपे।

सन् 1883 ई. से सन् 1887 तक रवीन्द्रनाथ की चार पुस्तकें प्रकाशित हुई थी जिनमें – विविध प्रसंग, आलोचना, समालोचना और चिट्ठी-पत्री। इन पुस्तकों में तत्कालीन साहित्यिक निबंध, सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं पर विचार-विमर्श की रूपरेखा है।

मानव जीवन की विचित्र रंगलीला की पूर्ण अभिव्यक्ति कवि के 'कड़ि ओ कोमल' रचना में मिलती है। कवि के मानसिक विकास का परिचय दो ही रचनाओं में मिलता है – 'छबि ओ गान', 'कड़ी ओ कोमल'। पच्चीस वर्ष की तरुणावस्था में यौवन के विचित्र स्वप्न, प्रेम, प्रकृति, नारी, सौंदर्य-रहस्य, स्वदेश आदि कवि के हृदय को स्पर्श करने लगा। स्वदेश-प्रेम संबंधी रचनाओं में 'वंगवासीर प्रती' तथा 'आह्वान गीत' सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

यौवन स्वप्न में कवि ने नारी, प्रकृति, भोग, प्रेमादि का दर्शन किया। इसी सौन्दर्य से आकर्षित होकर कवि को मृत्यु की अपेक्षा जीवन से प्यारा है। कवि का यौवन स्वप्न सर्वत्र विद्यमान है जैसे –

आमार यौवन-स्वप्ने येन छेय आछे विश्वेर आकाश,

फुलगुलि गाये ऐसे पड़े रूपसीर परशेर मतो।

पराणे पुलक विकाशिया बहे केन दक्षिणा बलास,

जेथा छिल जत विरहिणी सकलेर कुड़ाये निःश्वास।

(अर्थात्- 'हमारे यौवन-स्वप्न ने जैसे विश्वाकाश को आच्छादित कर दिया है, फूल हमारे शरीर पर उसी प्रकार पड़ते हैं जैसे, सुन्दरियों के शरीर का स्पर्श। प्राणों को पुलकित करके मलय पवन क्यों बह रहा है, यहाँ तो सभी विरहिणियों का निःश्वास संचित हैं।')

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि प्रकृति के भीतर यौवन स्वप्न देख रहा है।

यौवन संबंधी रचनाएँ कुछ बंगाली पंडितों के नाक भौंह सिकोड़ने का कारण बनीं। ये रचनाएँ इस प्रकार हैं – 'रतन' , 'चम्बन', 'विवसना', 'पूर्ण मिलन' आदि।

विवसना में कवि कहते हैं कि –

फेलो गो वसन फेला-घुचाओ अंचल।

परो शुघू सौंद्रयेंर नग्न आवरण

सुर बालिकार देश किरण बसन।

परिपूर्ण तनुखानि-विकच कोमल,

जीवनेर, यौवनेर, लावण्येर मेला।

(अर्थात् – 'ओ जी! वस्त्र फेंको अंचल हटाओ! पहन लो केवल सौंदर्य का नग्न आभूषण। परिपूर्ण शरीर-विकच कोमल, जीवन, यौवन और लावण्य का मेला।'

कवि ने 'स्तन' कविता में नारी के स्तन को पवित्र सुमेरु, देव-विहार-भूमि, धरती का स्वर्ग, देव-शिशु, मानव की मात भूमि कहा है। इसमें कवि के पवित्र मनोभावों की पवित्र अनुभूति होती है। इसमें जरा-सी भी वासना की बू तक नहीं है। कवि की यौवन संबंधी रचनाओं में भोगाकांक्षा, यौनाकर्षण की उपेक्षा भावाकर्षण अधिक प्रबल है। इन रचनाओं में कवि ने यथार्थवाद का उचित प्रयोग किया है। यौवनावेश कविवर रवीन्द्रनाथ को धार्मिक विश्वासों से दूर न कर सका। 1887 ई. में कवि ने सन् 1917 ई. तक निभाया।

रवीन्द्रनाथ बंगला साहित्य में एक सफल नाटककार के रूप में भी आते हैं। नाटक संबंधी प्रारंभिक रचनाएँ 'मेलोड्रामेटिक' गीत है। इसके पश्चात के नाटकों की कथावस्तु का आधार पौराणिक है। रवीन्द्रनाथ ने 'वाल्मीकि

प्रतिभा' की तरह सन् 1888 में गीति नाट्य प्रकाशित किया जो 'मायार खेला' 'कड़ि ओ कोमल' के नाम से विख्यात है। इन नाटिकाओं में 'गीत' का प्रधानता है। चरित्र-चित्रण और नाटकीय गति को सफलता में कवि का प्रसिद्ध नाटक 'राजा ओ रानी' है।

सन् 1887 ई. में कवि ने एक नवीन उपन्यास 'राजर्षि' की रचना की। इसी उपन्यास को सन् 1890 में परिवर्तित करके नाटक का रूप दिया जिसका नाम 'विसर्जन' है। रसिक समाज में 'विसर्जन' का भव्य स्वागत हुआ। 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में कवि कुछ दिनों के लिए गाजीपुर के निवासी बन गए। यहीं पर इन्होंने कुछ कविताओं का संग्रह किया जो 'मानसी' के नाम से प्रकाशित हुआ। 'मानसी' के अंतर्गत उपहार, सिंधु, तरंग, मेघदूत, अहल्यार पति, कुहू-ध्वनि, वधु, अपेक्षा, एकाल ओ सेकाल आदि कविताओं के समूह मिलते हैं। इन कविताओं में कवि का ध्वनि-गांभीर्य, गंभीर-चिन्तन, मन का उन्मुक्त प्रसार, सबल कल्पना-लोक का दर्शन होता है। 'मानसी' की कविताओं को तीन कोटिओं में विभाजित किया गया है – निसर्ग संबंधी, प्रेम संबंधी, देश संबंधी। देश-संबंधी कई गीत 'मानसी भंडार' में सुरक्षित है। इन कविताओं में दुरन्त आशा, देशेर उन्नति, बंगवीर, गुरु गोविन्द, धर्म-प्रचार आदि प्रसिद्ध हैं।

30 वर्ष की अवस्था में कवि रवीन्द्रनाथ यूरोप यात्रा पर गये। यूरोप यात्रा वर्णन में कवि ने कई सुन्दर लेखों का सृजन किया। 'साधना' नामक पत्रिका में ये लेख 'यूरोप यात्रीर डायरी' नामक शीर्षक से क्रमशः छपते रहे। 1891 ई. में रवीन्द्रनाथ की प्रख्यात नाटिका 'चित्रागंदा' का प्रकाशन हुआ। इस नाटिका का कथानक महाभारत से लिया गया है।

'साधना' पत्रिका का प्रकाशन सन् 1891 ई. में हुआ। कवि की कहानियों के प्रकाशन का श्रेय 'साधना' को ही है। इनकी प्रारंभिक कहानी 'घाटेर कथा' है। 'मध्यवर्तिनी' नामक कहानी में कवि ने भारतीय नारी के मनोभावों का सफल अंकन किया है। 'पोस्ट मास्टर' नामक कहानी कथानक प्रधान न होकर मनोविश्लेषण प्रधान है। 'एक रात्रि' कहानी में वेदना का स्वर प्रतिध्वनित होता है। मानव और घटनाओं के साथ प्रकृति का अटूट संबंध 'सुभा' कहानी में विशेष रूप से पाया गया है। 'दुराशा' कहानी के अंतिम प्रसंग में करुण वेदना की पुकार है। 'नामंजूर गल्प' में राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की भावनाओं का सुन्दर चित्रण है। रवीन्द्रनाथ के कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें छोटा गल्प, विचित्र गल्प, काल्पचरिती, गल्पदशक, गल्पगुच्छ (5 भागों में), गल्पसप्तक प्रसिद्ध है। इस महापुरुष की अंतिम कहानी 'प्रगति संहार' है। इस कहानी में वर्तमान कालेज जीवन का सजीव चित्रण है।

उपर्युक्त रचनाओं के बाद कवि रवीन्द्रनाथ की कुछ और कविताएँ प्रकाश में आयी। इन कविताओं में सोमारतरी, विदाय-अभिशाप, चित्रा, चैताली, परश पाथर, जेते नाहि दिबो, समुद्रेर प्रति, मानस सुन्दरी, वसुन्धरा, प्रेमेर अभिषेक, एक बार फिराओ मोरे, उर्वशी, स्वर्ग हइते विदाय आदि है। कवि ने प्राणेर देवता में उपनिषद को निचोड़ रखा है। 'सोनारतरी' काव्य संग्रह की अंतिम रचना निरुद्देश्य यात्रा है। रवीन्द्रनाथ की चैताली (काव्य संग्रह) सन् 1896 सन् में प्रकाशित हुई।

सन् 1897 ई. के आसपास कवि ने 'गांधारीर-आवेदन', 'कर्ण-कुन्ती-संवाद' नामक तीन छोटे-छोटे गीति-आख्यानों की रचना की। गांधारीर-आवेदन तथा कर्ण-कुन्ती-संवाद के कथानक महाभारत ले लिये गये हैं। 'नरक

वास' में प्रतिज्ञा-पालन तथा आत्म-बलिदान की चर्चा है। इन्हीं दिनों 'चिरकुमार सभा' नामक एक प्रहसन की रचना रवीन्द्रनाथ ने की। 'मालिनी' का कथानक सीधा और सरल है।

सन् 1900 ई. में कवि द्वारा 'कथा' नामक पुस्तक की रचना हुई। इसी समय 'कहानी' का भी सृजन हुआ। विषय व वस्तु दोनों एर ही है। 'कथा ओ काहिनी' की बहुत-सी आख्यायें बौद्ध गाथाओं से ली गयी है। 'कणिका' नामक रचना में छोटे-छोटे चुटकुले पद्य रूप में दिये गये हैं। 'शक्तेर, क्षमा' में नारद और पृथ्वी के बीच होने वाले वार्तालाप का वर्णन है। 'आकांक्षा' में बंगला बोलचाल की भाषा में गीतों का संचयन कवि ने किया है। इस रचना को आलोचकों ने फूहड़ और गवांरू कहा है। फूहड़, गवांरू उपाधि प्राप्त करने का श्रेय इस रचना की भाषा को है। 'कल्पना' नामक रचाना में सभी गीत कल्पना प्रसूत है।

1901 में रवीन्द्रनाथ ने 'नैवेद्य' की रचना की। इसके सभी गीतों में प्रभु के प्रति भक्ति आत्म-निवेदन और आत्म-समर्पण है। इस रचना में भौतिकता को स्थान नहीं मिल पाया है। 1901 ई. में स्वर्गीय बंकिम बाबू के प्रसिद्ध पत्र 'बंगदर्शन' का प्रकाशन जो कि बंद हो चुका था, कवि रवीन्द्रनाथ ने पुनः आरंभ किया। रवीन्द्रनाथ का चतुर्थ उपन्यास 'चोखेरबाली' बंगदर्शन में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। सी वर्ष कवि शेलाइदह छोड़कर शान्ति निकेतन में स्थायी रूप से निवास के लिए आ गये। वहीं पर दो छात्रों और दो अध्यापकों को लेकर एक विद्यालय की स्थापना की। आगे चलकर इसी विद्यालय का नाम 'बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम' रखा गया।

आश्रम को आरंभ हुए एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि कवि की धर्मपत्नी मृणालिनी देवी ने इस सुनहरे संसार का परित्याग किया। पत्नी के असमय वियोग के फलस्वरूप कवि को अपार शोक हुआ। इस शोक का आभास उनके 'स्मरण' नामक काव्य-संग्रह में मिलता है। इसके बाद 1903 में कवि की छोटी कन्या रेणुका का देहावसान हो गया।

1904 ई. में कई कारणों से विवश होकर कवि रवीन्द्रनाथ शान्ति निकेतन आश्रम को शेलाइदह ले आए। प्रो. मोहितचंद्र सेन के प्रयत्न से रवीन्द्रनाथ के समस्त गीतों का 9 खंडों में 'काव्य ग्रंथ' नाम से संग्रह हुआ। इसी वर्ष धनाभाव के कारण रवीन्द्रनाथ ने अपनी समस्त कहानियों, कविताओं, छह नाटकों, तीन उपन्यासों और अनेक साहित्यिक निबंधों के प्रकाशन का अधिकार केवल दो हजार में 'हितवादी' के संचालकों को दे दिया। इसी वर्ष रवीन्द्रनाथ ने साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त राजनीति में भी दिलचस्पी दिखाई। इन्होंने एक क्रांतिकारी संस्था 'स्वदेशी समाज' की स्थापना की।

19 जनवरी 1905 ई. को इनके पिता की मृत्यु हो गयी। इसी समय कवि ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'खेया' के गीतों का लेखन-कार्य आरंभ किया। कवि ने राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत एक रचना का निर्माण किया जो एक जुलूस में गायी गई। इस गीत की शीर्षक है- 'बंगलार माटी, बंगलार जल'। इसके पश्चात कवि ने अपने नेतृत्व में पुनः एक जुलूस का संचालन किया। इस जुलूस के गीत का शीर्षक था – 'विधिर बंधन काटिबे तुमि एमनि शक्तिमान?' कवि ने स्वदेशी आंदोलन के संचालन हेतु 'राष्ट्रीय कोष' की स्थापना की, साथ ही साथ अपने बुलंद भाषण द्वारा इस कोष में पचास हजार रुपये तुरंत एकत्रित करवा दिए।

इस संघर्ष युग में कवि की समस्त रचनाएँ राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत थी। नवयुवकों में त्याग की भावना तथा मातृभूमि पर बलि हो जाने की प्रेरणा इस युग की कविता देती है। इस समय की रचनाओं में हमारी शिक्षा, हमारा समाज, हमारा धर्म, हमारा राष्ट्र जीवन, हमारे जीवन का आदर्श आदि निबंध हैं जो आंदोलन की रूपरेखा को सदैव निर्धारित कर रहे थे। कवि ने 'कुयार धारे' कविता में प्यासे पथिक के रूप में जीवन-देवता के दर्शन पाये हैं। 'बंदी' रचना में कवि ने सभी मानव को संसार का बंदी बताया है। 'खेया' के बाद 'नौका डुबि' उपन्यास की रचना कवि ने की।

रवीन्द्रनाथ की साहित्य सर्जना और राजनीतिक आन्दोलन दोनों अपनी प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर चुके थे। बंगाली नवयुवकों के वीरतापूर्ण कार्यों की चर्चा करते हुए कवि ने सन् 1908 ई. में 'प्रवासी' में अपना एक लेख 'सदुपाय' लिखा। रवीन्द्रनाथ गांधीवादी विचारधारा के पोषक थे। इसलिए वे बम, रिवाल्वर द्वारा संचालित आंदोलनों पर विश्वास नहीं रखते थे। जिस समय देश का वातावरण हिंसात्मक कार्यों से भरने लगा, उसी समय रवीन्द्रनाथ ने राजनीतिक अखाड़े का परित्याग करके शान्ति निकेतन में शरण ली।

शान्ति निकेतन में पहुँचकर रवीन्द्रनाथ पुनः साहित्य सर्जना में जुट गए। इस काल की प्रथम रचना 'शारदोत्सव' है। 1922 ई. में शारदोत्सव नाटक में कुछ परिवर्तन किया। शारदोत्सव के पश्चात 'प्रायश्चित' की रचना कवि ने की। प्रायश्चित के ठीक एक वर्ष पश्चात 1910 ई. में रवीन्द्रनाथ ने 'राजा' नामक नाटक की रचना की। इस समय इनका एक प्रसिद्ध उपन्यास 'गोरा' प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष कवि ने 'गीतांजली' की भी रचना की। गीतांजली रचना के लिए रवीन्द्रनाथ को नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी रचना ने कवि रवीन्द्रनाथ को विश्वविख्यात बना दिया था। गीतांजली में उपनिषदों की तत्व चिन्ता और वैष्णव कवियों की प्रेम-भावना का अपूर्व मिश्रण है।

7 मई, 1911 को कवि की 50वीं वर्षगाँठ शान्ति निकेतन में मनायी गयी। इसी शुभ अवसर पर 'राजा' नाटक का अभिनय हुआ। कुछ समय के लिए कवि शेलाइदह चले आये। कवि ने शेलाइदह में 'जीवनस्मृति' और 'अचलायतन' की रचना की। वहीं सन् 1912 में कवि ने 'डाकघर' की रचना की। इस नाटक की ख्याति यूरोप में सर्वाधिक हुई। 1913 में कवि विदेश यात्रा पर चले गए इस दौरान कवि ने अध्यात्म दर्शन, भारत की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अनेक भाषण दिए। यूरोप, अमेरिका में दिए गए व्याख्यान से कवि का यश चतुर्दिक द्रुतगति से प्रसारित हो गया। इंग्लैण्ड, अमेरिका में दिए गये इन्हीं व्याख्यानों का प्रकाशन कार्य 'साधना' नामक पत्रिका में हुआ।

1914 ई. में गीतिमाल्य, गीतालि इन दोनों संग्रह का प्रकाशन हुआ। गीतिमाल्य में कुल 111 गीत हैं। जिनमें से कुछ की रचना इंग्लैंड में हुई, कुछ की रचना भारतीय जहाज पर कुछ की शान्ति निकेतन में, कुछ की हिमालयवर्ती रायगढ़ में, कुछ की शेलाइदह तथा कुछ की रचना कलकत्ता में हुई। गीतालि का पूर्वार्ध सुरूल और शांति निकेतन में रचा गया। इस रचना में 188 गीतों का संग्रह है। मिलनानन्द, आत्म तृप्ति, परिपूर्णता की ध्वनि गीतिमाल्य की भांति गीतालि के गीतों में भी पायी जाती है। 5 अगस्त, 1914 को कवि द्वारा एक निबंध शान्ति निकेतन के छात्रों के सामने पढ़ा गया। निबंध का शीर्षक 'मा मा हिंसा' था।

सन् 1915 में कवि ने 'फाल्गुनी' की रचना की। इसी वर्ष गांधी जी के स्वागत के लिए शान्ति निकेतन में फाल्गुनी नाटक का अभिनय हुआ। इन्हीं दिनों कवि द्वारा दो नये उपन्यासों का निर्माण कार्य संपन्न हुआ। ये उपन्यास

थे – 'चतुरंग', 'धरे वाहिरे' के नाम से प्रसिद्ध हैं। चतुरंग में चार कहानियों का योग है – ज्याठा माशाय, शचीश, दामिनी, श्रीविलास। 55 वर्ष की अवस्था में कवि ने एक और रचना का सृजन किया जो 'वलाका' नाम से विख्यात है। 'बलाका' के गीतों में सर्वत्र यौवन, प्रेम, सौंदर्य का ही जयघोष सुनायी पड़ता है।

29 मई 1916 को कवि ने जापान भूमि पर प्रथम बार पदार्पण किया। वहाँ के पब्लिक हॉल में 'भारतवर्ष और जापान' विषय पर कवि का भाषण हुआ . 12 जून को टोकियो विश्वविद्यालय में 'भारत का जापान को संदेश' विषय पर महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया। जापान में कवि के व्याख्यान की कड़ी आलोचना हुई, जिसे सुनकर कवि को हार्दिक क्लेश हुआ। इन्होंने एक कविता 'सांग आफ दि डिफीटिड' की रचना की। जापान-भ्रमण में जो भी व्याख्यान कवि ने दिए, सभी संग हित होकर 1917 ई. में 'नेशनलिज्म' नाम से प्रकाशित हुए। जापान संबंधी अनुभवों का उल्लेख 1919 ई. में 'जापानेर जात्री' नामक पुस्तक में मिलता हैं। 1918 में कवि ने 'पलातक' नामक काव्य-संग्रह का सृजन किया।

सन् 1921 में कवि यूरोप से भारत आने पर कवि को सत्याग्रह आंदोलन में आने के लिए महात्मा गांधी ने बहुत आग्रह किया। लेकिन वे इस आंदोलन में सम्मिलित नहीं हुए लेकिन उन्होंने इस संबंध में अपना मंतव्य एक निबंध 'शिक्षार मिलन' में प्रकाशित किया।

1922 में कवि ने अपनी प्रख्यात कृति 'मुक्तधारा' का सृजन किया। इसमें तत्कालीन असहयोग आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसी वर्ष 'लिपिका' का प्रकाशन हुआ। इस गद्य काव्य में छोटे-छोटे 38 शब्द चित्रों का संग्रह है। 'तोता काहिनी' में कवि का सभ्य देशों पर करारा व्यंग्य है। वही 'घोड़ा' नामक रचना में भी इसी प्रकार का व्यंग्य दिखाई देता है। इसी वर्ष कवि ने 'शेष वर्षण' क रचना की। 1926 में कवि का सर्वश्रेष्ठ नाटक 'रक्तकरवी' प्रकाशित हुआ। तथा सन् 1927 में 'नटराज', 'नवीन', 'सुन्दर' आदि की रचना की।

रवीन्द्रनाथ की एक रचना 'पूरबी' नाम से प्रकाशित हुई। जो तीन खंडों में विभक्त है -

क. पूरबी – इस खंड में पूरबी से लेकर 'बकुल वनेर पाखी' तथा कुल 16 कविताएँ हैं।
ख. पथिक – इस खंड में 'सावित्री' से लेकर 'इटालिया' तक कुल 61 कविताएँ हैं।
ग. संचिता – इसमें 'अवसान' से लेकर 'सुप्रभात' तक कुल 11 कविताएँ हैं।

कवि अपने बीते हुए जीवन की मधुर छोटी-छोटी स्मृतियों को दोहराते हैं। इन स्मृतियों की स्पष्ट झलक 'कृतज्ञ' नामक रचना में मिलता है। 1927 ई. में कवि ने भारत भ्रमण का कार्यक्रम निश्चित किया। इस दौरान योगायोग की रचना का निर्माण हुआ। 'योगायोग' रवीन्द्रनाथ का अष्टम उपन्यास है। वही कवि के नौवें उपन्यास के रूप में 'शेषेर कविता' का लेखन कार्य पूर्ण हुआ। काव्य प्रेमियों के आग्रह पर कवि रवीन्द्रनाथ ने 1928 में 'महुया' काव्य संग्रह का प्रकाशन किया। विदेश यात्राओं में विशेष कर रूस में कवि का विशेष रूप से स्वागत किया गाया। उसके बाद कवि ने शासन-व्यवस्था का आँखों देखा वर्णन 'एशियार चिठि' में बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है।

16 मई, 1931 को गणमान्य विद्वानों द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय में रवीन्द्रनाथ की 70वीं वर्षगांठ बनाने का निश्चय किया। सर्वसम्मति से कि को 'कवि सार्वभौम' की उपाधि से विभूषित किया गया। 1932 ई. में कवि ने अपनी

बारहवीं विदेश यात्रा की जो ईरान के लिए थी। इस समय कवि की तीन पुस्तकें पुनः प्रकाश में आई जिनमें – परिशेष, पुनश्च, कालेरयात्रा आदि थे। इनमें से प्रथम कविता संग्रह, द्वितीय गद्य-काव्य और तृतीय नाटिका है।

1933 ई. में कवि की पाँच महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई – बांसुरी (लघु नाटिका), ताशेर देश (लघु नाटिका), विचित्रा (काव्य संग्रह), चांडालिका (लघु नाटिका), मालचा (उपन्यास)। 1934 में कवि ने लंका यात्रा की इस यात्रा में कवि ने 'चार अध्याय' नामक उपन्यास की रचना की।

1936 ई. में बनारस और ढाका विश्वविद्यालय ने कवि रवीन्द्रनाथ को डी. लिट. की उपाधि से विभूषित किया। उसी प्रकार 7 अगस्त, 1940 को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने भी कवि को डी. लिट. की उपाधि से सम्मानित किया। रवीन्द्रनाथ में बंगला साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी रचना करने की क्षमता थी। इसका ठोस प्रमाण 'विश्व परिचय' तथा 'बंगला भाषा' नामक दो पुस्तकें हैं। विश्व परिचय विज्ञान संबंधी पुस्तक है तो बंगला भाषा अबंगालियों को बंगला सिखाने के उद्देश्य से लिखी गयी है।

समयानुसार कवि का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। 19 सितंबर 1940 को स्वास्थ्य सुधार के लिए कोलिम्पांग गए, लेकिन वहाँ इनका स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया। शरीर अशक्त होने पर भी कवि का मस्तिष्क पूर्णतः स्वस्थ था। अस्वस्थ रहने की अवस्था में भी इन्होंने साहित्य की रचना की। इनकी इस समय की रचनाएँ इस प्रकार हैं – नवजातक (कविता संग्रह), शनैः (कविता संग्रह), छेले-बेला (बाल्यस्मरण), रोगशैया, आरोग्य (कविता संग्रह) आदि।

14 अप्रैल 1941 को कवि की 81वीं वर्षगाँठ मनायी गयी। 30 जुलाई को कवि का आपरेशन हुआ। उस आपरेशन से कवि को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। 7 अगस्त को दिन के 12 बजकर 7 मिनट पर कवि रवीन्द्रनाथ ने इस संसार का परित्याग कर दिया। कवि की अंतिम रचना 'मृत्यु' है। इस रचना को आपरेशन के कुछ घण्टे पूर्व बोलकर लिखवाया था। वह रचना इस प्रकार है –

दुःर्खर आंधार रात्रि बारे-बारे

एसेछे आमार द्वारे .

एक मात्र अस्त्र तार देखे छिनु

काटेर विकृत भाल, त्रासेर विकट भंगी जत

अंधकार छलनार भूमिका ताहार।

जत बार भयेर मुखोस तार करेछि विश्वास,

तत बार हयेछें अनर्थ पराजय।

एइ हार-जित खेला, जीवनेर मिथ्या ए कुहक,

शिशकाल हते विजड़ित पदे पदे ए विभीषिका,

दुःखेर परिहासे भरा।

भयरे विचित्र चलच्छवि-

मृत्यु निपुण शिल्प विकीर्ण आंधारे।

(अर्थात् – दुःख की काली रात्रि बार-बार मेरे द्वार पर आयी। उसके पास मुझे केवल एक अस्त्र दिखाई पड़ा। कष्ट से विकृत भाल, त्रास से की हुई विकटभंगी-उसकी छलना की भूमिका अंधकार में थी। जब-जब मैंने उसकी भयानक मुखाकृति का विश्वास किया, तब-तब मेरी व्यर्थ ही पराजय हुई। यह हार-जीत का खेल, यह जीवन की मिथ्या भ्रमजाल, शिशुकाल से ही पद-पद पर विजड़ित दुःख परिहास से पूर्ण यह विभीषिका, भय के ये अनोखे चलचित्र! मृत्यु के निपुणशिल्पी की अंधकार में फैली हुई कारीगरी।

इसके अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ के गीत काफी महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा लिखे गए या गाए गए गीत भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनका सबसे बड़ा गुण यह है कि वे सीधे हृदय तक पहुँचते हैं। इनकी भाषा सहज और काव्य गुणों से परिपूर्ण है। उनके सूर मोहक और प्रभावोत्पादक हैं और इनके भाव अत्यंत उच्च कोटी के हैं। रवीन्द्रनाथ के गीतों के हृदयकारी बनने के सबसे बड़े साधन उनके सूर हैं। इन सूरों के सहारे ही मानो ये गान उड़कर हृदय में तेजी से प्रवेश कर पाठक को मुग्ध कर देते हैं। टैगोर ने करीब 2,230 गीतों की रचना की। रवीन्द्रनाथ का संगीत बांग्ला संस्कृति का अभिन्न अंग है। टैगोर के संगीत को उनके साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। उनकी अधिकतर रचनाएँ तो अब उनके गीतों में शामिल हो चुकी हैं। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की ठुमरी शैली से प्रभावित ये गीत मानवीय भावनाओं के अलग-अलग रंग प्रस्तुत करते हैं।

8.4. सारांश

अंततः यह कहा जा सकता है कि रवीन्द्रनाथ का योगदान बंगला साहित्य के लिए एक अनमोल देन है। उन्होंने बंगला भाषा की हर विधा में रचना सृजन किया है। लेकिन उनके लेखन के आधार पर बंगला साहित्य परिवार ने उन्हें कवि के रूप में ही स्वीकारा है। और यह काफी हद तक ठीक भी लगता है। उनके द्वारा लिखे गए नाटक भी गीति नाट्य के रूप में सामने आते हैं जो की काव्य का एक रूप है। उनके कविताएँ उनके व्यक्तित्व का परिचय बहाल करती है। उनका लेखन बंगला भाषा के प्रति उनका अपार प्रेम भी दिखाता है। उनके द्वारा लिखी गयी भारतीय साहित्य की किताब बंगभाषा जो कि उन्होंने यह स्वीकारा है कि यह उनकी रचना बंगला भाषा सीखने के लिए लिखी गयी है। अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बंगला साहित्य रवीन्द्रनाथ टैगोर के बगैर अधुरा-सा लगता है।

8.5. बोध प्रश्न

1.रवीन्द्रनाथ टैगोर व्यक्ति एवं रचनाकार और बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का योगदान को सोदाहरण रूप में लिखिए।

8.6. सहायक ग्रंथ

1. भारतीय भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास- केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।

2. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास- डॉ. नगेन्द्र।

3. समकालीन भारतीय साहित्य – डॉ. नगेद्र।

डॉ. डॉ. सोनकांबळे पिराजी मनोहर

9. 'अग्निगर्भ' उपन्यास का विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर चित्रण

9.0. उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप समझ सकेंगे –

1. अग्निगर्भ उपन्यास में चित्रित परिस्थितियों से आप परिचित होंगे।
2. पश्चिम बंगाल की तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का परिचय प्राप्त करेंगे।
3. आदिवासी समाज के साथ होने वाले जातिगत भेदभाव को जान पाएंगे।
4. आदिवासी मजदूरों के काम के नाम पर किस प्रकार बंधक बनाया जाता है इसे जान पाएंगे।
5. आदिवासी समाज आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण सरकार और महाजन तथा साहूकार उनका किस प्रकार शोषण करते हैं इस जान सकेंगे।
6. भारतीय समाज व्यवस्था में आदिवासी समाज के साथ होने वाले अत्याचार से परिचित होंगे।
7. पूर्वी राज्यों में खेतिहर मजदूरों के शोषण से अवगत होंगे।
8. प्रचलित जमींदारी प्रथा व महाजनी व्यवस्था के दुर्गुणों से परिचित होंगे।

रूपरेखा

9.1. प्रस्तावना

9.2. 'अग्निगर्भ' में पूर्वी राज्यों में खेतिहर मजदूरों के शोषण का चित्रण

9.3. 'अग्निगर्भ' में स्वतंत्रता के पश्चात भी प्रचलित जमींदारी प्रथा व महाजनी प्रथा का चित्रण

9.4. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में भ्रष्ट प्रशासन का यथार्थ चित्रण

9.5. 'अग्निगर्भ' में राजनीतिक पार्टियों, नेताओं व मंत्रियों की स्वार्थ पर आधारित नीतियों का चित्रण

9.6. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में जातिगत भेदभाव की समस्या का चित्रण

9.7. सारांश

9.8. बोध प्रश्न

9.10. सहायक ग्रंथ

9.1. प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपने युगीन वातावरण, सामाजिक परिवेश से अवश्य प्रभावित होता है। जो साहित्यकार अपनी रचनाओं में अपनी युगीन परिस्थितियों की अवहेलना करता है। उसकी

रचना साहित्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है। औपन्यासिक तत्वों में देश-काल योजना का महत्व स्पष्ट करते हुए डॉ. श्याम सुन्दर दास ने लिखा है कि 'बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसलिए मनोरंजक होते हैं कि उनमें सामाजिक किसी विशिष्ट वर्ग, देश में किसी विशिष्ट भाग अथवा काल में किसी विशिष्ट अंश से संबंध रखने वाला ही वर्णन होता है। ऐसी दशा में जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही सटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जाएगा।' यह कथन अग्निगर्भ उपन्यास के लिए सटीक बैठता है जिसमें लेखिका ने बंगाल प्रांत के उन आदिवासियों की जीवन की दास्तान और उनके संघर्ष की गाथा प्रस्तुत की है। जिसमें तत्कालीन बंगाल में उनके जीवन की युगीन परिस्थितियों का वर्णन किया है।

'अग्निगर्भ' में युगीन परिस्थितियों का चित्रण

महाश्वेता देवी द्वारा रचित 'अग्निगर्भ' उपन्यास देश काल एवं वातावरण की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है। यद्यपि लेखिका ने इस उपन्यास में सन् 1943 से लेकर 1976 की अवधि में पश्चिम बंगाल के सूखा व बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों को ही प्रमुख स्थान दिया है परंतु इन क्षेत्रों में खेतिहर मजदूरी की समस्याएँ, उनकी जीवन-शैली, उनके प्रति प्रशासन व राजनीतिक पार्टियों का दृष्टिकोण आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। छोटे किसानों, खेतिहर मजदूरों तथा जमींदारों, महाजनों के पारस्परिक कटु संबंधों का उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' तथा 'गोदान' उपन्यासों में चित्रण किया था। परंतु उनके उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण होते हुए भी समस्याओं का समाधान नहीं निकल पाया था। इस दृष्टि से 'अग्निगर्भ' उपन्यास 'प्रेमाश्रम' तथा 'गोदान' उपन्यासों की अगली कड़ी है दिखाई देता है। जिसमें लेखिका ने स्वतंत्रता के बाद खेतिहर मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत होते हुए तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हुए दिखाया है। लेखिका इसी उपन्यास के भूमिका में लिखती हैं कि 'स्वतंत्रता के इकत्तीस बरस में मैंने अन्न, जल, जमीन, कर्ज, बेगार किसी से भी देश के मनुष्य को मुक्ति पाते नहीं देखा। जिस व्यवस्था ने यह मुक्ति नहीं दी उसके विरुद्ध शुभ्र, शुद्ध और सूर्य के समान क्रोध ही मेरे समस्त लेखन की प्रेरणा है। दक्षिण, वामपंथी सभी दल सामान्य मनुष्य से किए हुए वायदों को पूरा करने में असफल रहें हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे जीवन काल में इस विश्वास को बदलने के का कोई कारण होगा, ऐसी आशा नहीं है, इसी से सामर्थ्य के अनुसार मानव की कथा ही लिखी है, जिससे कि सामना होने पर उसके लिए लज्जित न होना पड़े, क्योंकि लेखक को जीवन काल में ही अंतिम न्याय के लिए उपस्थित होना पड़ता है और जवाबदेही की जिम्मेदारी रह जाती है।' 'अग्निगर्भ' उपन्यास में क सच्चे लेखक की जवाबदेही को निभाते हुए अपने युगीन समाज की समस्याओं का भली भाँति चित्रण किया है। इस उपन्यास में चित्रित समस्याओं को इस प्रकार दिखाया जा सकता है – 1. सामाजिक परिस्थितियाँ 2. राजनीतिक परिस्थितियाँ, 3. आर्थिक परिस्थितियाँ, तथा 4. सांस्कृतिक परिस्थितियाँ।

1. सामाजिक परिस्थितियाँ

प्रस्तुत उपन्यास में पश्चिम बंगाल में सूखा ग्रस्त व बाढ़ग्रस्त ग्रामीण क्षेत्रों का समाज मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा हुआ है। जमींदार व उच्च जाति से संबंधित समाज तथा निर्धन खेतिहर मजदूर व बटाईदार किसान। पश्चिम बंगाल के

ग्रामीण क्षेत्रों में आदिवासी जनजातियों का निवास होता है। खेतिहर मजदूरों की दशा अत्यंत शोचनीय है। जमींदार व अन्य उच्च वर्ग के लोग उनके साथ पशुवत व्यवहार करते हैं। लेकिन इन आदिवासी जनजातियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये नारी का उतना शोषण व दमन नहीं करते जितने कि उच्च वर्गों के लोग करते हैं। आज भी हम समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि में आदिवासी युवतियों को अपने विवाह के संबंध में निर्णय लेने के अधिकार के बारे में पढ़ते हैं। 'अग्निगर्भ' उपन्यास में द्रोपदी आदिवासी जनजाति की युवति है। संथाल जाति का युवक बसाई टूडू उसके साथ विवाह करने का निर्णय लेता है परंतु द्रौपदी दूलना माझी को अपने पति के रूप में चुन लेती है।

दूसरी ओर शहरों व कस्बों में पारिवारिक जीवन धन से प्रभावित होते हैं। आजकल शहरों व कस्बों में परिवार के सदस्य फिर भले ही वह पत्नी हो या पुत्र हो तभी तक सम्मान देते हैं जब तक व्यक्ति कमाकर उनका पेट भर सकता है। जो व्यक्ति इस कर्तव्य का निर्वाह करने में अक्षम है वह उपेक्षा का शिकार बनता है, उसे सम्मान प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं होता। अग्निगर्भ उपन्यास का पात्र काली साँतरा जागुला उपनगर में रहता है। वह कम्यूनिस्ट पार्टी का एक समर्पित कार्यकर्ता है परंतु उससे भी बढ़कर वह मानवता का सच्चा पुजारी है। वह अपने क्षेत्र के लोगों की यथा संभव सहायता करता है। यही कारण है कि पार्टी में उसको सम्मान तो दिया जाता है। फलतः उसके पास धन का अभाव है। वह 'जिला वार्ता' नामक एक पत्र का संपादक है। जहाँ समाज में उसे सम्मान प्राप्त होता है वहीं घर में उसकी पत्नी गिनिमाला व उसका पुत्र अनिर्वाण दोनों उसकी घोर अपेक्षा करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में वह बेकार व कर्तव्य विमुख पति और पिता है। इसका एक उदा. 'इसी समय सहसा अनिर्वाण ने एक स्कूल की अध्यापिका से शादी कर ला। इस ब्याह से काली फिर आश्चर्य से देखने लगा कि वह दुनिया द्वारा एकदम परित्यक्त है। बहुत आयोजनों के साथ बहूभात हुआ। तमाम लोग आए थे। काली को कुछ दिनों के लिए 'जिला वार्ता' के ऑफिस में ही रहना पड़ा और अब पता चला कि गिनिमाला सूद पर रुपये देती है। मुहल्ले के बहुत-से लोग उसके देनदार थे। ब्याह के बाद नये शादी के घर के प्रभाव से गिनिमाला ने साईबाबा को पकड़ा। अब काली को लगा कि विवाह, विवाहित जीवन कुछ नहीं।'

यद्यपि इन ग्रामीण क्षेत्रों में जमींदारों व उच्च वर्ग के लिए जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ उपलब्ध थी परंतु आदिवासी जनजातियों के लिए ये सुविधाएँ पहुँच से बाहर थी। मुसाई टूडू के बेटे गिधा के दोनों पाँव टेढ़े हो गए हैं परंतु वह उसका उपचार नहीं करवा पाता। इस प्रकार उसकी पत्नी भी बीमार है परंतु वह उसे भी अस्पताल ले जाने में असमर्थ है। इन ग्रामीण क्षेत्रों में न तो सड़कें हैं, न ही यातायात के साधन हैं। 'एम. डब्लयू. बनाम लखिन्द' कहानी में सुबोध इंस्पेक्टर को मुडाइल शहर के एक ब्लॉक में नियुक्त किया जाता है। वहाँ पर न तो बिजली की सुविधा है, न बस या परिवहन की।

अतः यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखिका महाश्वेता देवी ने 'अग्निगर्भ' उपन्यास में तत्कालीन समाज की सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थ परक चित्रण किया है। लेखिका ने आदिवासी जनजातियों व गाँवों के जमींदारों आदि समाज पर प्रकाश डाला है।

2. राजनीतिक परिस्थितियाँ

'अग्निगर्भ' उपन्यास में राजनीतिक परिस्थितियों का अधिक स्पष्ट चित्रण हुआ है। यद्यपि उपन्यास के आरंभ में लेखिका ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि 'मेरी रचना में निर्देशित राजनीति खोजना व्यर्थ है।' परंतु उपन्यास में उन्होंने राजनेताओं, प्रशासनिक अधिकारियों आदि की कुटिल चालों, भ्रष्ट प्रशासन-तंत्र की कार्यवाइयों आदि का पग-पग पर चित्रण किया है। इस उपन्यास मुख्य पात्र बसाई टूडू स्वतंत्रता से पहले ही कम्यूनिस्ट पार्टी का कार्यकर्ता बन चुका है। यद्यपि वह एक कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार तथा समर्पित कार्यकर्ता है, परंतु उसे पार्टी में न तो कोई सम्मानजनक पद दिया जाता है और न ही उसके विचारों को सुना जाता है।

यद्यपि किसानों ने अपने हितों की रक्षा के लिए किसान सभा का गठन किया था जिसमें खेतिहर मजदूर भी सम्मिलित थे, परंतु जहाँ पर भी खेतिहर मजदूरों के हितों, उनकी मजदूरी बढ़ाने ने का प्रश्न उठता, वही पर किसान सभा उनसे दूर हो जाती। इसका कारण यही था कि किसान सभा के सदस्य किसानों को भी खेतिहर मजदूरों से अपने खेतों में काम करवाना पड़ता था। यदि वे उनकी मजदूरी बढ़ाने की माँग का समर्थन करते तो निश्चय ही उन किसानों को बढ़ी दर से मजदूरी देना पड़ता। अतः किसानों की स्वार्थता व किसान-खेतिहर मजदूरों की आपसी फूट अथवा मतभेद का सीधा प्रभाव मजदूरों पर पड़ा।

स्वतंत्रता के पश्चात सन् 1954 में भारत सरकार ने 'एस्टेट ऐक्वीजिशन एक्ट' बनाया जिसके अनुसार कोई व्यक्ति कुल मिलाकर पच्चीस एकड़ से अधिक जमीन का मालिक नहीं हो सकता था। परंतु चाय-बागानों के मालिकों, जमींदारों आदि ने कारखाने, बाग, मत्सय-पाल आदि के नाम पर हजारों एकड़ जमीन अभी भी अपने कब्जे में कर रखी है जिस पर खेतिहर मजदूर ही काम करते हैं। ये जमींदार, बागान के मालिक राजनेताओं के साथ संबंध स्थापित करते हैं तथा प्रशासन तंत्र को अपनी इच्छानुसार कार्य करने पर विवश करते हैं। 'अग्निगर्भ' उपन्यास में प्रताप, जगतारण, सूर्य साउ, रामेश्वर, गौरा लस्कर, संतोष पुजारी आदि जमींदार जब भी आवश्यकता पड़े पुलिस, आर्मी के जवानों को अपनी रक्षा के लिए बुला लेते हैं क्योंकि वे उच्च अधिकारियों, राजनेताओं के साथ संबंध बनाए हुए हैं। यह कैसी विडंबना है कि प्रशासन-तंत्र इतना भ्रष्ट हो चुका है कि वह सूखा पीड़ितों की राहत-सामग्री प्रताप, संतोष पुजारी जैसे जमींदारों के हाथों में सौंप कर निश्चित हो जाता है कि अब यह सामग्री अवश्य ही जरूरतमंद लोगों तक पहुँच जाएगी। वास्तव में प्रशासन के अधिकारी भी ये जानते हैं कि ये जमींदार इस राहत सामग्री व राहत राशि का स्व-हित में प्रयोग करेंगे। फिर भी वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि ये जमींदार ही उन्हें इस राहत राशि में से कुछ कमीशन घूस के रूप में देते हैं। लेखिका ने भ्रष्ट प्रशासन तंत्र पर व्यंगात्मक प्रहार करते हुए लिखा है – "प्रशासन बहुत ही शिशु-स्वभाव का है। प्रशासनिक मनोवृत्ति इन्फैंटाइल डिरऑर्डर से आक्रांत है। इसलिए भूखे नंगे डेढ़ मील दूर चरसा नदी से बालू हटाकर पानी की तलाश होगी, इसलिए सरकारी ठेकेदार देकर प्रताप के घर की चौहद्दी में तालाब खुदवाता, कुएँ खुदवाता। दुर्दशाग्रस्त किसानी की सहायता के लिए खेती के बीज और खाद्य-शस्य, जनता साड़ी-चोली औषधि सब कुछ प्रताप के घर इकट्ठा होता। भूखे नंगे प्रशासन के प्रथम पक्ष हैं। बिना पूछे गले पड़ी ढोली-सी पत्नी।" स्वतंत्र भारत का

इतिहास साक्षी है कि आजकल के नेता उन्हीं लोगों, वर्गों के हितों का ध्यान रखते हैं जो उनके सगे संबंधी हो या जिन्होंने इन नेताओं को उच्च आसान तक पहुँचाने में धन, बल आदि से सहायता दी हो। 'अग्निगर्भ' उपन्यास में स तथ्य को अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए 'एम. डब्ल्यू. बनाम लखिन्द' कहानी में कर्तव्यनिष्ठ एम. डब्ल्यू. आई. सुबोध दास जब सरकारी पद पर नियुक्त होकर मुडाइल शहर के लिए प्रस्थान करता है तब वहाँ का स्थानीय नेता उसे कमरे में बुलाकर स्पष्ट कह देता है कि वहाँ जाकर मजदूरों को सरकारी दर पर मजदूरों को दिलाने का प्रयास मत करना जबकि एम. डब्ल्यू. आई. का कर्तव्य ही मजदूरों को सरकारी दर पर मजदूरी दिलाना था। वह नेता बताता है कि वहाँ का जमींदार गौरा लस्कर मेरी पहचान वाला है। यह तो सर्व विदित है कि आजकल भारत में अधिकांश नेता कानून को अपनी जेब में डलकर मनचाहा कार्य करते हैं। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में इस तथ्य का पूरी निष्पक्षता के साथ उद्घाटित किया है।

स्वतंत्र भारत में पुलिस तंत्र भी अपनी पक्षपात-पूर्ण कार्य प्रणाली के लिए कुख्यात रहा है। लगभग सभी राज्यों के निवासी वहाँ क पुलिस से बचने का ही प्रयास करते हैं। घूस खाकर निरपराधियों को अपराधी घोषित करना तथा अपराधियों की सहायता करना पुलिस तंत्र के लिए एक सामान्य-सी बात हो गई है। 'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने पश्चिम बंगाल के आदिवासी जनजातियों के क्षेत्रों में पुलिस के क्रूरतम व्यवहार का चित्रण किया है। इसके साथ-साथ उसने भ्रष्ट प्रशासन द्वारा दी गई मिथ्या रिपोर्टों के आधार पर सेना के जवानों द्वारा चलाए गए 'ऑप्रेशन बाकुली' में सेना के जवानों को जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष कर रहे आदिवासियों पर अंधा-धुंध गोलियाँ चलाते दिखाया है। इसके पश्चात वे पकड़े गए आदिवासियों के साथ इतना क्रूरतम व्यवहार करते हैं कि उनकी मृत्यु हो जाती है और ऐसी दशा में सेना के जवान उसे आमने सामने की घटना में मार दिए जाने का समाचार बता देते हैं। 'मृत व्यक्ति के हाथ पैर वैन के पहिए में बाँधा जा सकता है पीछे हाथ या पेड़ से हाथ पैर बाँधे जा सकते हैं नाखून उखाड़ना आँखे निकालना, यौनांग छिन्न हो सकते हैं- गूदमार्ग में छड़ घुसड़ना, सारी पसलियाँ चूर-चूर हो सकती हैं, काँमन गुण हैं, पूरे शरीर में अनगिनत गोलियाँ रहेंगी समस्त मृत्यु की व्याख्या ही इस प्रकार मरनी होगी, सम्मुख संघर्ष के परिणाम स्वरूप। बसाई टूडू भी सम्मुख संघर्ष में मारा गया। बालक-बालिका-शिशुओं की मृत देह भी सम्मुख संघर्ष की थियरी द्वारा समझायी जाती है।'

पुलिस व सेना के जवान अपराध में संलिप्त होने के शक के आधार पर स्त्रियों के साथ कैसा दुर्व्यवहार करते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। इस विषय पर जितना कम कहा जाए उतना ही अच्छा है क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियों, लड़कियों के साथ केवल घिनौना, पशुवत व्यवहार किया जाता है। 'द्रोपदी' कहानी में लेखिका महाश्वेता देवी ने सेना के जवानों व अधिकारियों के ऐसे ही पशुवत व्यवहार को उद्घाटित किया है। आदिवासी युवती द्रौपदी अत्याचारी जमींदारों के विरुद्ध खेतिहर मजदूरों को संघर्ष करने के लिए उकसाती है और क दिन जब वह सेना के जवानों द्वारा पकड़ ली जाती है तब सेना नायक अपने जवानों को उसे 'ठीक कर लेना' का आदेश देकर चला जाता है। वहाँ पर उपस्थित सेना के जवान द्रौपदी का पशुवत यौन-शोषण करते हैं।

ऐसी भी नहीं है कि आज के युग में कर्तव्य निष्ठ, ईमानदार सरकारी अधिकारी कर्मचारी नहीं हैं। परंतु विडंबना यही है कि स्वार्थ-हित में जुटे अन्य भ्रष्ट अधिकारी ऐसे कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियों को या तो ऐसे स्थानों पर भेज देते हैं जहाँ उनकी योग्यता के अनुरूप काम नहीं है या फिर उन पर झूठे आरोप लगा कर उन्हें पदच्युत (सस्पैंड) कर दिया जाता है। बनारी ब्लॉक में लेबर कमिश्नर जब अपने कर्तव्य को सफलतापूर्वक निर्वाह करने का प्रयास करता है तब वहाँ के मंत्री वे नाता उसकी दिल्ली में बदली करवा देते हैं। 'इस अफसर की नजीर दिखाकर प्रशासन सारे उत्साह अफसरों को समझा सका कि शुद्ध अंग्रेजी जाने, देशभक्त माँ-बाप की संतान बनना, घूस के नाम पर नाक सिकोड़ना, मिलखा सिंह बनकर सत्तर की दशाब्दी में भाग दौड़ करना यह किसी उन्नति का मार्ग नहीं है। परिणामस्वरूप दाहिने पैर में आर्थइटिस हो सकती है। जो नहीं समझते, वे प्रशासन के हाथों तरह-तरह के हाथों तरह-तरह की परेशानियाँ भोगते रहते हैं।'

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में तत्कालीन प्रशासन-तंत्र में फैले भ्रष्टाचार, मंत्रियों की स्वार्थगत नीतियों, पुलिस व सेना के जवानों द्वारा निर्धन मजदूरों, स्त्रियों आदि पर किए जाने वाले अत्याचार, जमींदारों द्वारा खेतिहर मजदूरों का किया जाने वाला शोषण, उनके दमनपूर्ण व्यवहार आदि का स्पष्ट चित्रण किया। इसके साथ-साथ लेखिका ने तत्कालीन दशक में लगाई गई इमेरजेंसी (आपात काल) के दौरान प्रशासन द्वारा जनता के ऊपर किए गए अत्याचार, सच्ची खबरों को छापने पर रोक आदि का भी चित्रण किया है।

3. आर्थिक परिस्थितियाँ

'अग्निगर्भ' उपन्यास में मुख्यतः ग्रामीण समाज की आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात भी पश्चिम बंगाल का ग्रामीण समाज मुख्यतः दो वर्गों में बटाँ हुआ है – जमींदार वर्ग तथा किसान व खेतिहर मजदूर वर्ग। जमींदार वर्ग आर्थिक रूप से अत्यंत सुदृढ़ है। तत्कालीन युग में गाँवों में रहने वाले जमींदारों के पास शहरी जीवन की अधिकांश सुविधाएँ थी। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में प्रताप, सूर्य साउ, रामेश्वर, जगत्तारण, जैसे जमींदारों के माध्यम से उनकी सम्पन्नता पर प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिए प्रताप पच्चीस गाँवों का महाजन है और वह पाँच हजार बीघे जमीन का मालिक भी है। उसके पास पक्का मकान है, मकानों में बिजली के लिए डायनमो लगा रखा है, उसके खेतों में छह पक्के कुएँ हैं, उसके अपने तालाब हैं। इसी प्रकार काँकड़ा सोल गाँव का जमींदार रामेश्वर भूओं है। उसके पास पंद्रह हजार बीघा जमीन है, जागुला में उसका अपना बाजार है, धान का कारखाना है। उसका मकान किले की तरह ऊँची दीवारों से घिरा है। उसके मकान में बार, स्वीमिंग पूल, मछली का पौखरा है। साल में चार बार वह काली माँ की पूजा करता है तथा एक सौ आठ बकरों की बली चढ़ाता है। वह प्रशासन के अधिकारियों को अपने यहाँ बुलाकर उन्हें विदेशी शराब पिलाता है।

ग्रामीण समाज यह धनी वर्ग अपने धन के बल पर निर्धन वर्ग को ओर भी निर्धन बनाने का प्रयास करता था। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका महाश्वेता देवी ने यह दर्शाया है कि जमींदार के शोषण व अन्यायपूर्ण नीतियों के कारण ही किसानों व खेतिहर मजदूरों की आर्थिक दशा बिगड़ती जा रही है। चूकि सन् 1970 के आस-पास पश्चिम बंगाल में

कांग्रेस पार्टी की सरकार थी अतः कम्यूनिस्ट पार्टी ने खेतिहर मजदूरों व किसानों की इस दयनीय दशा का अनुचित लाभ उठाया। उन्होंने इन भोले-भाले, शोषित व उपेक्षित वर्ग को झूठे वादे करके अपनी और मिला लिया। अधिकांश खेती योग्य जमीन जमींदारों के अधीन थी और अधिकतर किसान या तो बटाई के आधार पर खेती करते थे या खेतिहर मजदूर उनके खेतों में मजदूरी करते थे। ये जमींदार ही महाजनी का भी कार्य करते थे। अतः वे किसी भी दशा में यह नहीं चाहते थे कि खेतिहर मजदूर व बटाईदार किसानों की आर्थिक दशा में तनिक भी सुधार हो। इस रणनीति के तहत वे नहरों में उपलब्ध जल को सिंचाई के लिए प्रयोग में नहीं लेते थे, भले ही उनकी फसल सूख जाए। इसका कारण यह था कि यदि वे कर देकर नहर का पानी लेते हैं तो अच्छी फसल होने पर बटाईदार किसानों के हिस्से में अधिक धान आएगा व अधिक खेतिहर मजदूरों को काम मिलेगा। यदि उनके खेतों की फसल सूख जाती है तो इन खेतिहर मजदूरों वे बटाईदार किसानों को बहुत कम मजदूरी व धान मिलेगा। फलतः इन मजदूरों व किसानों को इन्हीं जमींदारों के अधीन हो जाएंगे। अब वर्ष भर उन्हें जमींदारों की इच्छानुसार कार्य करना पड़ेगा और ऋण के सूद को चुकाने के लिए उन्हें उनके यहाँ मजदूरी करनी पड़ेगी।

स्वतंत्रता के पश्चात भी पूर्व राज्यों में जमींदार, चाय बागान के मालिक आदि खेतिहर मजदूरों को नाम-मात्र की मजदूरी देते थे। सन् 1953 में सरकार ने खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी दर निर्धारित किया गया था। सरकारी आँकड़े में यह राशि पुरुषों के लिए 3 रुपये 54 पैसे तथा स्त्रियों के लिए 3 रुपये 27 पैसे थी। परंतु व्यवहार में खेतिहर मजदूरों को 50 पैसे के आस-पास मजदूरी दी जाती थी और इस मजदूरी में से भी उनके ऋण का सूद, भोजन आदि के खर्च को काट लिया जाता था। फलतः दिन-भर की मजदूरी के बाद इन खेतिहरों के हाथ में जो राशि आती थी वह उनके पेट भरने के लिए भोजन उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त नहीं थी। इस प्रकार जमीन की अन्य आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए इन खेतिहर मजदूरों को इन्हीं जमींदारों, महाजनों से बार-बार ऋण लेना पड़ता था। ऋण चुकाने का यह क्रम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहता था। लेखिका ने 'अग्निगर्भ' उपन्यास में इन्हीं सब घटनाओं का सजीव चित्र किया है। उदाहरण के लिए कदम कुआँ गाँव का जमींदार अपने गाँव में खेतिहर मजदूरों को बंधक इसलिए बनाकर रखता था क्योंकि उनके पूर्वजों ने जगतारण के बाप-दादाओं से अँगूठा की निशानी देकर ऋण लिया था। 'चार पीढ़ियों में भी असल नहीं चुका, सूद भी नहीं। जो हो, जगत्तारण के बाप के जमाने से वे अँगूठा-निशानी देकर लेबर देते थे। माने, जिन लोगों ने शुरु में लिया था, वे तो थे नहीं।' उनके वंशज अँगूठा लगाते। जब मुल सहित अदा न हो वे आकर बेगार देंगे। प्रस्तुत उपन्यास में नगरीय जीवन की आर्थिक परिस्थितियों का नाम मात्र का ही चित्रण हुआ है। नगरीय पात्र काली साँतरा के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट किया है कि नगरीय समाज में भी मुख्यतः दो वर्ग विद्यमान हैं। एक और उच्च वर्ग अधिकारी नेता, मंत्री, व्यवसायी उच्च वर्ग से संबंधित है तो दूसरी ओर ऐसा वर्ग है जो काली साँतरा की पत्नी गिनिमाला से सूद पर ऋण लेकर अपना काम चलता है। अतः ग्रामीण समाज की भाँति नगरीय समाज में भी ऋणदाता अपने कर्जदार का शोषण करता है।

आदिवासी जनजातियों के लोग प्रायः घोर निर्धनता में जीवन व्यतीत करते हैं। उनके पास जीवन की आवश्यक वस्तुओं का अभाव है, मुसाई टूडू के घर में खाने पीने की वस्तुओं का अभाव है, बेतूल के घर में चाय और

पानी भी नहीं है और उनके पास तन ढकने के लिए पूरे वस्त्र भी नहीं है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने तत्कालीन युग की आर्थिक परिस्थितियों का स्पष्ट चित्रण किया है। यदि यह कहा जाए कि लेखिका ने उपन्यास में नक्सलवाद की समस्या को आर्थिक विषमता की उपज ही दर्शाया है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

4. सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने पश्चिम बंगाल की सांस्कृतिक गतिविधियों, परंपराओं, रीतियों आदि का अधिक वर्णन किया है। चूंकि उपन्यास का मूल उद्देश्य आदिवासियों, खेतिहर मजदूरों की आर्थिक समस्याओं, उनके शोषण आदि का चित्रण करना है अतः इसमें सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण संयोगवश ही हुआ हाँ। पश्चिम बंगाल में काली माँ की पूजा की जाती है तथा यही वहाँ का सबसे बड़ा धार्मिक पर्व माना जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने दर्शाया है कि काँकड़ासोल गाँव का जमींदार रामेश्वर काली-पूजा के अवसर पर एक सौ आठ बकरों की बलि देता है। 'जल' कहानी में मघई जाति का डोम है परन्तु वह अपने पूर्वजों की शिक्षा के आधार पर भूमि में जल की स्थिति बताने में सक्षम है। यद्यपि गाँव का जमींदार डोमों को पंचायती कुँओं से पानी नहीं भरने देता है। फिर भी बुलाने पर मघई जमींदार के खेत में पानी की स्थिति बताने चला जाता है। इसका कारण यही है कि उसकी सांस्कृतिक परम्परा है।

पूर्वी राज्यों में पुत्र वधू के आगमन पर सगे संबंधियों, मित्रों आदि को बहू के हाथ का बना हुआ चावल खिलाया जाता है जिसे 'बहूभात' कहा जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने काली साँतरा के पुत्र अनिर्वाण के विवाह के अवसर पर इसी सांस्कृतिक परम्परा का वर्णन किया है। 'इसी समय सहसा अनिर्वाण ने एक स्कूल की अध्यापिका से शादी कर ली। ब्याह से काली फिर आश्चर्य से देखने लगा कि वह दुनिया द्वारा एकदम परित्यक्त है। बहुत आयोजन के साथ 'बहूभात' हुआ। किसी भी मध्यवर्गीय की तरह बिस्मिल्ला को रेकार्ड फिट कर नन्हें-नन्हें बल्बों से घर को सजाकर काली के बेटे का बहूभात हुआ और काली अनभ्यस्त उजली-धोती-कुरता पहन, चेहरे पर दीन मुस्कराहट लाकर सबसे अधिक बाहरी व्यक्ति बना गेट पर खड़ा था।' अधिकांश खेतिहर मजदूर अशिक्षित होते हैं और उनकी इस कमी का जमींदार, महाजन अनुचित लाभ उठाते हैं। आदिवासी लोग अपने परिजनों के शव को दफना देते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने काली साँतरा को बसाई टूडू की कब्र पर हाथ फेरते दिखाया है जो उनकी इस परंपरा की ओर संकेत करता है। आदिवासी जनजातियों में युवतियों को अपना वर स्वयं चुनने का अधिकार प्राप्त होता है। द्रौपदी माझिन भी बसाई टूडू के साथ विवाह न करके अपनी इच्छानुसार दूलना माझी को अपना पति बना लेती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अग्निगर्भ उपन्यास में लेखिका महाश्वेता देवी ने सन् 1970 से लेकर 1976 तक की घटनाओं, राजनीतिक गतिविधियों, सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों आदि का यथार्थपरक चित्रण किया है। इस संदर्भ में लेखिका ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है जो पंक्तियाँ तत्कालीन बंगाल

की परिस्थितियों को उजागर करती है। 'बंगाल साहित्य में बहुत दिनों तक विवेकहीन वास्तविकता से विमुख साधना चली। लेखक लोग प्रत्यक्ष को देखकर भी नहीं देख रहे हैं। इसका नतीजा हुआ है, अच्छे पाठकों के मन में उनका भी परित्याग हो गया है। तमाम समस्याओं, तमाम अन्याय, बहुतेरी जातियों, तमाम लोकाचारों से युक्त देश के लेखकों की सामग्री देश और उसके मनुष्यों से नहीं मिलती, इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ? वर्ग संघर्ष का क्षेत्र अधिक साफ होता जा रहा है। इतिहास के इस संधि काल में एक जिम्मेदार लेखक को शोषितों के लिए कलम उठाने पर बाध्य होना पड़ता है। अन्यथा इतिहास उसे माफ नहीं करेगा।'

2. 'अग्निगर्भ' उपन्यास विश्लेषण

'अग्निगर्भ' उपन्यास का विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया जा सकता है। निम्नलिखित बिंदु 'अग्निगर्भ' उपन्यास के लेखन का उद्देश्य भी हो सकते है। इन बिन्दुओं का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है –

9.2. 'अग्निगर्भ' में पूर्वी राज्यों में खेतिहर मजदूरों के शोषण का चित्रण

'अग्निगर्भ' उपन्यास मूलतः खेतिहर मजदूरों की समस्या को उद्घाटित करता है। इस उपन्यास का नायक बसाई टूडू एक आदिवासी खेतिहर मजदूर है। इसके अतिरिक्त वह कई वर्षों से कम्यूनिस्ट पार्टी का एक समर्पित व कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता भी है। परंतु खेतिहर मजदूरों की माँगो को अनसुनी किए जाने पर वह पार्टी को छोड़कर अपना एक अलग पथ निर्धारित करता है। उसके कथन में बार-बार खेतिहर मजदूरों की पीड़ा, उनके शोषण व उन पर किए जाने वाले अत्याचार का वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत उपन्यास की दो अन्य कहानियों 'जल' और 'एम. डब्ल्यू. बनाम लखिन्द' में भी पश्चिम बंगाल के सूखा पीड़ित क्षेत्रों के खेतिहर मजदूरों व अन्य निम्न जातियों की दयनीय दशा का चित्रण हुआ है। उपन्यास की भूमिका में लेखिका ने स्पष्ट रूप से लिखा है, 'सब जगह समस्या केवल भूमि की नहीं है, खेत मजदूर के हिसाब से किसान अपने उचित प्राप्य से वंचित है। पानी, बीज के धान, खाद के लिए उनकी निरंतर लड़ाई, अनाहार और गरीबी में उनके दिन कटते हैं। स्वतंत्रता के बाद इस देश में जो आर्थिक प्रगति हुई है, उसका फल किसी मध्यवर्गीय मजदूर, खेत मजदूर को नहीं मिला।'

'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने खेतिहर मजदूरों के भयावह शोषण का प्रभावशाली चित्रण किया है तथा उसे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करके उसे सोचने पर विवश कर दिया है अधिकांश खेतिहर मजदूर नाममात्र की मजदूरी पर जमींदारों के खेतों में काम करते हैं और उस मजदूरी में से भी कुछ अंश उनके द्वारा लिए गए ऋण के सूद में कट जाता है। इस प्रकार वर्ष भर में बार-बार उन्हें जमींदार महाजन से ऋण लेना पड़ता है और बदले में अँगूठे का निशान देकर एक तरह से उनका बंधक मजदूर बन जाना पड़ता है। उदाहरण के लिए बनारी गाँव का जमींदार प्रताप अपने खेतिहर मजदूरी देता है और बदले में कागजों पर अँगूठा निशान ले लेता है। काँकड़ासोल गाँव का जमींदार रामेश्वर भी खेतिहर मजदूरों से काम तो करवाता है परंतु उनकी दस दिनों की मजदूरी नहीं देता। कदमकुआँ गाँव क जमींदार जगत्तारण ने तो अनेक खेतिहर मजदूरों को इसलिए बंधक बना रखा है क्योंकि उनके पूर्वजों ने जगतारण के बाद

दादाओं से कभी ऋण लिया था। वे पूर्वज उस ऋण का सूद चुकाने में जीवन-भर जमींदार के यहाँ मजदूरी करते रहे ओर अब उनके वंशज उनके बंधक मजदूर बने हुए हैं परंतु वह ऋण अभी तक ज्यों का त्यों बना हुआ है।

अतः यह कहा जा सकता है कि लेखिका ने 'अग्निगर्भ' उपन्यास में स्वतंत्र भारत में खेतिहर मजदूरों के शोषण की समस्या को अपना मुख्य उद्देश्य बनाया है। लेखिका मजदूरों के शोषण की समस्या को समाज के शिक्षित व सुसभ्य लोगों के समक्ष उठाकर उन्हें इसके दुष्परिणामों के प्रति सोचने के लिए बाध्य करती है।

9.3. 'अग्निगर्भ' में स्वतंत्रता के पश्चात भी प्रचलित जमींदारी प्रथा व महाजनी प्रथा का चित्रण

'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने स्वतंत्रता के पश्चात भी प्रचलित जमींदारी प्रथा के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। लेखिका ने भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि सन् 1954 ई. में पारित सरकारी कानून 'एस्टेट ऐक्टीवीजिशन एक्ट' के अनुसार किसी भी जमींदार अथवा व्यक्ति के पास पच्चीस एकड़ से अधिक भूमि नहीं होनी चाहिए परंतु पश्चिमी बंगाल व अन्य पूर्वी राज्यों में अनेक जमींदारों ने चाय बागान, मत्स्य पालन, कारखाने आदि के रूप में सैंकड़ों, हजारों एकड़ भूमि अपने अधीन कर रखी है। बनारी गाँव का जमींदार प्रताप पाँच हजार बीघे का मालिक है, उसके पास अपना पक्का मकान, कुएँ, तालाब आदि हैं। इसी प्रकार काँकडासोल गाँव का जमींदार रामेश्वर भूआँ पंद्रह हजार बीघे जमीन का मालिक है। उसकी गणना आस-पास के सबसे धनवान जमींदार जगत्तारण के पास यद्यपि पचास बीघे जमीन है परंतु इसके लिए भी उसने बंधक मजदूर रखे हुए है। ये जमींदार अपने खेतिहर मजदूरों व बटाईदार किसानों का भरपूर शोषण करते हैं।

'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने दर्शाया है कि जमींदार ही महाजनी का काम भी करते हैं। महाजनी व्यवसाय में पकड़कर ही ये जमींदार अपने खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी देते हैं ताकि धन व भोजन के अभाव में ये खेतिहर मजदूर, बटाईदार किसान इन्हीं जमींदारों-महाजनों से ऋण व धान उधार ले। इसके बदले में ये जमींदार उनसे कागज पर अँगूठे का निशान लगवाकर उनसे चक्रवृद्धि दर से ब्याज वसूल करते हैं। अब खेतिहर मजदूरों के पास पेट भरने योग्य भोजन तो है नहीं वे सूद कहाँ से चुका सकते हैं। फलतः धीरे-धीरे वे बटाईदार किसान खेतिहर मजदूर में और खेतिहर मजदूर बंधक मजदूर के रूप में बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए सूर्य सु के खेतों में हरी-भरी धान की फसल पानी के अभाव में सूख रही है जबकि उसके खेत के बीचों-बीच नहर का पानी उपलब्ध है। वह कर देकर नहर का पानी इसलिए नहीं लेना चाहता क्योंकि उसके यहाँ बटाईदार किसान काम करते हैं। यदि अच्छी फसल होगी तो बटाईदार किसानों को भी उतना ही अधिक धान मिलेगा। और फिर उन्हें वर्ष भर ऋण लेने की आवश्यकता न पड़ेगी। इसीलिए वह बी. डी. ओ. से कहता है – 'मेरी धान की बटाई की खेती है। कनाल से पानी लेकर खेती जितनी अधिक करूँग, वह उतना ही हिस्सा लेगा। बाबू, तुम भी बच्चे हो। वह खाता तो हमारी लक्ष्मी है। वे उदार लेंगे, मैं उधार दूँगा। चक्रवृद्धि सूद सब साले खरीद लिए जाएंगे।'संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के पश्चात जहाँ जमीन की सीमा संबंधी और महाजनों के ऋण संबंधी कानून बने हैं वही पूर्वी राज्यों में इन नियमों की धज्जियां उड़ाकर ये दोनों ही

प्रथाएँ विद्यमान हैं। लेखिका ने 'अग्निगर्भ' उपन्यास में जमींदारों व महाजनों के निर्मम, निष्ठुर व्यवहार, अत्याचार, शोषण आदि का स्पष्ट चित्रण किया है।

9.4. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में भ्रष्ट प्रशासन का यथार्थ चित्रण

यह तो निर्विवाद सत्य है कि स्वतंत्रता के पश्चात भारत में सबसे ज्यादा तरक्की भ्रष्टाचार ने की है। प्रत्येक सरकारी विभाग भ्रष्टाचारी अधिकारियों व कर्मचारियों से भरा हुआ है। ये भ्रष्टाचारी अधिकारी घूस खाकर अपने सरकारी कर्तव्यों के साथ-साथ अपनी नैतिकता का भी हनन कर सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने ऐसे भ्रष्ट अधिकारियों का स्पष्ट चित्रण किया है। बनारी गाँव का जमींदार प्रताप प्रशासनिक अधिकारियों को घूस देकर अपने क्षेत्र के सूखा पीड़ितों की राहत सामग्री व धनराशि को स्वयं प्राप्त करता है तथा उसे अपने हितों के अनुसार प्रयोग में लाता है।

यथा 'प्रशासन बहुत ही शिशु स्वभाव का हैं प्रशासनिक मनोवृत्ति इन्फैंटाइल डिसआर्डर से आक्रांत है। इसलिए भूखे-नंगे डेढ़ मील दूर चरसा नदी से बालू हटाकर पानी की तलाश में हैं, यह देखकर भी हर बरस रिलीफ के रुपये प्रताप को ही देता और प्रताप को तकलीफ होगी, इसीलिए सरकारी ठेकेदार देकर प्रताप के घर की चौहद्दी में तलाब खुदवाता, कुएँ खुदवाता।... बनारी में ग्राम हेल्थ सेंटर के लिए दिए हुए रुपयों से प्रताप के धान-चावल की लॉरी के आने-जाने के लिए पक्की सड़क बनी।'

वह अपने घर में सरकारी अधिकारियों, नेताओं, मंत्रियों आदि को बुलाकर उनका आतिथ्य करता है और बदले में वे प्रताप के घर में टंगी छः अवैध बंदूकों को देखकर भी कुछ नहीं कहते। काँकड़ासोल गाँव का जमींदार रामेश्वर अपने किलेनुमा मकान में सूबे के उच्च अधिकारियों व नेताओं को बुलाकर विदेशी शराब पिलाता है और अवसर पड़न पर ये प्रशासनिक अधिकारी खेतिहर मजदूरों पर अत्याचार करने वाले रामेश्वर की झूठी रिपोर्टों के आधार पर ही पुलिस को गाँव में भेजने का आदेश दे देते हैं।

लेखिका ने 'अग्निगर्भ' उपन्यास में भ्रष्ट प्रशासन तंत्र के साथ-साथ पुलिस व सेना के जवानों द्वारा तथाकथित अपराधियों के साथ क्रूरतम, अमानवीय अत्याचार करते हुए दिखाया है। सेना के जवान अपराधियों की स्त्रियों, उनके बच्चों पर भी अंधाधुंध गोलियां चलाते हैं, घायल अपराधियों द्वारा प्रतिरोध किए जाने पर उन्हें पेड़ों से बाँधकर उनके शरीर को मशीनगनों की गोलियों से छलनी कर देते हैं। यथा-ऑप्रेशन बाकुली में सेना के जवानों के द्वारा आदिवासी खेतिहर मजदूरों के साथ किए अत्याचार का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है – 'मृत व्यक्ति के हाथ तोड़कर वैन के पहियों में बाँधा जा सकता है-पीछे हाथ या पेड़ से हाथ पैर बाँधे जा सकते हैं नाखून उखाड़ना, आँखे निकाल लेना, यौनांग छिन्न हो सकते हैं, गूदामार्ग में छड़ छुसेड़ना, सारी पसलियाँ चूर-चूर हो सकती हैं- कॉमन गुण है, पूरे शरीर में अनगिनत गोलियाँ रहेंगी, समस्त मृत्यु की व्याख्या ही इस प्रकार करनी होगी, सम्मुख संघर्ष के परिणाम स्वरूप। बसाई टूडू भी सम्मुख संघर्ष में मारा गया। बालक-बालिका, शिशुओं की मृतदेह भी सम्मुख संघर्ष की थियरी द्वारा समझाई

जाती है ।' अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने अपने समाज की विभिन्न विसंगतियों, प्रशासनिक कमजोरियों, भ्रष्ट पुलिस तंत्र आदि का यथार्थ परक चित्रण किया है।

9.5. 'अग्निगर्भ' में राजनीतिक पार्टियों, नेताओं व मंत्रियों की स्वार्थ पर आधारित नीतियों का चित्रण

लेखिका ने 'अग्निगर्भ' उपन्यास में राजनीतिक पार्टियों की स्वार्थ सिद्धि पर आधारित नीतियों का भी यथार्थ परक चित्रण किया है। बसाई टूडू एक आदिवासी जनजाति से संबंधित है और वह कम्यूनिस्ट पार्टी क समर्पित कार्यकर्ता भी है। परंतु पार्टी के अधिकांश नेता खेतिहर मजदूरों के हितों के प्रति अपनी आँखे बंद कर लेते हैं क्योंकि इन पार्टियों को चंदा देने वाले जमींदार ही हैं। अतः ये राजनीतिक पार्टियाँ अपने आर्थिक लाभ के लिए देश की जनता, जरूरत मंद लोगों व अपने वायदों के प्रति उपेक्षा भरा व्यवहार करते हैं। 'एम. डब्ल्यू. बनाम लखिन्द' कहानी में मोहन राय नामक राजनेता अपने निकट के संबंधी जमींदार गौर लस्कर के हितों की रक्षा के लिए एम. डब्ल्यू. आई. सुबोध रूइदास को अवैध ढंग से धमकाता है तथा उसे निर्देश देता है कि वहाँ जाकर सरकारी दर की मजदूरी देने के लिए जमींदार को विवश न करें।

इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में कम्यूनिस्ट पार्टी का नेता सामन्त अपने पद को बनाए रखने के लिए बसाई टूडू को नक्सलवादी घोषित करा देता है। जबकि बसाई टूडू ने एक बार अपने प्राणों को संकट में डालकर सामन्त की जान बचाई थी तथा दूसरी बार अपनी भेंट की गई साईकल को बेचकर सामन्त के लिए आवश्यक धन जुटाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लेखिका ने सन् 1970 ई. से लेकर सन् 1976 ई. तक की अवधि में पश्चिम बंगाल की राजनीतिक पार्टियों, नेताओं आदि की पद लोलुपता स्वार्थ भावना आदि की चित्रण किया है तथा इमरजेन्सी के दौरान राजनीतिक पार्टियों के पारस्परिक मतभेद, द्वेष आदि का भी वर्णन किया है।

9.6. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में जातिगत भेदभाव की समस्या का चित्रण

'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका ने दर्शाया है कि स्वतंत्रता के पश्चात भी समाज के प्रत्यक्ष क्षेत्र में जातिगत भेदभाव का बोल बाला है। इस जातिगत भेदभाव के कारण ही समाज के निम्न वर्गों को बार-बार अपमानित न प्रताड़ित होना पड़ता है। उदाहरण के लिए बसाई टूडू कम्यूनिस्ट पार्टी का एक समर्पित कार्यकर्ता है परंतु वह आदिवासी से संबंधित होने के कारण पार्टी के नेताओं द्वारा ही अपमानित किया जाता है इसीलिए वह कहता है – 'नये जमाने में पार्टी के बाबू सान्ताल-काडरा-तिउरो को भाई-भांजा समझते हैं ? ऐं ? उससे सामन्त बाबू के डेरे पर तुम लोग पियाला में चा पीते, मैं मिट्टी के कुल्हड़ में,..... गुस्सा मत हो, काली बाबू, तुम्हारी तरह दो-चार लोग छोड़कर सब लोग कभी न कभी समझाकर छोड़ेंगे, कि बसाई, सान्ताल तेरे समाज के मनुस लँगोटी पहनते हैं, अकाल में चूहा-साँप खाते हैं।'

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेखिका ने 'अग्निगर्भ' उपन्यास में समाज की अनेक विसंगतियों का चित्रण किया है। उपन्यास की भूमिका में लेखिका ने लिखा है – '1967 ई. के मई जून में नक्सलबाड़ी अंचल में संगठित आंदोलन की पृष्ठभूमि विषय की पुनः आलोचना में सहायक होगी। इसके विरोध में ही किसानों का असंतोष और विद्रोह है।'

9.7. सारांश

उपर्युक्त समस्याओं का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि जिन खेतिहर मजदूरों का जमींदार-लोग, महाजन आदि मिलकर शोषण करें, प्रशासन तंत्र भ्रष्टाचारी होने के कारण उन्हें उचित सहायता न मिल सके, धनाभाव के कारण न्यायालय में जाना उनके लिए असंभव हो जाए, जातिगत भेदभाव के आधार पर उन्हें प्रताड़ना मिले तो निश्चय ही उनके सामने जो विकल्प बचते है या तो पशुओं के समान मूक रहकर इन सभी अत्याचारों को सह करते रहें और अंततः शोषण की चक्की में पिस-पिस कर मर जाएं या फिर इस अत्याचारी सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिए सशस्त्र संघर्ष पर उतर आँ और तब तक संघर्ष करते रहें जब तक उन्हें उनके अधिकार न मिल जाएं। बसाई

टूडू, द्रौपदी, मसाई टूडू मघई, लखिन्द आदि सभी पात्र जमींदारों-महाजनों के शोषण का शिकार हैं तथा अंततः उन्हें हिंसक आंदोलन को अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अतः 'अग्निगर्भ' उपन्यास का उद्देश्य इन समस्याओं को चित्रित करके उनके शांतिपूर्ण व पक्षपात रहित समाधान खोजना है।

9.8. बोध प्रश्न

1. अग्निगर्भ में चित्रित राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

2. अग्निगर्भ उपन्यास के द्वारा तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

3. अग्निगर्भ उपन्यास में जातिगत भेदभाव की समस्या का चित्रण कैसे किया।

9.10. सहायक ग्रंथ

1. अग्निगर्भ उपन्यास मूल।

2. अग्निगर्भ महाश्वेता देवी।

डॉ. सोनकांबळे पिराजी मनोहर

10. अग्निगर्भ (महाश्वेता देवी)

10.0. उद्देश्य

इस इकाई में आप जान पाएंगे

1. इस पाठ में आप सर्व प्रथम महाश्वेता देवी के जीवन का परिचय प्राप्त करेंगे।
2. भारतीय साहित्य और महाश्वेता देवी के चिंतन को समझ सकेंगे।
3. इस पाठ के माध्यम से आप भारतीय साहित्य में महाश्वेता देवी के लेखन का परिचय प्राप्त करेंगे।
4. इस पाठ में महाश्वेता देवी के व्यक्तित्व का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
5. इस पाठ में बंगाल के तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से अवगत होंगे।
6. इस पाठ में अग्निगर्भ में उन तमाम आंदोलनों से परिचित होंगे।
7. इसके माध्यम से भारतीय जमींदारी प्रथा के असली चेहरे का पर्दाफाश होगा।
8. किसान और मजदूरों के साथ जमींदारों के अत्याचारों को जान पाएंगे।
9. आदिवासी समाज के साथ किए जाने वाले सदियों के अत्याचारों से परिचित होंगे।
10. महाश्वेता देवी और आदिवासी समुदायों के बीच के अंत संबंध को जान पाएंगे।

रूपरेखा

10.1. प्रस्तावना

10.2. महाश्वेता देवी का साहित्यिक परिचय

10.3. 'अग्निगर्भ' उपन्यास के संदर्भ में लेखिका के विचार

10.4. सन् 1967 के नक्सलबाड़ी आंदोलन

10.5. 'अग्निगर्भ' की कथावस्तु

10.6. बसाई टूडू का चरित्र चित्रण

10.7. काली साँतरा का चरित्र चित्रण

10.8. द्रौपदी का चरित्र चित्रण

10.9. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में देशकाल व वातावरण का वर्णन

10.10. पात्र-योजना एवं चरित्र चित्रण

10.11. अग्निगर्भ के नाम की सार्थकता

10.12. भाषा शैली

10.13. सारांश

10.14. बोध प्रश्न

10.15. सहायक ग्रंथ

10.1. प्रस्तावना

महाश्वेता देवी का नाम ध्यान में आते ही उनके व्यक्तित्व की अनेक छवियाँ आँखों के सामने उभरकर आती हैं। उन्होंने मेहनत ईमानदारी के आधार पर अपने व्यक्तित्व को निखारा। अपने को एक पत्रकार, लेखक, साहित्यकार और आंदोलनधर्मी के रूप में विकसित किया। वह उन लेखिकाओं में से थी जिन्होंने लेखन के साथ-साथ सामाजिक कार्य के लिए अपना अधिकांश समय व्यतीत किया। अपने लेखन से अधिक महत्व उन्होंने झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओड़िशा के आदिवासियों और संघर्ष रत लोगों को दिया। अपने लेखन में इन्हीं लोगों को उन्होंने अधिक प्राथमिकता दी है। उनका संघर्ष, उनका सामाजिक अधिकार आदि ही उनके लेखन का माध्यम बना। महाश्वेता देवी की अभिव्यक्ति में सादापन, मार्मिकता और मारकता होने के कारण लेखन में निर्भीकता की प्रधानता रही।

10.2. महाश्वेता देवी का साहित्यिक परिचय

महाश्वेता देवी एक बांग्ला साहित्यकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता रही हैं। इनका जन्म 14 जनवरी 1925 को ईस्ट बंगाल जो भारत विभाजन के समय पूर्वी पाकिस्तान और वर्तमान में (बांग्लादेश) के ढाका शहर में हुआ था। इन्हें 1996 में ज्ञानपीट पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। महाश्वेता देवी एक ऐसा नाम है जो ध्यान में आते ही उनकी अनेक छवियाँ आँखों के सामने प्रकट हो जाती हैं। जिन्होंने अपनी मेहनत और ईमानदारी के बलबुते अपने व्यक्तित्व को निखारा है। उन्होंने अपने को एक पत्रकार, लेखक, साहित्यकार और आंदोलन धर्मी के रूप में विकसित किया है। महाश्वेता देवी के पिता मनीष घटक एक कवि एवं उपन्यासकार थे। उनकी माता धरीत्री देवी भी एक लेखिका और सामाजिक कार्यकर्ता थी। महाश्वेता देवी की आरंभिक शिक्षा ढाका में हुई। भारत विभाजन के समय किशोरावस्था में ही उनका परिवार पश्चिम बंगाल में आकर बस गया था। बाद में उन्होंने विश्वभारती, शांतीनिकेतन से बी. ए. (Hons) अंग्रेजी में किया और फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम. ए. अंग्रेजी में किया। कोलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में मास्टर की डिग्री प्राप्त करने के बाद एक शिक्षक और पत्रकार के रूप में नौकरी भी की। तत्पश्चात 1984 में लेखन पर ध्यान केंद्रित करने के लिए उन्होंने सेवानिवृत्ति ले ली थी।

महाश्वेता देवी ने अपना सारा जीवन ही मानो आदिवासियों के साथ गुजार दिया हो। जल, जंगल और जमीन की लड़ाई के संघर्ष में खर्च कर दिया था। वे पश्चिम बंगाल की दो जनजातियों 'लोधास' और 'शबर' आदि पर बहुत काम किया है। इस बीच महाश्वेता देवी ने उनके आदिवासियों के संघर्ष को बहुत करीब से महसूस किया था। इसीलिए उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन और साहित्य आदिवासी और भारतीय जनजातीय समाज को समर्पित कर दिया है। इसलिए उनके नौ कहानी संग्रहों में से आठ कहानी संग्रहों के केंद्र में आदिवासी जनजाति है, जो आज भी समाज की

मूख्यधारा से कटकर जी रहा है। पीड़ा के ये स्वर उनकी रचनाओं में साफ-साफ सुनाई देते हैं। उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों में 'अग्निगर्भ', 'जंगल के दावेदार' और '1084 की माँ' हैं।

महाश्वेता देवी को 'भारतीय ज्ञानपीट' (1996), 'रैमन मैग्सेसे' (1997) और 'पद्म विभूषण' (2006) आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। पिछले दशक में महाश्वेता देवी को कई साहित्यिक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। महाश्वेता देवी को मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है जो एशिया महादीप में नोबेल पुरस्कार के समकक्ष माना जाता है फिर भी वह कहती रही कि 'मैं किसी पुरस्कार के लिए नहीं लिखती।' उन्होंने साहित्य व सांस्कृतिक आंदोलन के साथ राजनीतिक आन्दोलनों में भी भाग लिया। तसलीमा नसरीन को कोलकाता से हटाये जाने के मामले को लेकर वह पश्चिम बंगाल व केंद्र सरकार के रवैये से काफी आहत थी।

10.3. 'अग्निगर्भ' उपन्यास के संदर्भ में लेखिका के विचार

महाश्वेता देवी अपनी इस प्रसिद्ध कृति को श्री ओमप्रकाश जी को समर्पित करते हुए लिखती हैं 'बटाईदारी-अधिया जैसा घृणित प्रथा में किसान पिस रहे हों, खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी न मिले, बीज-खाद-पानी बिजली के लाले पड़े तो उनका अस्तित्व दाँव पर होता है, ऐसे में वह सामंती हिंसा के विरुद्ध हिंसा को चुन ले तो क्या आश्चर्य ?'

अग्निगर्भ का संथाल किसान बसाई टूडू किसान-संघर्ष में मरता है। लाश जलने के बावजूद उसके फिर सक्रिय होने की खबर आती है। बसाई फिर मारा जाता है। वह अग्निबीज है और अग्निगर्भ है सामंती कृषि व्यवस्था। महाश्वेता देवी मानती हैं कि धधकते वर्ग- संघर्ष को अनदेखा करने और इतिहास के इस संधिकाल में शोषितों का पक्ष न लेनेवाले लेखकों को इतिहास माफ नहीं करेगा। असंवेदनशील व्यवस्था के विरुद्ध शुद्ध, सूर्य-समान क्रोध ही उनकी प्रेरणा है – अग्निगर्भ।

इस कृति के संदर्भ में महाश्वेता देवी लिखती हैं – जिन्हें मैंने कभी नहीं देखा किन्तु जो फिर भी मेरे अत्यंत निकट थे क्योंकि हमारी अवस्थाएँ और मूल्य समान थे और जिन्होंने मुझे हिन्दी पाठकों से परिचित कराया।

अग्निगर्भ एक प्रेरक कृति है जो पश्चिम बंगाल समेत पूरे भारत वर्ष में भूमिहीन किसानों के असंतोष और विद्रोह का इतिहास समकालीन घटना मात्र नहीं है। आधुनिक इतिहास के हर पर्व में विद्रोह का प्रयास, उनके प्रति दूसरे वर्ग के शोषण के चरित्र को प्रकट करता है, जो अब तक प्रायः अपरिवर्तनीय बना हुआ है। दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी, खड़ीबाडी और फाँसी से लगने वाले अंचल के अधिकांश भाग के रहने वाले आदिवासी भूमिहीन किसान हैं। उनमें मेदी, लेप्चा, भोटिया, संथाल, उराँव, राजबंसी और गोरखा संप्रदाय के लोग हैं। स्थानीय जमींदारों ने बहुत दिनों से चली आ रही 'अधिया' की व्यवस्था में उन पर अपना शोषण जारी रखा है।

मेरी कहानियों की पृष्ठभूमि का उद्देश्य प्रमुखतः नक्सलबाड़ी घटना-वाली और उसकी पृष्ठभूमि का उल्लेख प्रधानतः होने पर भी यह मानना होगा कि इस देश के कई दशकों की जीवन-यात्रा में वही सबसे अधिक उल्लेखनीय

और अनुप्राणित होने योग्य घटना है। बसाई टूडू-द्रोपदी की ये सारी घटनाएँ ही तात्कालिक परिणाम में नाम और स्थानीय अवस्थिति के सिवा काल और देश के प्रतीक बन गये। अवश्य ही किसी भी आंदोलन का शायद साधन-मार्ग और परिणाम सच नहीं होता, एकमात्र इतिहास ही उनके मूल्य का निर्णायक होता है। और वर्तमान युद्धरत मनुष्य इसलिए सब देशों में अपना बनाया सारा मार्ग तोड़कर नया पथ निर्मित करने का स्वप्न देखता है और प्रतिज्ञा करता है। इतिहास के द्वंन्द्वपूर्ण मार्ग पर इसी कारण निरंतर गंतव्य स्थान का सत्य ही सत्य के नाम से चित्रित होता है। किन्तु सब जगह समस्या केवल भूमि की नहीं है। एक तो पानी, जिसमें रात को भात भिगोकर रखा जाता है। खेतमजूर के हिसाब से किसान अपने उचित प्राप्य से वंचित हैं। बीज के धान, खाद के लिए उसकी निरंतर लड़ाई, अनाहार और गरीबी में उनके दिन कटतें हैं। स्वतंत्रता के बाद देश में जो आर्थिक प्रगति ही है, उसका फल किसी मध्यवर्गीय-मजदूर-खेतमजदूर को नहीं मिला। एक ओर, धनी-वर्ग और अधिक धनी हो गये हैं, एक आत्मतुष्ट, अशिक्षित, असभ्य नया धनिक-वर्ग उत्पन्न हुआ है। दूसरी ओर सामान्य मध्यवित्त लोगों के पास जो कुछ था उसे खोकर वे अधिक गरीब बन गये। निम्मवित्त एवं मध्य-वित्त वर्ग आज संपूर्ण रूप से क्षय होने की ओर बढ़ रहे हैं। धनी किसान और अधिक धनी हो गये हैं, मामूली जमीनों के मालिक अपनी अंतिम सहारे धरती को जमींदार-महाजन को देकर खेतमजूरी की संख्या बढ़ा रहे हैं। इसके अलावा जीवित रहने का मौलिक अधिकार भी यहाँ उनके लिए निषिद्ध है, वहीं शहरी धनी मध्यवर्ग और उच्च वर्ग के किरायेदार साहित्य के नाम से अपने-अपने आत्मानुशीलन में लगे हैं। रोम जलने के बाद नीरो ने वायलिन बजाया तो था। उनको भूलकर अपने वायलिन का गुंजना ही उसे अच्छा लग रहा था।

'अग्निगर्भ' उपन्यास लिखने की जरूरत बताते हुए लेखिका लिखती है। संभवतः अब कुछ घर की बात भी बताने की जरूरत है। मेरी रचना में निर्देशित राजनीति खोजना व्यर्थ है। शोषित और पीड़ित मानव के प्रति संवेदनशील मानव ही मेरे लेखन की प्रधान भूमिका है। 'जल' कहानी का मास्टर भला कौन विवेकवान कांग्रेसी है। 'एम. डब्ल्यू. बनाम लखिन्द' गल्प का खेतमजूर-आंदोलन सी. पी. आई. के खेतमजूर यूनियन का नेतृत्व प्रदान किया आंदोलन है। 'आपरेशन बसाई टूडू' कहानी की काली साँतरा सी. पी. एम. दल में रहा है, बसाई टूडू ने स्वयं नक्सल-आंदोलन को भी छोड़ दिया था। और द्रोपदी गल्प की नायिका आदिवासी नक्सल-कार्यकर्ती थी। मानसिकता में और कहीं एक ओर वहीं एकीभूत होना मेरे निकट परस्पर विरोधी नहीं है। 'जीवन गणित नहीं है और राजनीति के लिए मनुष्य नहीं, मनुष्य के स्वाधिकार को जीवित रखने के अधिकार को सार्थक करना ही समस्त राजनीति का लक्ष्य होना उचित है, यह मेरा विश्वास है।'

लेखिका आगे कहती है कि मुझे वर्तमान समाज-व्यवस्था को बदलने की आकांक्षा है। मैं शुद्ध दलगत राजनीति में विश्वास रखती हूँ। स्वतंत्रता के इकत्तीस बरस में मैंने अन्न, जल, जमीन, कर्ज, बेगार आदि से देश के किसी भी मनुष्य को मुक्ति पाते नहीं देखा। जिस व्यवस्था ने यह मुक्ति नहीं दी उसके विरुद्ध शुभ्र, शुद्ध और सूर्य के समान क्रोध ही मेरे समस्त लेखन की प्रेरणा है दक्षिण-वाम-सभी दल सामान्य मनुष्य से किये हुए वायदों को पूरा करने में असफल रहे हैं ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे जीवन-काल में इस विश्वास को बदलने का कोई कारण होगा, ऐसी आशा नहीं है, इसी से सामर्थ्य के अनुसार मानव की कथा ही लिखी, जिससे कि सामना होने पर उसके लिए लज्जित न होना पड़े

क्योंकि लेखक को जीवन-काल में ही अंतिम न्याय के लिए उपस्थित होना पड़ता है और जवाबदेही की जिम्मेदारी रह जाती है।

10.4. सन् 1967 के नक्सलबाड़ी आंदोलन

आधुनिक इतिहास के हर पर्व में विद्रोह का प्रयास, उनके प्रति दूसरे वर्ग के शोषण के चरित्र को प्रकट करता है, कालान्तर में भी अब तक वह प्रायः अपरिवर्तनीय बना है। सन्यासी विद्रोह, वहाबी आंदोलन, नील विद्रोह, एक समय से दूसरे समय तक और विद्रोह में आरंभ कर आज के नक्सलबाड़ी आंदोलन ने प्रायः एक ही मौलिक अधिकार को जोरों से ऐतिहासिक मर्यादा दी है। 1967 के मई-जून में नक्सलबाड़ी अंचल में संगठित आंदोलन की पृष्ठभूमि विषय की पुनः आलोचना में सहायक होगी। दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी, खड़ीबाडी और फाँसी लगने वाले अंचल के अधिकांश भाग के रहने वाले आदिवासी भूमिहीन किसान हैं। उनमें मेदी, लेप्चा, भोटिया, संथाल, ओराँव राजबंसी और गोरखा संप्रदाय के लोग हैं। स्थानीय जमींदारों ने बहुत दिनों से चली आ रही 'अधिया' की व्यवस्था में उन पर अपना शोषण जारी रखा। इस व्यवस्था के नियम के अनुसार जमींदार भूमिहीन किसानों के बीज के लिए धान, हल-बैल, खाना और मामूली पैसे देकर अपने खेत में काम पर लगाते, उपज का अधिकांश भाग जमींदार के घर जाता। इसके विरोध में ही किसानों का असंतोष और विद्रोह है। उपज का बड़ा भाग जमींदार के घर जाना, मामूली बात पर राजी-नाराजी के आधार पर किसानों को जमीन से अलग कर देना ओर सबसे अधिक जमीन के लिए किसान की आदिम भूख है। इस तरह असंतोष और संघर्ष के दृष्टिकोण से ही 1954 में सरकार ने 'एस्टेट ऐक्वीजिशन ऐक्ट' पास किया। इस कानून की खास बात थी कि कोई व्यक्ति कुल मिलाकर 25 एकड़ से अधिक जमीन न रख सकेगा। इस कानून के पीछे अच्छी नीयति में शक नहीं, लेकिन क्रियान्वित करने में जमीन के मालिकों की मामूली-सी जमीनें ही गयीं। बेईमानी की सारी जमीनें उनके पास रह गयीं। 1971 में परिवार के आधार पर कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निश्चित कर जो कानून (संशोधित) पास किया गया, उसमें भी कोई लाभ नहीं हुआ। सबको पता हैं कि कानून में मछलियों को पालने के बाड़े, चाय के बाग, औद्योगिक कारखाने इत्यादि नामों की ओट में हजारों एकड़ खेती की जमीन छिपा रखने के विरुद्ध कोई बात ही नहीं।

असंतोष का अन्यतम कारण इस इलाके के चायबागांनों की मिल्कियत की जमीनें थी। यहाँ काम करने वाले मजदूर प्रमुखतः बागान-मालिकों के लाये हुए थे। वंश परंपरा से रहते हुए स्थानीय निवासी हो गए थे। अमानवीय शोषण के दबाव से ये सदा ही असंतुष्ट रहते और इनके बारे में 1967 के 6 जून के 'द स्टेट्समैन' अख़बार में लिखा था 'ऑल मोस्ट ए स्टेट ऑफ क्रूअल स्लेव्री।' इन चाय बागानों के मालिकों के कब्जे में जो अतिरिक्त जमीन थी, उसे उन्होंने आश्रित श्रमिकों में लेने की सोची, किन्तु बाद में योजना छोड़ दी गयी। इससे श्रमिकों ने मन में असंतोष आरंभ किया। उनकी मूल माँग थी कि चाय-बागान की अतिरिक्त भूमि सरकारी अधिकार के आश्रय में लानी होगी और उन लोगों में उसे बाँट देना होगा। 1956 में इस आंदोलन ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया था।

परिणाम स्वरूप बागानों के मालिकों ने जमीनों से अधिकारियों को उखाड़ फेंका। उनके घर-द्वार के मालिकों को पैरो के नीचे कुचलकर तहस-नहस करवा दिये। इस प्रकार के अत्याचार और अन्याय और अन्याय के विरुद्ध नक्सलबाड़ी के किसान एक दिन संगठित होकर विद्रोह करने निकल पड़े। उस आंदोलन में एक ही तरह से वंचित-शोषित किसानों को आंध्र में, केरल में, तमिलनाडु में, बिहार में और उड़ीसा में प्रेरणा मिली। जिसे 'नक्सलबाड़ी आंदोलन' नाम दिया गया। वास्तव में इस आंदोलन को बहुत से नाम दिए गए हैं। सारे काम का मुकाबला किस तरह किया गया, यह सभी जानते हैं। घटनाओं से चरम वामपंथी पतन, किताबी और बहुत जोशीले युवकों का फ्रस्टेशन अन्य शक्तियों और कृपाओं पर पली संस्थाओं के क्रियाकलाप जो भी क्यों न कहा जाये, कुछ तो सचमुच बाकी रह ही जाता है। जिन-जिन कारणों से यह आंदोलन उत्पन्न हुआ वे अक्षुण्ण और अप्रतिबंधित हैं। इस मत के अनुयायी युवकों ने ही अहिंसक भारत में पहले-पहल हिंसा की राजनीति लाने का प्रयास किया है।

ऐसा होने पर भी भारत के नक़्शे से कुछ-कुछ चिह्न पोंछकर मिटाये नहीं जा सकते। भूखे किसानों का शोषण बे रोक-टोक चल रहा है। जमींदारों ने बेईमानी, देश की प्रायः सारी खेती-योग्य भूमि कुछ हजार परिवारों की मिल्कियत में कर ली है। दूसरे नाम से चक्रवृद्धि ब्याज से पीसना और बेगार लेना चल रहा हैं। ग्राम्य भारत का स्वरूप श्मशान की तरह है। सूखे में और गरमी में आदिवासी पर अन्याय तथाकथित अवर्ण हिन्दू जाति के लोग सूखी नदी का कलेजा खोदकर पानी तलाश करते हैं, भात का फेन और आमानी बिकते हैं। पलामू के आदिवासी लोगों को चीना घास के बीच के सिवा और कोई चीज खाने को प्रायः नहीं मिलती। आंध्र में कांग्रेस की विजय के अर्थ निश्चय ही यह नहीं है वहाँ बहुत दिनों से नक्सल-दमन के नाम से अवर्णनीय अत्याचार नहीं हुए। जिन-जिन कारणों से आंदोलन भड़का, वे कारण अभी मौजूद हैं। हर जन-आंदोलन के पीछे के उनके कारणों की विवरण संख्या बाद के खोज करने वालों ने जमा की। यह देखा गया है कि आंदोलन का स्वरूप और प्रवृत्ति लेकर जितनी गड़बड़ रही, दमन में उतनी ही दक्षता रही। क्षणिक होते हुए भी किन-किन कारणों से तृण भूमि में आग लगी, इस बारे में सब मौन हैं। किन्तु प्रशासन के मौन रहने की क्या सच्चाई समाप्त हो जाती है ?

10.5. 'अग्निगर्भ' की कथावस्तु

कथावस्तु से तात्पर्य है 'उपन्यास में जिस मूल घटनाक्रम या कथा का वर्णन किया जाता है, उसे उपन्यास की कथावस्तु कहते हैं।' उपन्यास में कथानक का महत्व अन्य सभी तत्वों से अधिक होता है, क्योंकि इसके ऊपर उपन्यास का संपूर्ण अस्तित्व टिका रहता है।

'अग्निगर्भ' उपन्यास पश्चिम बंगाल में और भारतवर्ष में कृषक वर्ग, भूमिहीन किसानों के असंतोष और विद्रोह की कथा है। स्थानीय जमींदारों ने अधिया की व्यवस्था में उन लोगों पर अपना शोषण जारी रखा। इस व्यवस्था के अनुसार जमींदार भूमिहीन किसानों को बीज के लिए धान, हल, बैल और मामूली पैसा देकर अपने खेतों में काम लगाते और उपज का अधिकांश भाग जमींदार के घर जाता था। मामूली बातों पर किसानों को उनकी जमीन से बेदखल कर दिया जाता था। यही सब कारण थे कि पीड़ित और शोषित किसानों के मन में असंतोष की गाँठ पड़ गयी

। सन् पचास के मध्य में अधिया वालों ने मालिकों के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। इस आंदोलन ने भयंकर रूप धारण कर लिया। परिणामस्वरूप जमीन-मालिकों ने अधिया वालों को उखाड़ फेंका। भूखे किसानों का शोषण बेरोक-टोक चलता रहा।

'अग्निगर्भ' उपन्यास का आरंभ ही इसके नायक बसाई टूडू के मौत की खबर के साथ होता है। 'ऑपरेशन बसाई टूडू' कहानी का काली साँतरा सी. पी. एम के संगठन में था और बसाई टूडू ने स्वयं नक्सल आंदोलन को छोड़ दिया था। द्रौपदी इस कहानी की आदिवासी नक्सल कार्यकर्ता रहती है। इस उपन्यास में आदिवासी ग्रामीण जन-जीवन का चित्रण किया गया है। जिसमें बाकुली, जागुला, चरसा गाँव तथा नदी का उल्लेख किया गया है। काली साँतरा प्रौढ़ और प्रशासन का आदमी रहता है। काली कभी बसाई के साथ किसान आंदोलन में रह चुका था। प्रशासन हर वर्ष बसाई टूडू पर छः लाख रुपये खर्च करने के बाद भी बसाई का एक फोटो नहीं खींच पाया। बसाई चार बार आमने-सामने की लड़ाई में मारा गया। चारों बार वह किसी-न-किसी रूप में प्रकट हो जाता है। प्रताप लश्कर और रामेश्वर मुआँ के माध्यम से महाजनों और जमींदारों का चित्रण किया गया है। इन लोगों द्वारा आदिवासी ग्रामीणों का शोषण किया गया है जो 'अग्निगर्भ' उपन्यास का मूल कथ्य है।

इस उपन्यास के कथानक में फिल्मों की भाँति फ्लैश-बैक (एक-एक कर पूर्ववर्ती घटनाओं का आगे आना) पद्धति का अनुसरण किया गया है। यह उपन्यास भारत के पूर्वी राज्यों में चल रहे नक्सल आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में इस सत्य को उद्घाटित करता है कि यदि राजनीतिक पार्टियाँ, प्रशासन आदि जमींदारों के इशारों पर चलते रहे और उन्हें मजदूरों का मनमाना शोषण करने दिया जाए तो ऐसी दशा में निर्धन मजदूर हिंसक आंदोलन पर उतर आएं तो बड़ी बात न होगी। आलोच्य उपन्यास का कथानक मूलतः इसी प्रकार की समस्या पर आधारित है। सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात खेतिहर मजदूरों समेत सभी स्त्री-पुरुष मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी दर तय कर दी है परंतु पश्चिमी बंगाल के कुछ क्षेत्रों के जमींदार इस दर को स्वीकार न करके अपने खेतिहर मजदूरों को नाममात्र की मजदूरी देते हैं और वह भी उनके ऋण व उसके ब्याज के रूप में काट ली जाती है। इस प्रकार ये जमींदार महाजन भी बने हुए हैं। अंततः ये मजदूर इन जमींदारों की हत्या करने में पर उतारू हो जाते हैं। इस उपन्यास का कथानक आदिवासी जाति 'सांथाल' के एक व्यक्ति बसाई टूडू पर केंद्रित है। इकसठ वर्षीय काली साँतरा कम्यूनिष्ट पार्टी का समर्पित कार्यकर्ता है। उसके पिता ने वर्षों पहले भारत में साम्यवाद की बढ़ती लहर से प्रभावित होकर अपनी जमीन खेतिहर मजदूर बेतूल को दे दी थी। अब उसकी पत्नी गिनिमाला व उसका पुत्र निर्वाण दोनों ही उसकी उपेक्षा करते हैं। अब वह 'जिलावार्ता' नामक पत्र का संपादक है। अचानक उसे खबर मिलता है कि बसाई टूडू क जंगल में मृत्यु हो गयी है। इससे पहले चार बार उसे बसाई टूडू की मृत्यु का समाचार मिला था और चार विभिन्न शवों को बसाई टूडू के रूप में पहचानने के लिए पुलिस के साथ जाना पड़ा था।

अब सन् 1977 में पाँचवीं बार वह पुलिस के आने से पहले ही बसाई टूडू की मृत्यु की खबर की सच्चाई जानने के लिए जंगल में पहुँचकर वह बेतूल से मिलता है तथा बेतूल उसे पहले अपने पुत्र के नक्सलवादी होने की

खबर सुनाता है तथा वह काली साँतरा को बसाई टूडू के अड्डे तक पहुँचाने के लिए जंगल में साथ जाता है। रास्ते में चलते-चलते काली साँतरा को बसाई टूडू के साथ लगभग दस वर्ष पहले हुई मुलाकात का स्मरण हो उठता है।

वह सबसे पहले सन् 1970 में बसाई टूडू के साथ हुई भेंट के दौरान उठी समस्याओं को याद करता है, उसके बाद वह एक-एक करके चार बार बसाई टूडू क मृत्यु से संबंधित घटनाओं को याद करता है। बसाई टूडू जब छह वर्ष का ही था तब उसके माता-पिता का देहांत हो गया था। बुआ ने कुछ दिनों तक उसे पाला परंतु शीघ्र ही उसकी भी मृत्यु हो गयी। गोकुल बाबू नामक एक व्यक्ति ने उसे मिशन में भर्ती करवा दिया परंतु वह वहाँ से भाग आया। गोकुल बाबू ने उसे कम्यूनिष्ट पार्टी का एक साधारण-सा कार्यकर्ता बना दिया। वह धीरे-धीरे कम्यूनिष्ट पार्टी का एक समर्पित व कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता बन गया। सन् 1945 में वर्धमान हाट ही गोबिन्द पुर कांफ्रेंस में उसकी पहचान एक अन्य समर्पित कार्यकर्ता काली साँतरा से होती है। सन् 1969 के आस-पास बसाई टूडू अचानक ही कम्यूनिष्ट पार्टी छोड़ देता है। पार्टी का स्थानीय नेता सामन्त पहले नवीन व मोती बाबू नामक दो कार्यकर्ताओं को उसके पास पार्टी छोड़ने का कारण जानने के लिए भेजता है परंतु बसाई टूडू उन्हें बिना कुछ कारण बताए वापस भेज देता है। अंततः सामन्त काली साँतरा को बसाई टूडू के पास भेजता है। काली साँतरा बसाई टूडू के पास पहुँचकर उससे जब कारण पूछता है तब बसाई टूडू अपने ही जैसे खेतिहर मजदूरों पर बढ़ते अन्याय व अत्याचार की समस्या के संबंध में अनेक प्रश्न खड़े करता है।

वह काली साँतरा से पूछता है कि सन् 1943 में कम्यूनिष्ट पार्टी की किसान सभा क नालिता बाड़ी में कांफ्रेंस हुई थी जिसमें पहली बार खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी दर घोषित करने की मांग उठी गई थी। परंतु अब स्वतंत्रता के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी खेतिहर मजदूरों को सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम मजदूरी दर नहीं मिल पा रही है। आखिर इसका कारण क्या है ?

वह काली साँतरा को बताता है कि कम्यूनिष्ट पार्टी के वे सदस्य जो जमींदार-परिवार से या धनवान परिवारों से आए हैं वे खेतिहर मजदूरों को पार्टी से तो जोड़े रखना चाहते हैं परंतु न तो अधिकार उन्हें देना चाहते हैं और न ही पार्टी के उच्च पदों पर खेतिहर मजदूरों के प्रतिनिधि को नियुक्त करते हैं। वह काली साँतरा से इस उपेक्षित व्यवहार का कारण जानना चाहता है।

फिर वह काली साँतरा को बताता है कि कम्यूनिष्ट पार्टी की किसान सभा ने बटाईदार किसानों की समस्या के लिए तो आंदोलन किया था उनकी मांगो के लिए न तो आंदोलन किया न ही उनकी मांगो का समर्थन किया। इसका कारण बताते हुए बसाई टूडू कहता है कि सभी छोटे व बड़े किसानों को अपने खेतों में खेतिहर मजदूर लगाने पड़ते हैं। यदि खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दर देने की मांग का समर्थन किया गया तो उन्हें भी खेतिहर मजदूरों की सरकारी दर से मजदूरी देनी पड़ेगी। अतः यह काली साँतरा से पूछता है कि जब कि छोटे-छोटे किसान धीरे-धीरे खेतिहर मजदूर बनते जा रहे हैं, ऐसी दशा में क्या किसान सभा द्वारा खेतिहर मजदूरों की मांग का समर्थन न करना उचित था।

बसाई टूडू काली साँतरा को रात-भर अपने यहाँ ठहराता है। वह काली साँतरा का परिचय बसाई टूडू व उसके बच्चों स करवाता है। संध्या के समय वह नहर से मछली पकड़ कर लाता है। वहीं पर बसाई टूडू बताता है कि वह द्रोपदी नामक युवती के साथ विवाह करना चाहता था, परंतु उस युवती ने किसी और से विवाह कर लिया। तभी द्रोपदी अपने पति दूलना माझी के साथ वहाँ पहुँच जाती है। रात के समय आदिवासी मिलकर भोजन करते हैं। सुबह काली साँतरा वापस पहुँचकर पार्टी नेता सामन्त यह समझने लगता है कि काली साँतरा भी बसाई टूडू के साथ मिला हुआ है और बसाई टूडू ने नक्सलवादियों की सहयता लेनी आरंभ कर दी। काली साँतरा उन घटनाओं को याद करता है जब बसाई टूडू ने गंभीर रूप से बीमार सामन्त को अपनी पीठ लादकर बस स्टैंड तक ले गया तथा वहाँ से बस के ड्राइवर को धमकाकर स बस में अन्य सवारी लिए बिना सीधे अस्पताल ले गया। इस प्रकार एक दूसरी घटना में बसाई टूडू ने सामन्त के लिए अपनी वह साइकिल बेच दी थी जो कि खेतिहर मजदूरों ने उसे खरीद कर दी थी और जिसे वह अपने प्राणों से भी अधिक महत्वपूर्ण समझता था।

काली साँतरा सोचने लगता है कि उस जैसे तथा बसाई टूडू जैसे समर्पित कार्यकर्ता को पार्टी में अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अधिकांश नेताओं ने पार्टी को रोजगार का साधन बना लिया है तथा जो एक बार नेता बन जाता है, वह जीवन भर उसी पद पर बैठा रहना चाहता है। उसे लगता है कि यह प्रणाली पार्टी के हित में नहीं है। अब वह उस घटना को याद करता है जब वह पहली बार बसी टूडू के शव की पहचान करने के लिए गया था।

बनारी गाँव का जमींदार प्रताप पाँच हजार बीघे का मालिक है। इस क्षेत्र में जब भी सूखा पड़ता है, प्रशासन तंत्र सूखा राहत सामग्री प्रताप को सौंप देता है। प्रताप उस राहत सामग्री का अपने स्वार्थ सिद्धों में प्रयोग करता है। इस क्षेत्र में सूखा पीड़ितों के लिए खोदे जाने वाले कुएं की सहायता से राशि से प्रताप खेतों, बागों में कुएँ खोदे जाते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रताप भ्रष्ट प्रशासन तंत्र को घूस खिलाकर इस क्षेत्र में अपना कानून चलाता है। सन् 1970 के वैशाख के महीने में प्रताप के गाँव क दो खेतिहर मजदूर माधव और गोपी बसाई टूडू को जाकर बताते हैं कि प्रताप सरकारी दर पर मजदूरी नहीं दे रहा है। बसाई टूडू उस गाँव में पहुँचकर उन मजदूरों को संघर्ष के लिए तैयार करता है। पहले गोपी व माधव जमींदार प्रताप से यह निश्चित करवा लेते हैं कि उन्हें सरकारी दर पर मजदूरी दी जाएगी। परंतु प्रताप एक ओर तो उनसे काम करवाता रहता है तथा दूसरी ओर से बाहर से मजदूर लाने का प्रयास करता है। बसाई टूडू नौ दिन के बाद वहाँ पहुँचकर पहले तो प्रताप के घर से नकद राशि तथा मजदूरों के ऋण का बही-खाता उठा लेता है तथा उसके पश्चात प्रताप को जंगल में ले जाकर मार देता है। वह प्रताप की लाश को दूर ले जाना चाहता है कि तभी वहाँ पुलिस पहुँच जाती है। बसाई टूडू का एक साथी इस संघर्ष में मारा जाता है और पुलिस उसके शव पर अंधाधुंध गोलियाँ बरसाकर उसके चेहरे को विकट कर देती है। गाँव वालों को जब शव को पहचानने के लिए बुलाया जाता है तब वह व्यक्ति चिल्ला कर कहता है कि यह बसाई टूडू नहीं है। पुलिस को अब इस बात का अवसर मिल जाता है कि इस अज्ञात शव को बसाई टूडू का नाम दिया जाए। ज्यों भी यह समाचार उच्च अधिकारियों व नेताओं तक पहुँचाता है तब पुलिस को आदेश दिया जाता है कि सबसे पहले काली साँतरा को बुलाकर शव की पहचान कराई जाए। काली साँतरा बुरी तरह से विकट हुए मुँह वाले शव को बसाई टूडू के रूप में पहचान लेता है। वह पुलिस को

बताता है कि बसाई टूडू का कद पाँच फुट सात इंच का था, उसके माथे पर चोट का निशान था। पुलिस शव को बसाई टूडू का शव मानकर अंतिम क्रिया कर देती है।

चार पाँच दिन बाद काली साँतरा के पास सोदन बटी नामक व्यक्ति आकर कहता है कि बसाई टूडू गंभीर रूप से घायल है। काली साँतरा आवश्यक दवाइयाँ वहाँ पहुँचाता है तथा घायल बसाई टूडू का उपचार करके वापस लौट आता है। परंतु इस घटना के बारे में किसी को नहीं बताता है।

सन् 1972 के नवंबर महीने के आस-पास बसाई टूडू के पुनः सक्रिय होने का समाचार मिलता है। जागुला थाने से छह मील दूर कांकडासोल गाँव का जमींदार रामेश्वर भूआँ था। बरसों पहले उसके दादा की आदिवासी लोगों ने इसलिए हत्या कर दी थी क्योंकि उसने उनके कुछ पूर्वजों की नरबलि दी थी। अब खेतिहर मजदूरों ने उसके खेतों के चारों ओर घेरा डाल लिया तथा वे सन् 1968 में घोषित सरकारी दर से मजदूरी देने की मांग कर रहे थे। उन्होंने धान की पकी फसल पर तेल छिड़क दिया था। रामेश्वर व कांग्रेसी युवक बसाई टूडू को बातों में उलझाकर रखते हैं ताकि वहाँ पर और भी पुलिस आ जाए . पुलिस की नई-नई आती गाड़ियों का सायरन सुनकर बसाई टूडू 'मा-हो' कहकर अपने साथियों को संघर्ष शुरु करने का आदेश देता है। पुलिस व आदिवासियों के संघर्ष में एक डी. एस. पी. रामेश्वर बुरी तरह घायल हो जाते हैं। पुलिस का एक अधिकारी मारा जाता है तथा बसाई टूडू गंभीर रूप से घायल हो जता है। पुलिस उसे उपचार के लिए अस्पताल ले जाती है। पुलिस वहाँ पर काली साँतरा को लेकर आती है ताकि वह पुलिस को बता सके कि जिस पुलिस बसाई टूडू समझ रही है, क्या वह असली बसाई टूडू है। काली साँतरा घायल व बेहोश व्यक्ति के समीप मुँह ले जाकर बसाई टूडू कह कर पुकारता है। उस व्यक्ति ने अपने दोनों हाथ ऊपर इस प्रकार उठाए मानो वह हवा का गला मरोड़ रहा है, और फिर वह मर गया। काली साँतरा ने उस व्यक्ति को इसी चेष्टा के आधार पर बसाई टूडू घोषित कर दिया क्योंकि बसाई टूडू भी ऐसी ही हवा का गला मरोड़ता था। उसके बाद गाँव भर के लोगों को शव की पहचान के लिए बुलाया गया। संध्या होने पर पुलिस ने देखा कि शव के पास थोड़े से धान रखे हुए थे। वहीं पर काली साँतरा ने द्रौपदी माझी को किसी युवक के साथ आते हुए देखा था।

सन् 1973 में पुलिस एक बार फिर काली साँतरा के पास आई और एस. पी. ने उसे बताया कि बसाई टूडू पुनः सक्रिय हो गया है। इस बार वह आदिवासी खेतिहर मजदूरों के हितों के लिए जमींदारों को नहर का पानी लेने के लिए संघर्ष कर रहा है। एस. पी. उसे रास्ते में पूर्व की घटना के बारे में बताता है कि बाकुली गाँव का जमींदार महाजन सूर्य साउ के खेतों में धान की लहलहाती फसल सूख रही है जबकि उसके खेतों के बीच से गुजरने वाली नहर में पानी भरा हुआ है। सूर्य साउ कर देकर नहर का पानी इसलिए नहीं लेना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि यदि उसके खेतों में कम फसल हुई तो उसे बटाईदार किसानों को उतना ही कम हिस्सा देना पड़ेगा, उसके क्षेत्र के खेतिहर मजदूरों को उतना ही कम काम मिलेगा। इसका परिणाम यह होगा कि वे धन के अभाव में उससे उधार चावल, धन आदि लेंगे जिस पर वह मनचाहा ब्याज लेगा और इस प्रकार धीरे-धीरे वे उसके अधीन हो जाएंगे।

बसाई टूडू वहाँ पहुँचकर सूर्य साउ को नहर में गिराकर उसकी हत्या कर देता है। तभी वहाँ पर आर्मि पहुँच जाती है। रात के अंधेरे में जब सेना के जवान नहर की ओर बढ़ने लगते हैं तब पेड़ो की ओट में छिपे आदिवासियों ने उन पर तीर चलाएँ और बदले में सेना के जवानों ने मशीनगन से गोलियाँ चलाई। वहाँ पर मौजूद आदिवसी स्त्रियाँ व बच्चे गोलियाँ लगने के कारण दर्द से चिल्ला रहे थे। सूर्य सु के भाई रतनी साउ के सामने सेना के जवानों ने रात के समय देखा क आदिवासियों की कुल 41 लाशें थी। सुबह होने पर जब सेना के जवान लाशों को बालों या पैरो को पकड़कर घसीट रहे थे तभी एक लाश अप्रत्याशित ढंग से उठ बैठी तथा उसने कहा कि मैं बसाई टूडू हूँ। फिर उसने हंसिए से सेना के जवान का गला काटने का प्रयास किया। सेना के जवानों ने उसे पेड़ से बाँध दिया तथा उस पर मशीनगन से गोलियों की बौछार कर दी। सेना ने सुबह जब पुनः लाशों को गिना तो वहाँ दो लाशें कम थी। रतनी साउ ने बताया द्रौपदी माझी व उसके पति दुलना माझी की लाशें गायब थी। काली साँतरा को पुनः शव को बसाई टूडू के रूप में पहचानने के लिए बुलाया गया। काली साँतरा ने शव बसाई टूडू का न होकर मुसाई का है, परंतु वह पुलिस के सामने कहता है कि यह बसाई टूडू का शव है।

सन् 1976 में एक एस. आई. काली साँतरा के पास आकर कहता है कि बसाई टूडू जिंदा है और वह जमींदारों के विरुद्ध पुनः सक्रिय हो गया है। वह काली साँतरा को अपने साथ कदम कुआँ गाँव चलने के लिए कहता है। रास्ते में एस. आई. काली साँतरा को बताता है कि वहाँ का जमींदार जगत्तारण लोहरी ने खेतिहर मजदूरों के बहीं खातों में अंगूठे के निशान ले रखे हैं और वह उन्हें ऋण न चुका पाने के कारण अपने यहाँ बंधक मजदूर बनाए हुए हैं। उसके निकटवर्ती जमींदारों ने जब सरकार द्वारा घोषित दर पर मजदूरी देनी स्वीकार कर ली जब जगत्तारण के कुछ बंधक वहाँ चले गए। परिणामस्वरूप जगत्तारण ने उन मजदूरों के परिवार वालों को बंधक बना लिया। उनके घर जला दिए। तीन दिन बाद पचास-साठ आदमी जगत्तारण के लोगों को घायल कर के उन मजदूरों के परिवार वालों को छुड़ा ले गए। अब जंगल में पुलिस बसाई टूडू के मध्य संघर्ष चल रहा है और बसाई टूडू घायल है। काली साँतरा के पूछने पर बताया है कि पुलिस उन आदिवासियों पर गोली इसलिए नहीं चला पा रही है क्योंकि उनकी औरतें अपने बच्चों को लेकर उनके आगे बैठी हुई हैं। एस. आई. उससे कहता है कि वह चलकर बसाई टूडू को आत्मसमर्पण करने के लिए कहे।

घटना स्थल पर पहुँच कर काली साँतरा जब अकेले ही बसाई टूडू की ओर आगे बढ़ता है तभी पुलिस भी उन आदिवासियों पर धावा बोल देती है। काली साँतरा आगे बढ़कर देखता है कि पुलिस जिसे बसाई टूडू समझ रही है, वह असल बसाई टूडू नहीं है। काली साँतरा उसकी धनी भौंहें देखकर समझ जाता है कि यह वही व्यक्ति है जो द्रौपदी माझीन के साथ दूसरी बार तथाकथित बसाई टूडू के शव को पहचानने के लिए आया था। पुलिस को अपनी ओर आता देख वह युवक हाथ उठाकर हवा का गला मरोड़ने का प्रयास करता है। पुलिस उसे अस्पताल ले जाती है जहाँ गैंग्रीन के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। काली साँतरा पुलिस के समक्ष उसकी बसाई टूडू के रूप में पहचान कराता है।

काली साँतरा को यह सुनकर आघात पहुँचता है कि सन् 1974 में न्यूनतम मजदूरी दर के अंतिम नोटिफिकेशन में न्यूनतम मजदूरी दरें 233 बिंदु के आधार पर निर्धारित की गई थी जबकि यह 217 बिंदु होना चाहिए था। सन् 1976 में इसी गलती को आधार बनाकर जमींदारों ने न्यूनतम मजदूरी दर के विरुद्ध न्यायालय से इंजेक्शन ले लिया और अब वे इस दर से मजदूरी देने के लिए बाध्य नहीं थे। उसे लगता है कि सरकार हृदयहीन है। वह सैंतीस लाख मजदूरों को बेकार समझ सकती है परंतु एक जमींदार को बेकार नहीं समझ सकती। वह इस विषय पर बात करने के लिए पार्टी के नेता सामंत से मिलता है क्योंकि अब राज्य में कम्यूनिष्ट पार्टी की हर सरकार है। परंतु सामन्त उसे नक्सलवाद से जोड़कर इस विषय को विधान सभा में उठाने से मना कर देता है।

काली साँतरा यादों की दुनिया से निकल कर वर्तमान में आ जाता है। उसे ध्यान आता है कि वह बसाई टूडू की मृत्यु की पड़ताल करने के लिए बेतूल के साथ जंगल में है। बेतूल उसे नदी पार करवाकर वापस लौट जाता है और उसे एक स्थान का संकेत देता है। वहाँ पहुँचकर काली साँतरा द्रौपदी से मिलता है। वह उसे संकेत देकर जंगल में छिप जाती है। काली साँतरा निकट की प्राकृतिक गुफा में बसाई टूडू की परिचित सी कब्र के समीप बैठ जाता है। उसे लगता है कि पंचम बसाई टूडू स्वयं को जमीन में दबाकर अब छटे बसाई टूडू को बनाकर तैयार कर रहा है। धीरे-धीरे उसे नींद आने लगती है। तभी पुलिस की एक छोटी-सी टुकड़ी दबे पाँव उस स्थान की ओर बढ़त है जहाँ काली साँतरा सोया हुआ है।

10.6. बसाई टूडू का चरित्र चित्रण

बसाई टूडू बिहार का रहने वाला संथाल था तथा जब एक बुद्धिमान एवं जागरूक व्यक्ति था। कम्यूनिष्ट पार्टी का सक्रिय सदस्य था तथा खेतिहर मजदूरों के लिए संघर्षरत था। जब उसने देखा की नेताओं को गरीबों की कोई चिंता नहीं है तब उसने पार्टी छोड़ दी और अपने ढंग से कार्य करने लगा। वह बाकली में पैदा हुआ। माँ-बाप जल्दी मर गए अतः बुआ के पास छः बरस तक रहा। वह जागुला किसान फ्रंट का कार्यकर्ता बना और तीस बरस तक क्षेत्र में घूम-घूमकर काम करने के कारण उस क्षेत्र में प्रत्येक घर का आदमी माना जाने लगा।

बसाई पुलिस के लिए हौवा था। थाने का मुंशी देउकी मिसिर तो उसके नाम से ही काँप जाता था। जाति भेद से अपमानित एवं आहत होकर बसाई ने विद्रोह का रास्ता पकड़ा। अपने समाज की गरीबी देखकर वह दुःखी है। वह देखता था कि संथाल लोग अकाल में चुहा, साँप खाते हैं और केवल लँगोटी पहनकर गुजारा करते थे। बसाई टूडू ने जो छापामारी लड़ाई प्रारंभ की थी उससे पुलिस वाले उसे नक्सलवादी कहने लगे थे। तीस वर्षों तक गाँव-गाँव घूमता रहा जिससे सब उसे घर का आदमी कहने लगे थे। छुआछूत के नाम से उसे चिड़ थी। जाति वर्ण के भेद को वह नहीं जानता था। उसकी कड़क आवाज लोगों को डरा देने के लिए काफी थी।

बसाई टूडू नेताओं के दुर्गुणों से वाकिफ था वह जानता था कि सब नेता हरामी और बेईमान हैं। इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी का समर्पित कार्यकर्ता दीर्घकाल तक रहने के बावजूद उसने पार्टी छोड़ दी थी। वह जानता है कि नेता बड़े होकर ऐशों आराम में लिप्त हो जाते हैं, गरीबों को भूल जाते हैं। उसके अनेकों अड्डे हैं। इन अड्डों का पता

काली साँतरा को भी नहीं था, क्योंकि वह जानता था कि काली उसका दोस्त भले ही हो किन्तु पुलिस का मुखबिर भी है। नेताओं के प्रति अपने कटु अनुभवों को वह काली साँतरा के साथ इस प्रकार बाँटता है – 'काली बाबू मैं खेत मजदूर हूँ। खेत मजदूरों के हक़ में किसी भी किसान सभा ने मदद नहीं की।' वह बार-बार कहता है कि राजनैतिक दलों के व्यवहार से मेरा मन टूट चुका है। बसाई टूडू और काली साँतरा दोनों ही राजनैतिक दलों के नेताओं से दुःखी हैं क्योंकि सभी पार्टियाँ कार्यकर्ताओं की उपेक्षा करती हैं। बसाई टूडू कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य रहा है जबकि काली साँतरा कांग्रेस का सदस्य है, किन्तु वे जानते हैं कि सब का व्यवहार कार्यकर्ता के प्रति अच्छा नहीं है। युद्ध सैनिकों के बल पर जीता जाता है पर उसका श्रेय सेनापति ले जाता हैं।

बसाई व्यवहार कुशल व्यक्ति है। काम कैसे निकाला जाता है, इसे वह अच्छी तरह से जानता है। अवसर और व्यक्ति का पूरा लाभ उठाना उसे भली-भाँति आता है। जब जैसी जरूरत हो वह तब उसके अनुरूप अपने को बदल लेता है। वह बुद्धिमान एवं कानून का जानकार भी है। उसे मजदूरों के कानून का पूरा ज्ञान है। वह जानता है कि सन् 1953 में लागू हुआ और सन् 1959 में इसमें संशोधन हुआ और सन् 1968 में फिर रिवीजन हुआ। काली को वह जमींदारों का मुर्गा बताता है। बसाई की बातों में काली को बहुत कुछ प्राप्त हो रहा था, जमींदारों का शोषण की कथा को वह अच्छी तरह समझता है। वह विवेक से काम करता है, आवेश में नहीं। वह काली से साफ कहता है कि मैं खेत मजदूरों की भलाई की उपेक्षा नहीं सह सका इसलिए पार्टी को छोड़ दिया। काम सीधी तरह हो तो ठीक अन्यथा उँगली टेढ़ी करना भी उसे आता है। कानून से यदि काम बनता हो वह उसे ऐसा करने में देर नहीं लगेगी। वह काली साँतरा से साफ कहता है कि अपना काम बनाने के लिए यदि नक्सलों से उसे मदद लेनी पड़े तो लेगा और यदि तुमने राजनीतिक मदद लेनी होगी तो उसमें भी गुरेज नहीं करूँगा।

बसाई टूडू पुलिस के लिए सिर दर्द था। 1970 से 1976 तक पुलिस चार बार उसे मरा हुआ घोषित कर चुकी है। चार बार उसकी लाश की पहचान कराई जा चुकी लेकिन पुलिस भी जानती है और जनता भी जानती है कि सचमुच में बसाई नहीं कोई और ही मरा होगा जिसकी लाश को बसाई की लाश कहकर पुलिस वाले प्रमोशन पा रहे हैं। बसाई टूडू अपने उद्देश्य के लिए समर्पित था। लस्कर ने बाहर से धान काटने के लिए मजदूर लाए थे यह उसे पसंद नहीं था। वह मजदूरों को उनके खिलाफ भड़काता है। धक्का-मुक्की में धान के खेत में आग लग गई। सारा धान जल जाता है। लस्कर ने अपने घर में गुंडे छिपा रखे थे जो बंदूक लेकर निकल आये। उन गुंडों ने बसाई को मार डाला। अग्निगर्भ उपन्यास की चार अंतर कथाओं में बसाई टूडू अग्निगर्भ में उपस्थित है और पूरी कथा का केंद्रबिंदु है। एम. डब्ल्यू. बनाम लाखिंद में बसाई टूडू खेत मजदूरों के लिए न्यूनतम वेतन के लिए संघर्षरत दिखाई देता है। उसका रूख हिंसक है। मिनिमम वेतन न देने के कारण वह लाखिंद से स्पष्ट कहता है कि तुमको मार दूँगा।

लेखिका ने बसाई के रूप में एक ऐसे चरित्र की परिकल्पना की है जो एक उद्देश्य के लिए अपना बलिदान दे देता है। वस्तुतः बसाई टूडू बार-बार मारा जाकर भी जनता के दिमाग में जीवित रहता है क्योंकि वह 'अग्निबीज' है और यह सामंती कृषि व्यवस्था 'अग्निगर्भ' है जो ऐसे बसाई टूडू को निरंतर जन्म देती रहेगी, यह बताना ही लेखिका

का मुख्य लक्ष्य है। बसाई टूडू एक संघर्षशील, विद्रोही प्रवृत्ति का ऐसा व्यक्ति है जो अन्याय के खिलाफ लड़ता है। निश्चय ही वह एक प्रभावशाली पात्र के रूप में पाठकों को प्रभावित करता है।

10.7. काली साँतरा का चरित्र चित्रण

काली साँतरा 'अग्निगर्भ' उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है। यदि यह कहा जाए कि वह प्रस्तुत उपन्यास के दो प्रमुख आधार स्तंभों में से एक है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। वह उपन्यास में एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है। कभी वह लगभग सात साल पुरानी घटनाओं का वर्तमान से जोड़ने वाली कड़ी का काम करता है तो कभी वह राजनीतिक पार्टी कम्यूनिष्ट पार्टी के नेता तथा विद्रोही कार्यकर्ता बसाई टूडू के मध्य वैचारिक आदान-प्रदान करने की कड़ी बन जाता है।

काली साँतरा प्रौढ़ है, शासन का आदमी है, किसान आंदोलन में कभी बसाई का साथी रह चुका था। साथ ही 'जाला वार्ता' नाम के एक भद्दे छपे साप्ताहिक का संपादक है। काली साँतरा बहुत समय से पार्टी का आदमी है और उप नगर-केंद्रित कर्म क्षेत्र इसका अपना चुना हुआ है। लेकिन परिणाम में शहरी बाबुओं की तरह उनकी उन्नति नहीं हुई है। उसकी ईमानदारी पर किसी को शक नहीं है। राजनीति में दो पैसे न कमा पाने पर अपने बेटे के आगे ही वह बुद्धू है। लेकिन बस्ती में उसकी एक इमेज है। पुराने दिनों में पार्टी का आदमी है और बिना पैसे के आँखों क कैम्प न लगा तो मोतियाबिन्द न कटा पाया। ऐसे आदमी को चुनाव के समय या पार्टी का इमेज नष्ट होते समय नमूने की तरह दिखाने के काम में लाया जाता है। काली साँतरा पिछले साल कलकत्ता जाकर हार्निया कटा आया था। उसके बाद से उसका शरीर कमजोर है। इस समय लह धान काटने के आंदोलन में गाँव गया हुआ था। किसानों को कृषि-ऋण देना होगा, इसके लिए प्रयत्न किया, जिला वार्ता प्रकाशित की। बहुत जगह वुकपोस्ट भेजी। अभी भी वह स्कूल कमेटी की मीटिंग में जाता है और शहीद दिवस के अनुष्ठान में जिले के हाकिम के पास बैठता है। लेकिन आजकल फूटे बर्तन में पानी भरने की तरह बेकारी की अनुभूति उसे खिन्न कर देती है। काली साँतरा समझता है कि उसकी बस छूट गयी है। पार्टी ने उसका उपयोग किया। उसके उजले कपड़े पहनने पर पार्टी के सफल मेम्बरों को जैसे दुःख होता है वे नीरव दृष्टि से तिरस्कार करते। सबका विश्वास था। पार्टी के बाहर सबके सब -कुछ होने की बात थी घर नौकरी, प्रतिष्ठा अखबारों में खबर अकेले काली साँतरा की छीट की कमीज, अधउजली धोती और बाटा का टिकाऊ जूता पहनकर अच्छे कर्यकर्ता की तरह लड़ते रहने की बात थी।

काला साँतरा पार्टी की उपेक्षा-भरे व्यवहार से खिन्न होते हुए भी उससे संबंध तोड़ने में स्वयं को असमर्थ पाता है। वह भावात्मक रूप से पार्टी से जुड़ा हुआ है। अतः वह पार्टी के गिरते स्तर को देखकर भयभीत अवश्य है होता है परंतु वह उसके अनिष्ट को देखने से पहले ही मर जाना चाहता है। वह पार्टी के नेता सामन्त को बार-बार पार्टी के द्वारा लिए गए गलत निर्णयों के प्रति सचेत करता रहता है। यथा-

काली – 'मेरे मन में कोई सवाल है।'

सामन्त- 'कहो'

एम. डब्ल्यू. को लेकर जागुला ब्लॉक में भी तो.....।

'हाँ, नक्सलवादी उपद्रव हुआ है।'

'देखा सामन्त, इशू लाइव इशू है। कहते हो, नक्सल उपद्रव हुआ है। कहते हो, वह हुआ है। तो अगर हुआ भी है, तो इशू नक्सलवादियों का बनाया नहीं है। उन लोगों ने मौजूदा समस्या की बेल्ट में समस्या लेकर उपद्रव किया है। अब वे नहीं हैं। लेकिन इशू मॉरल है।'

'कहो न, तुम हमारी पार्टी के मॉरलिस्ट हो।'

'पार्टी का पगलैट, नक्सल-रिपोर्टर नहीं ?'

अंततः यह कहा जा सकता है कि काली साँतरा एक और कम्यूनिष्ट पार्टी का समर्पित सदस्य के रूप में दृष्टिगोचर होता है, वहीं मित्रता के लिए तथा अपने वचन को पूरा करने के लिए वह पुलिस के समक्ष बसाई टूडू के रूप में चार लोगों, शवों को पहचान कर उन्हें भ्रम में डाल रखता है। वह खेतिहर मजदूरों, शोषितों, निर्धनों के हितों के लिए यथासंभव प्रयास करता है।

10.8. द्रौपदी का चरित्र चित्रण

'अग्निगर्भ' उपन्यास में द्रौपदी एक महत्वपूर्ण पात्र है। यद्यपि लेखिका ने 'द्रौपदी' शीर्षक से एक अलग खंड अथवा कथा ही उपन्यास के अंत में दी है परंतु उसमें वर्णित घटनाएँ उपन्यास में चित्रित घटनाओं से मेल खाती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि लेखिका ने द्रौपदी पात्र को महत्वपूर्ण मानकर अलग खंड प्रस्तुत किया है।

द्रौपदी की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वह निर्भीक एवं उग्र विचारों की युवती है। वह सूर्य साउ की आँखें इसलिए निकालना चाहती है क्योंकि वह उसके यौवन को ललचाई नजरों से देखा करता था। वह सूर्य साउ को नहर का पानी लेकर खेतों में सिंचाई करने के लिए बार-बार आग्रह करती है परंतु उसमें असफल होने पर उसे साथी सूर्य साउ को बैलों से बाँध कर नहर तक ले जाते हैं। वहाँ पर वह और उसका पति दूलना माझी सूर्य साउ की हत्या कर देते हैं। द्रौपदी के मन में बसाई टूडू के प्रति अत्यधिक सम्मान हैं। यद्यपि वह माँ के दिए वचन को तोड़कर बसाई टूडू के साथ विवाह न करके दुलना माझी से विवाह कर लेती है परंतु वह बसाई टूडू के सशस्त्र संघर्ष को जीवित रखती है। उसमें तत्क्षण निर्णय लेने की अद्भुत क्षमता भी है। सेना के जवानों के साथ मुठभेड़ में वह मृत होने का अभिनय करती है तथा अवसर पाते ही वहाँ से भाग खड़ी होती है।

इसके अतिरिक्त वह अदम्य साहस वाली युवती भी हैं वह सेना के जवानों द्वारा पकड़ी जाती है। वे उसका सामूहिक रूप से यौन-शोषण भी करते हैं परंतु जब उसे सेना के उच्च अधिकारी के पास ले जाने के लिए तैयार किया

जाता है तब निर्वस्त्र ही उसके समीप पहुँच कर उसे अपनी गलती का बोध कराती है और उस पर थूक देती है . संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि द्रौपदी वीरोचित गुणों से युक्त युवती है।

10.9. 'अग्निगर्भ' उपन्यास में देशकाल व वातावरण का वर्णन

'अग्निगर्भ' क हिन्दी संस्करण पहली बार सन् 1979 ई. में प्रकाशित हुआ था। लेखिका ने उपन्यास क भूमिका में लिखा है कि स्वतंत्रता के पश्चात पश्चिम बंगाल के क्षेत्रों में जमींदारों ने सन् 1954 ई. के 'एस्टेट ऐक्वीजिशन ऐक्ट' की अवहेलना करके उपजाऊ भूमि पर अपना आधिपत्य बनाए रखा। इसके पश्चात जितने भी खेतिहर मजदूरों के हित में जितने भी कानून बनाए गए उनका भी जमींदारों ने पालन नहीं किया।

इस उपन्यास में लेखिका ने सन् 1932 से लेकर सन् 1976 ई तक की उन घटनाओं को आधार बनाया है जो कि पश्चिम बंगाल में खेतिहर मजदूर वर्ण अधिकारों को पाने के प्रयास में घटित हुई। यद्यपि उपन्यास में वर्णित घटनाओं का क्षेत्र पश्चिमी बंगाल है परंतु इसमें लेखिका ने खेतिहर मजदूरों की समस्याओं, उनकी सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक परिस्थितियों, जमींदारों की राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ती प्रभुता, उनके द्वारा किए जाने वाले शोषण आदि का स्पष्ट रूप से चित्रण किया गया है।

महाश्वेता देवी ने दिखाया है कि इस काल में पश्चिमी बंगाल के कम्यूनिष्ट पार्टी का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। यह पार्टी भले ही प्रत्यक्ष रूप से किसानों, मजदूरों आदि की हितैषी बनने का दावा करती थी परंतु उसमें भी जमींदारों, महाजनों आदि का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। प्रताप जैसे जमींदार के यहाँ पाँच-छ अवैध बंदूकें देखकर भी सरकारी अधिकारियों, नेता आदि जमींदारों से घूस खाकर, उनके अतिथि बनकर अपने कर्तव्य से विमुख हो रहे हैं।

सन् पचास के मध्य अधिया वालों ने मालिकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह बसाई टूडू और द्रौपदी का तत्कालीक परिणाम हैं। समस्या केवल भूमि की नहीं है। खेत मंजूर के लिए पानी, खाद, बीज के लिए निरंतर संघर्ष और गरीबी में उनके दिन कटते हैं। गरीबी से भूमिहीन, खेत मजदूरों की दयनीय दशा और भी गंभीर है अन्न, जल, कर्ज, जमीन, बेगार की विकट समस्या थी।

शोषित एवं पीड़ित मानव के प्रति संवेदनशील भाव ही महाश्वेता देवी के लेखन की प्रधान भूमिका है। पश्चिम बंगाल में और भारतवर्ष में कृषक वर्ग भूमिहीन किसानों के असंतोष और विद्रोह का सजीव और जीवंत चित्रण किया गया है।

10.10. पात्र-योजना एवं चरित्र चित्रण

उपन्यास में पात्रों की स्थिति मानव शरीर में आत्मा के समान है। वस्तुतः पात्र ही कथानक को विकसित करते हैं और उनका चरित्र उपन्यास को गंतव्य तक ले जाता है। अर्थात् पात्र ही उपन्यास रूपी सागर में कथानक रूपी नाव को उद्देश्य रूपी तट क ओर ले जाने वाला कर्णधार है।

'अग्निगर्भ' उपन्यास में लेखिका महाश्वेता देवी ने अपनी पात्र-योजना में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके इस उपन्यास में पात्रों की योजना स्वाभाविक, यथार्थ और जीवंत है। इस उपन्यास के पात्रों में विविधता है। बसाई टूडू एक गतिशील पात्र है तो काली साँतरा स्थिर पात्र है। बसाई टूडू इस उपन्यास का नायक है, माता डोम, देउकी मिसिर, काली साँतरा, द्रौपदी, प्रताप सूर्य साउ, माधव, गोपी, दूलन, बेतूल, रामेश्वर, सोदन बटी, सोमई, बुधना, महिन्द्र आदि पात्रों की महत्वपूर्ण स्थित है। इन पात्रों को दो वर्गों में बांटा जा सकता हैं – शोषित पात्र तथा शोषक पात्र। आदिवासी युवक जैसे टूलन, माझी, माधव, गोपी, द्रौपदी, सोदन बटी, बेतूल आदि जहाँ शोषित वर्ग से संबंधित हैं वही देउकी मिसिर, सामन्त, रामेश्वर, सूर्य साउ, प्रताप आदि शोषक वर्ग से संबंधित हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि 'अग्निगर्भ' के पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। परिस्थितियों के आधार पर उनका उत्थान और पतन दर्शाया गया है जो अत्यन्त सुलभता के साथ सत्यता की छाप डालते हैं।

10.11. अग्निगर्भ के नाम की सार्थकता

अग्निगर्भ के कथोपकथन सशक्त, संक्षिप्त और सार्थक हैं। वे पात्रों के चरित्र को उजागर करने के साथ-साथ कथानक को भी गतिशील बनाते हैं। लेखिका ने बसाई के रूप में एक ऐसे चरित्र की परिकल्पना की है जो एक उद्देश्य के लिए अपना बलिदान दे देता है। वस्तुतः बसाई टूडू बार-बार मारा जाकर भी जनता के दिमाग में जीवित रहता है क्योंकि वह 'अग्निबीज' है और यह सामंती कृषि व्यवस्था 'अग्निगर्भ' है जो ऐसे बसाई टूडू को निरंतर जन्म देती रहेगी, यह बताना ही लेखिका का मुख्य लक्ष्य है।

10.12. भाषा शैली

'अग्निगर्भ' उपन्यास मूलतः आदिवासी खेतिहर मजदूरों की समस्या पर आधारित है, इसमें आदिवासियों के जन जीवन, उनकी परिस्थितियों, रणनीति आदि का वर्णन हुआ है परंतु लेखिका ने अधिकांश स्थलों पर वि-देशज शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ एक पात्रों जैसे बसाई टूडू आदि के संवादों में देशज, आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया है परंतु जहाँ कभी भी लेखिका ने किसी दृश्य में मानसिक उद्वेग, अंतर्द्वंद्व आदि का चित्रण किया गया है उस समय विदेशज शब्दावली और उसमें विशेषकर अंग्रेजी भाषा के शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। उदा. के लिए "बात की याद दिलाने से सामन्त सुपीरियर हँसी हँसगा। हँसी की सुपीरियर और इन्फीरियर डिग्री में अंतर है। काली को यह बात पहले नहीं मालूम थी। वह अपने स्वभाव को अत्यंत नम्र, दीन था पहले का जमाना होता तो उसे शायद असली वैष्णव कहा जाता . आजकल देख कि देर के वक्त या मीटिंग आर्गनाइज करने में शरीर को कष्ट होता है।"

भाषा शैली उपन्यासकार को अपने कथ्य को पाठकों तक पहुँचाने के लिए सल तथा रोचक भाषा-शैली का प्रयोग करना चाहिए। भाषा का प्रयोग पात्र के अनुसार होना चाहिए। जहाँ तक शैली का प्रश्न है, यह अच्छा है कि संपूर्ण उपन्यास की रचना-शैली एक ही है। 'अग्निगर्भ' उपन्यास में चूँकि आदिवासी ग्रामीण जन जीवन का चित्रण मिलता है। अतः ग्रामीण बोलचाल की भाषा है तथा सर्वत्र पात्रानुकूलता है। पात्र, देशकाल और भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग 'अग्निगर्भ' की विशेषता है। भाषा में सरलता, सहजता, स्पष्टता और स्वाभाविकता सर्वत्र विद्यमान है

। जैसे – बसाई – अब दुनिया में भले लोगों को भात नहीं मिलता है। मैं अच्छा बनने नहीं चला। अब तो बहुत हो गया हूँ।

बसाई- धान तो गान नहीं होते। हम लोगों को जहान है। खेती प्रधान देश हमारा है। बीज छोड़ेंगे, पौधे रोपेंगे, खेत निरायेंगे, धान काटेंगे।

10.13.सारांश

'अग्निगर्भ' में महाश्वेता देवी का प्रमुख उद्देश्य युग-जीवन को उद्वेलित करने वाली विविध समस्याओं को उजागर करना है। पश्चिम बंगाल में और भारत वर्ष में कृषक वर्ग, भूमिहीन किसानों का असंतोष और विद्रोह, स्थानीय जमींदारों द्वारा अधिया की व्यवस्था द्वारा शोषण का चित्रण करना इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है । उपन्यास में महाश्वेता देवी जी का उद्देश्य सामंतों, महाजनों, तथा जमींदारों द्वारा गरीब भूमिहीन, खेत मजदूरों पर हो रहे अत्याचार का विरोध कर सामने लाना है। जाति-पांति, ऊँच-नीच का व्यवस्था को समाप्त करना है। अन्न, जल, कर्ज, जमीन, बेगार से मुक्ति शुभ्र, शुद्ध और सूर्य के समान क्रोध ही महाश्वेता देवी की समस्त लेखन की प्रेरणा है।

10.14.बोध प्रश्न

1. महाश्वेता देवी का साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. अग्निगर्भ उपन्यास की कथा वस्तु का वर्णन कीजिए।
3. अग्निगर्भ उपन्यास में वर्णित देश काल व वातावरण पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

10.15.सहायक ग्रंथ

1. अग्निगर्भ उपन्यास मूल।
2. अग्निगर्भ महाश्वेता देवी।

डॉ. सेनकांबळे पिराजी मनोहर

11. वर्षा की सुबह-1

(संकलित कविताओं का परिचय-मूल्यांकन)

11.0. उद्देश्य

'वर्षा की सुबह' कविता-संग्रह में विभिन्न शीर्षकों वाली कविताएँ संकलित हैं, जिनकी संख्या 56 है। इनमें प्रकृति से सम्बन्धित कविताओं के अलावा बिना हमारी मदद के, नारी, एक किशोर की मृत्यु, हम, मृत्यु आदि शीर्षकों वाली कविताएँ भी शामिल हैं। यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है कि प्रत्येक कविता में प्रकृति की चर्चा के लिए कवि ने किसी न किसी प्रकार से अवसर निकाल लिया है। स्पष्ट है कि कवि को प्रकृति के प्रति अटूट लगाव है। काव्य में प्रकृति-वर्णन की नई शैलियाँ प्रचलित हैं अथवा उनकी परम्परा है, यथा- प्रकृति का आलम्बन के रूप में वर्णन, अर्थ-ग्रहण के रूप में वर्णन, उद्दीपन के रूप में वर्णन, उपमान के रूप में वर्णन, उपदेशिका के रूप में वर्णन, भावनाओं की प्रतिच्छाया के रूप में वर्णन, मानवीकरण चैतन्यारोपण के रूप में वर्णन रहस्यात्मक रूप में वर्णन, आदि। कवि सीताकांत ने परम्परा के रूप में प्रायः समस्त शैलियों के दर्शन हो जाते हैं। अर्थ-ग्रहण के रूप में प्रकृति-वर्णन को अपवाद माना जा सकता है। वैसे कवि के लिए प्रकृति प्रायः सचेतन है और उसने इन वर्णनों में प्रकृति को मानवीय चेतना द्वारा अनुप्राणित बताया है और प्रकृति के सचेतन रूप द्वारा हमें वह अनुप्राणित दिखाई देता है। बीच-बीच में अलंकारों का स्वाभाविक स्फुरण कविता को विशेष आकर्षित एवं साहित्यिक सौन्दर्य से युक्त बना देता है।

रूपरेखा

11.1. प्रस्तावना

11.2. कवि का परिचय

11.3. कृतियाँ और पुरस्कार

11.4. संकलित कविताओं का परिचय

11.5. कविताओं का मूल्यांकन

11.6. सारांश

11.7. बोध प्रश्न

11.8. सहायक ग्रंथ

11.1. प्रस्तावना

सामान्यतः कोई भी कविता संग्रह का नाम उसमें संकलित कविताओं में निहित कवि के मुख्य कथ्य का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना के नाम पर रखा जाता है। यहाँ हमें यह देखना है कि 'वर्षा की सुबह' कविता-संग्रह में संकलित कविताओं के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है और 'वर्षा की सुबह' शीर्षक कविता क्या कवि के मन्तव्य को स्पष्ट करने में समर्थ है। 'वर्षा की सुबह' नाम अंधकार के बाद प्रकाश के उदय का, निराशा या उदासी के

बाद आशा अथवा प्रसन्नता के संचार का द्योतन करता है। इस कविता में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है जिससे वर्षा की उदासी के बाद उत्साह या आनंद का संचार द्योतित होता हो। हाँ एक वाक्य अवश्य ऐसा है जो जीवन में व्याप्त स्थायी भय का निराकरण करता है-मृत्यु है लम्बी छुट्टी पर।

महत्त्वपूर्ण पंक्ति है-

विरही जीवन चाहता है खो जाना चुपके से

बादलों के शुभ्र मल्हार करुण राग में।

वर्षा के समय गाया जाने वाला मल्हार राग विरह-व्यथा को बहुत कुछ कम कर देता है और वातावरण को उल्लास से परिपूर्ण कर देता है। इसमें शुभ्र विशेषण पद का प्रयोग अत्यन्त सार्थक है। आगे कवि लिखता है कि आ जाता है खुद ही पकड़ में स्वप्न राह भूली तितली सा। यह पंक्ति जीवन में प्रगति और विकास की प्रेरक है। स्वप्न का पकड़ में आना एक प्रकार से उसका व्यवहार या वास्तविकता में ढलना है। यदि जीवन में हमारे स्वप्न पकड़ में आ सकें तो इससे अधिक जीवन के लिए शुभ संदेश क्या हो सकता है ? और वह भी तितली के रंगों की तरह का स्वप्न। हमारे स्वप्न प्रायः रंगीन और हसीन होते हैं और वे बहुत ही अस्त अथवा स्वल्पजीवी होते हैं। अनेक स्वप्न तो वस्तुतः याद भी नहीं रहते हैं। तितली बहुत कठिन श्रम के बाद पकड़ में आती है। अतएव स्वप्न के लिए राह भूली तितली का उपमान बहुत ही सार्थक और सटीक है। इस कविता में प्रकृति का वर्णन बहुत ही अभिनव ढंग से किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'वर्षा की सुबह' में संग्रहीत प्रायः सभी कविताएँ प्रकृति की पृष्ठभूमि को लक्ष्य करके लिखी गई हो।

11.2. कवि का परिचय

आधुनिक भारतीय कविता के समर्थ कवि सीताकांत महापात्र है। इनका जन्म सन 1937 में ओड़िशा में हुआ। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त श्री महापात्र ने उत्कल, इलाहाबाद तथा कैंब्रिज विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की। 1975-77 में होमी भाभा फेलोशिप पाकर सामाजिक नेतृत्व विज्ञान में डॉक्टरोट की उपाधि। वर्ष 1961 से भारतीय प्रशासनिक सेवा से संबद्ध है। अब तक बाहक काव्य- संग्रह ओड़िया में, छह यूरोपीय भाषाओं, दस हिन्दी में, तथा आठ संग्रह अंग्रेजी में अनूदित होकर प्रकाशित। अन्य भारतीय भाषाओं में भी काव्य-संग्रहों के नौ संग्रह अंग्रेजी में प्रकाशित। कविताओं के अलावा आलोचनात्मक निबंधों के चार संग्रह भी ओड़िया में प्रकाशित।

11.3. प्रमुख कृतियाँ और पुरस्कार

अब तक ओड़िया भाषा में सत्रह काव्य-संग्रह तथा आलोचनात्मक निबन्धों के छह संग्रह प्रकाशित। अधिकांश रचनाएँ अन्य भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेज़ी, स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, स्वीडिश आदि विदेशी भाषाओं में अनूदित व प्रकाशित। राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' एवं 'पद्म विभूषण' से अलंकृत। 1993 के 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' के अलावा 'कबीर सम्मान', 'केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'सारला पुरस्कार', 'कुमारन आशन पोयट्री पुरस्कार', 'ओड़िशा साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार', 'विषुव सम्मान' सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

11.4. संकलित कविताओं का परिचय

सीताकांत महापात्र आधुनिक भारतीय कविता के एक समर्थ कवि हैं। इसका प्रमाण है उनको राष्ट्रीय स्तर के अनेक पुरस्कारों की प्राप्ति- भारतीय ज्ञान पीठ पुरस्कार (1993), केन्द्र साहित्य अकादमी पुरस्कार, ओड़िसा साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरु पुरस्कार, विषुव सम्मान आदि। महापात्र जी उड़िया के अलावा हिन्दी और अंग्रेजी में कविताएँ भी लिखते हैं। आपकी अनेक कविताओं के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। 'वर्षा की सुबह' ओड़िया से हिन्दी में आने वाली उनकी यह दसवीं कविता पुस्तक है। इसका अनुवाद राजेन्द्र प्रसाद मिश्र द्वारा किया गया है। मिश्र महापात्र की कविता और ओड़िया साहित्य के जाने पहचाने अनुवादक हैं। अनुवादक ने पुस्तक के अनुवाद का कार्य महापात्र के साथ मिल-बैठकर किया है। हमें विश्वास होना चाहिए कि अनुवाद प्रामाणिक है और उसमें कवि की आत्मा सुरक्षित है। इस कविता में संकलित कुल कविताएँ 58 है। वे सब यथार्थ से जुड़ी हैं। वे जमीन के यथार्थ पर खड़ी हैं और आकाश के यथार्थ को इंगित करती हैं।

सीताकांत महापात्र जमीन से जुड़े हुए कवि हैं और उनकी कविता हमें जीवन-बोध से जोड़ती है। सारी बातों के बाद, किस आदिम युग से पृथ्वी, कहाँ गये वे लोग, यात्रा तेरी लम्बी हो - आदि कविताएँ ऐसी हैं कि जिनमें ये पौधे हमें जीवन-बोध का एहसास कराते हैं। यह जीवन बोध प्रायः अपूर्व है। मृत्यु इस जीवन को पूर्णता प्रदान करने का काम करती है, परन्तु उसकी छाया न तो जीवन बोध को प्रस्तुत कर पाती है और न ही भयभीत। कई कविताओं को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि मानो मृत्यु लम्बी छुट्टी पर है। उदाहरण के लिए देखें कविताएँ शीर्षक, वर्षा की सुबह, मृत्यु, एक किशोर की मृत्यु, चाँदनी में गाँव का शमशान तथा रास्ता। मृत्यु के प्रति कवि का दृष्टिकोण बहुत ही सकारात्मक है। वह आनी है तो आयेगी उससे डरना क्या ? किसी ने ठीक ही कहा है कि नौकरी से अवकाश और जीवन से अवकाश यानी मृत्यु का स्वागत आगे बढ़कर करना चाहिए। Retirement and death should be met half way; यथा

आना हो तो आओ
क्या मालूम नहीं तुम्हें
तुम्हारे उस आकाश की ओर
उन्मुख हूँ मैं हमेशा से
आओ, आकर बैठो मेरे पास।

X X XX X X

क्या तुम्हें नहीं मालूम
मैं हूँ तुम्हारी ही प्रतीक्षा में
आँखें खुली हैं जिस दिन से ?

(मृत्यु)

इस कविता संग्रह की कई कविताएँ त्रिकावल ऋषि की रचनाएँ हैं कहकर मालूम पड़ती हैं, वे भूत, वर्तमान और भविष्य को एक ही परिप्रेक्ष्य में दिखते हैं। इनमें वर्तमान में रहकर बहुत पीछे लौटना भी है और बहुत आगे देखना भी है। अधेड़, अकेले-अकेले, उस पार शीर्षक कविताएँ इसी कोटि की रचनाएँ हैं। इस संग्रह में कुछ कविताओं में

पुराणों- आख्यानों के प्रसंग भी हैं। वे जीवन-बोध को विशेष गहराई प्रदान करने वाले हैं। इसके लिए देखें कविता शीर्षक - 'स्वर' तथा 'अकेले-अकेले'। इन कविताओं में हम दिन-प्रति के कार्य-व्यापार, प्रकृति, अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार देख सकते हैं। ध्यातव्य यह है कि इन कविताओं में एक गहरी मानवीयता के दर्शन करते हैं। सपाट बयानी है, परन्तु भावुकता वेष्टित, यथा- जाड़े की साँझ, समुद्र तट, सूरजमुखी, लट्टू, इससे बढ़कर भला और क्या, चाँदनी में गाँव का श्मशान, बाहर का दरवाजा, गरमी की शाम का दृश्य, निष्ठुर शीर्षक कविताओं में दिन प्रतिदिन के कार्य-व्यापारों को आधार बनाया गया है। प्रकृति की अपार लीलाओं को देखने के लिए बिना हमारी मदद के, साँझ कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं के साथ ही आकाश, समुद्र की भूल शीर्षक कविताएँ पढ़कर हम दिक्काल का अनंत निस्वार देख सकते हैं। वह भी एक गहरे मानवीय राग के साथ। जो कविताएँ जीवन-बोध को लेकर चलती हैं, उनमें मानवीय संबंधों का एक विशिष्ट आंकलन पाया जाता है यथा- गलत पते की चिट्ठी, अकेले-अकेले, एक सितार वादिका के लिए तथा चूल्हे की आग आदि कविताएँ ऐसी ही हैं। इस संदर्भ में 'गलत पते की चिट्ठी' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

तुम जानती हो
अबूझ शब्द की बांसुरी, अबूझ शब्द के बादल
मेरी स्थिति के भीतर ध्वनित होते हैं, पुलकित होते हैं,
मेरी स्थिति का आकाश ढँक देते हैं
हँसा - नचा मारते हैं, तो कभी जीवन्यास देते हैं
तुम जानती हो
मेरे शब्दों की अज्ञानता और विश्वास से
स्नेह अपने बचपन के खेलों की
दुनिया बनाता रहा है।

(गलत पते की चिट्ठी)

महापात्र द्वारा किए गए प्रकृति-वर्णन में हम एक गहरे मानवीय राग को देख-सुन सकते हैं। अंतिम सरल भाषा की ओ आराध्य देवी, समुद्र की भूल, उठकर चल दिए तुम, एक सितार वादिका के लिए, गाँव का ऑपेरा आदि कविताओं में मानवीय सूक्ष्म संवेदनों की अनुभूति कर सकते हैं-

निर्वासित रानी, नन्हा राजकुमार
है जंगल में।
सेनापति के षड्यंत्र से
हो चुकी है हत्या राजा की

(गाँव का ऑपेरा)

प्रकृति वर्णन को भी आप गहरे मानवीय राग के साथ देख लीजिए-

प्रत्येक कोष में भर गई थी शायद
आम्र मंजरियों की महक,
बेसुध करने वाली चाँदनी।

(पुरातत्व)

तथा-

याद है
अरबी के पत्ते से
फिरकी (टिकुली) पकड़ कर उससे छेड़छाड़ की, तो
अनजाने में जोर से दबा देने पर
फिरकी मर गई।
उसकी दोनों खुली आँखें
मुझे इस तरह ताकती रहीं
कि आँखों से आँसू नहीं सूखे,
रात भर नींद नहीं आई।

X X X X X X

हमें संसार के अरबी पत्ते में दबाकर पकड़े हुए
मायाजाल में लपेट-बाँधकर
रुला - रुला कर

X X X X X X X

क्या तुम भी छुपा - छुपाकर नहीं बहाते आँसू
अपनी अनिच्छाकृत निष्ठुरता पर ?

(निष्ठुर)

प्रकृति और मानव के मध्य प्रवाहित संवेदना की यह झाँकी दृष्टव्य है-

मैं अवाक ताकता रहता हूँ
कब तुम्हारे जादुई स्पर्श से

अनजानी माया से

सूखी लकड़ियों में कोपलें फूटेंगी, फूल मुस्करायेंगे।

(एक सितार वादिका के लिए)

सीताकांत महापात्र की कविताओं में पुराणों तथा आख्यानों के प्रसंग भी जीवन-बोध को गहराते हुए -उनको गहराई प्रदान करते हुए दिखाई देते हैं। एक उदाहरण देखिए-

चुप्पी साधे वे लोग

एक नहीं, दो नहीं, पाँच लोग

बढ़ कर एक से एक पंच पांडव वीर

निर्भीक तेजस्वी राजपुत्र

सत्यनिष्ठ युधिष्ठिर अपराजेय अर्जुन

महाक्रोधी भीम, भविष्य द्रष्टा स्नेही

नकुल और सहदेव

उनके मुँह से उनके अनजाने

चुरा लिए हैं किसी ने शब्द सारे।

X X X X X X

माँ वसुधा फट जा फिर एक बार

सीता को जगह देने की तरह अपनी गोद में

दे दे जगह थोड़ी मुझे भी।

(वस्त्र हरण)

सीताकांत महापात्र की कविताओं में सबसे अधिक सशक्त, ऊँचा एवं व्यापक स्वर है- जीवन - बोध का। पेड़-पौधे आदि तथाकथित जड़ पदार्थ भी अपने को और हमको, सबको एक साथ जीवन-बोध में जोड़ते हुए दिखाई देते हैं-

टहनी से फूल झर जाने पर,

होंठ से कोई बात उड़ जाने पर

टहनी पर, होंठ पर कभी नहीं लौटेंगे।

X X X X X X X

आँखों से आँसू पोंछ ले

खोल ले केश

खड़ी हो जा चांदनी से भीग कर

महुआ तले बिजूका-सी

फूल झरते रहें।

(सारी बातों के बाद)

'किस आदिम युग से पृथ्वी' कविता में कवि पृथ्वी और मानव का सम्बन्ध बताता है और इंगित करता है कि मनुष्य पहले पृथ्वी का बेटा है और कुछ बाद में है-

किस आदिम युग से, पृथ्वी

किस अनजान लग्न से

यह सारा कुछ पसारे बैठी हो मोहिनी

सिर्फ मेरे लिए ?

(किस आदिम युग से, पृथ्वी)

जब तक हम जीवन के साथ नहीं जुड़ते हैं, तब तक हमारा जीवन-बोध अधूरा ही रह जायेगा और वैसा ही समाज द्वारा झटका जायेगा। कहाँ गए वे लोग, जड़, चाँदनी रात में गाँव का श्मशान, यात्रा तेरी लम्बी हो, आदि कविताएँ इसी कोटि में ही आते हैं। इनका प्रायः प्रत्येक शब्द, एक-एक शब्द पाठक एवं श्रोता को जीवन की वस्तुस्थिति से परिचित कराता चलता है।

कवि अपनी कविताओं में मानवीय सम्बन्धों का आंकलन करता हुआ दिखता है। गलत पते की चिट्ठी, आधी रात, स्वर, जाड़े की साँझ, समुद्र तट, चूल्हे की आग आदि कविताएँ इसी प्रकार की हैं। वे मानवीय सम्बन्धों के प्रति हमें उन्मुख करते हैं और उनका आंकलन भी करते हैं। उदाहरण -

न जाने किस अनंतकाल से

जलाए बैठे हैं अपना चूल्हा सूर्यदेव

बेसुध गहरे ठिठुरन-भरे अँधेरे में,

वहीं से इत्ती-सी आग ले

माँ वसुधा ने

उपजाए हैं कितने स्नेह से, चाह से

पहाड़ नदी, पहला जीवन स्पन्दन

महाद्रुम, पशु-पक्षी, मनुष्य, गुल्म, लताएँ।

(चूल्हे की आग)

जीवन और जगत के विविध पक्षों को उजागर करने के साथ उनके प्रति मानव के जन्मजात लगाव एवं सम्बन्ध-बोध कराने के साथ कवि यह भी कहता है कि हमारा काम है केवल जोड़ते चलना। हल्दी लगे न फिटकरी वाली कहावत को सार्थक करते हुए हम यह सहज कार्य अपने जेब खर्च के पैसे भी खर्च न करके, सान्त्वना के मात्र दो शब्दों का प्रयोग कर दें। इससे बढ़ कर भला और क्या, खामोश रात, कवि, कहाँ गये वो लोग, यात्रा तेरी लम्बी हो, एक सितार वादिका के लिए, समुद्र शीर्षक कविताओं में यह प्रक्रिया सहज रूप में अभिव्यक्त हुई है। यात्रा तेरी लम्बी हो के गीत संख्या चार में कवि का परामर्श ध्यातव्य है-

रास्ता जल्दी खत्म होने की

हड़बड़ी मत मचाना

वांछित साम्राज्य जल्दी आ पहुँचे

इसके लिए अधीर मत होना

(यात्रा तेरी लम्बी हो -4)

असफलता अथवा विघ्न बाधाओं का सामना होने पर अधीर मत होना और न पश्चाताप करना। जीवन में पश्चाताप ने अनेक अवसर आते हैं। जीवन वस्तुतः पश्चातापों से भरा पड़ा है-

जिस सपने के लिए

रात कम पड़ गई

जिस दृश्य के लिए

दिन छोटा पड़ गया

उस दिन समझेगा सारा जीवन

असंख्य पश्चातापों के सिवा

और है ही क्या।

(यात्रा तेरी लम्बी हो - 6)

इन कविताओं में प्रतीक- विधान, अलंकार योजना आदि में सर्वत्र हमें नई कल्पना के दर्शन होते हैं-

आ जाता है खुद ही पकड़ में स्वप्न

राह भूली तितली-सा,

एकाकी बदरारी लग्न में

कुछ सोच उठ खड़ी होती हो तुम

करती हो इस्त्री पोशाक मेरी

टाँग देती हो उसे

(मानो अगले जन्म के लिए)

वहाँ अरघनी पर

लगती है जो

किसी धुले-उजले कंकाल -सी।

(वर्षा की सुबह)

वास्तव में इन कविताओं की भाषा सहज और सामान्य होते हुए भी अनछुई कल्पनाओं और मौलिक चिन्तन से प्रसूत होने के कारण किसी सीमा तक असामान्य बन गई है। एक समालोचक ने इनकी भाषा को लक्ष्य करके बहुत सटीक कथन किया है कि " भाषा के प्रति कवि में एक अंकुठित तीखी तृष्णा दिखाई देती है।" एक उदाहरण पर्याप्त है-

जहाँ आसन्न संध्या के जंगल किनारे

मतवाली हवा का सुलु-सुलु गीत

रह-रह कर सुनाई देता है

यह भी पढ़ा है

महावर लगे कोमल पग धरने से

जहाँ निष्पाप मृत्यु

ताकती रहती है श्यामल प्रतीक्षा में।

(अंतिम सरल भाषा की ओ आराध्या देवी)

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि 'गहरे उद्वेगों, सूक्ष्म संवेदनों और शब्दों के माधुर्य तथा संगीत से फूटती हुई दिखाई देती हैं' - इस संग्रह की कविताएँ इनकी सुखानुभूति के लिए अपेक्षित है, धैर्य, गहरा प्रेम और आश्वस्ति।

11. 5. कविताओं का मूल्यांकन

जीवन और जगत तथा उसमें घटने वाली घटनाओं के प्रति जागरूकता जीवन-बोध है। जीवन बोध हमें इनके प्रति सजग भी करता है और अपने कर्तव्य-पालन के प्रति जागरूक भी करता है। सीताकांत महापात्र व्यक्तिगत जीवन तथा समष्टि में घटित होने वाली प्रत्येक घटना के पार देखकर उसमें निहित संदेश को पढ़ने का प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं। पेड़ पौधों के वर्णनों के माध्यम से वह स्वयं भी जीवन-बोध से जुड़ते हैं और पाठक के जीवन-बोध को गहराने का प्रयत्न भी करते देखे जाते हैं। यदि हम एक कदम आगे बढ़कर अपनी बात कहें तो हम कह सकते हैं कि उनकी यह प्रकृति हमें उनकी प्रत्येक कविता में परिलक्षित होती है।

चाँदनी रात में वह प्रकृति के सौंदर्य के परिप्रेक्ष्य में महुए के पेड़ों की शोभा तो देखते ही हैं उनके सामान्य उपयोग की भी कहते हैं कि वे अल्प हानियों को बिजूखे की तरह खेतों से दूर रखने का भी काम करते हैं। इसके आगे बढ़ कर वह पाठक को सुनाते हैं, उनका संदेश। फूल और शब्द वापस लौट कर नहीं आते हैं। फूलों की शोभा टहनी पर लगे रहने में सुरक्षित रहती है, शब्दों का महत्व सार्थक रूप में अभिव्यक्त होने में है, यथा-

तू जानती है

आँखों से आँसू पोंछने पर

आँसू फिर उमड़ पड़ेंगे

टहनी से फूल झर जाने पर

होंठ से कोई बात उड़ जाने पर

टहनी पर, होंठ पर कभी नहीं लौटेंगे।

(सारी बातों के बाद)

इसी कविता के अंतिम चरण में कवि हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करता है कि हम तथाकथित असभ्य भाइयों के जीवन से बहुत कुछ सीख सकते हैं। वे प्रकृति के साथ जुड़े रहते हैं, अतः प्रकृति उनसे सीधे-सीधे बतियाती है। अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के समाधान हमें उनके पास - आदिवासियों के पास जाने पर प्राप्त हो जायेंगे-

कौन से प्रश्न किसके लिए

भला कौन देगा उत्तर

दर्मू या दर्तनी या देवता दिशारी ?

(सारी बातों के बाद)

'सारी बातों के बाद' कविता की इन पंक्तियों में दर्मू का अर्थ है आदिवासियों के आकाश में रहने वाले देवता, दर्तनी का अर्थ है आदिवासियों की धरती माँ तथा देवता दिशारी का अर्थ है आदिवासियों के पुजारी। सायं की शोभा बताती है कि चन्द्रोदय एवं सूर्योदय के समान तुम्हारे जीवन में भी प्रत्येक सुखदायी सम्भावनाएँ उपलब्ध हैं-

देखो नजरें उठाकर चारों ओर है

स्वप्न और सम्भावनाओं की

प्रीति और प्रतीति की

असंख्य आरक्त करबी।

(साँझ)

'सूरजमुखी' शीर्षक कविता प्रकृति को मानव के सच्चे मित्र के रूप में चित्रित करती है। वह मनुष्य को कभी नहीं भूलती है। बशर्ते व्यक्ति को जीवन में उसके योगदान के महत्व का बोध बना रहे-

फिर जब कभी तुम

बिस्तर पर पड़े होगे

उठने की ताकत तक नहीं होगी

सूरजमुखी से मेरी ओर ताक रहे होगे तुम

आसन्न अँधेरे से

आम दरवाजे से न सही

आधी बन्द खिड़की से आ जाऊँगा

कुशलक्षेम पूछूंगा, बैठूंगा तुम्हारे बिस्तर किनारे

तुम जैसे मित्र को भला

भुला सकता है कभी कोई ?

(सूरजमुखी)

यह कविता हमें जीवन में अपने मित्रों के प्रति कर्तव्य का बोध कितने सूक्ष्म स्तर पर कराती है। जिसे हम भूल जायें एवं विपत्ति के समय बिन बुलाये ही न पहुँच जायें, वह हमारा मित्र क्यों कर और कैसा मित्र ? हम जीवन भर उसे खोजते हैं जिसने हमको बनाया और दुनिया को बनाया। इतना ही नहीं, जो सबको अपने-अपने काम में लगाए रहता है ।

प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहहिं सुख कहई।

परन्तु साथ ही यह भी कह देते हैं कि जड़मति प्राणी ताड़ना के अधिकारी हैं।

इस तथ्य को कवि सीताकांत अधिक सार्थक शैली में, जीवन बोध के संदर्भ में लट्टू को लक्ष्य करके कहते हैं-

कहाँ गया वह बालक जिसने डोरी के सहारे मुझे घुमाया है

कहाँ गया वह लट्टू चलाकर

हो गया अन्तर्धान किस ओर

वह चंचल बालक।

(लट्टू)

जीवन क्या है ? इसका क्या उद्देश्य है ? इसका अन्त कौन करता है ? अंत होने पर इसकी गति कहाँ चली जाती है, अथवा उसको कौन ले जाता है ? इन समस्त प्रश्नों को लेकर प्राणी दुःखी होता रहता है और जीवन के दिन पूरे करता रहता है। सुबह होती है, शाम होती है। उम्र यों ही तमाम होती है। 'लट्टू' कविता का अंतिम छन्द जीवन की प्रश्नों भरी स्थिति का बोध करने को बैचेन बनाए रखता है-

नहीं आता वह

दिन बीत जाता है, रात बीत जाती है

लट्टू घूमता है

वह पुराना लट्टू सिर्फ रोता है और,

रोते हुए घूमता है।

(लट्टू)

एक कवि का कर्तव्य है अपने परिवेश को वाणी प्रदान करना जिससे अन्य प्राणी सह धार्मिता और सहभागिता का बोध प्राप्त कर सकें। कवि यदि ऐसा कर लेता है, तो इससे अधिक क्या करने की क्षमता की चाह वह क्यों करे ? सीताकांत कहते हैं-

रोया हूँ, रूठा हूँ
उच्चाटित हुआ हूँ, खुद को खो दिया है
X X X X X X X
अँधेरे में ढूँढ़ते टटोलते
जितना समझा, जितना हो सका
काँपती उँगलियों से जोड़ा है शब्दों को
सौंप दिया है नीली सरस्वती को
X X X X X X X
तुम्हारे ही अंदर मैंने भी उसको
फिर एक बार सुमिरा है
पहचाना है, हाँ हमने एक साथ
घनघोर अँधेरे में
मनुष्य की आत्मा के उच्चारण की
क्षीण दीपशिखा की
जलने की वह कोशिश देखी है
इससे बढ़कर प्रिय पाठक
भला और क्या
चाहेगा, एक कवि ?

(इससे बढ़कर भला और क्या ?)

सृष्टि के आदि, अंत और प्रयोजन के सम्बन्ध में जानने की इच्छा मानव के जीवन-बोध किस प्रकार गहराती है, इसकी तस्वीर हमें **'किस आदिम युग से पृथ्वी'** शीर्षक कविता में देखने को मिलती है। पृथ्वी पर स्थित जीवन

अनादि और अनंत है। उसका आदि, मध्य और अंत मन की संकल्पना मात्र है। नरक और स्वर्ग सब कुछ इसी पर, यहीं है। यह जीवन कितना वास्तविक है, साथ ही कितना आश्वस्तकारी देखिये, कवि सीताकांत क्या कहते हैं-

किस आदिम युग से, पृथ्वी

किस अनजान लग्न से

यह सारा कुछ पसारे बैठी हो मोहिनी

सिर्फ मेरे लिए ?

X X X X X X X

किस अनजान युग से

तक रही हो मेरी राह, पृथ्वी ?

कहो तो, छोड़ तुम्हें और कौन स्वर्ग है

तुम्हारे बिना है कौन-सा अणिमादि अष्टवर्ग ?

X X X X X X X

तुम तो युग-युग से, हर युग में हो यहीं

इहकाल, परकाल मेरी, पृथ्वी।

(किस आदिम युग से, पृथ्वी)

'कहाँ गए वे लोग' शीर्षक कविता में की जाने वाली जिज्ञासाएँ कवि की वाणी में रहस्यवाद की गंध भरती हुई दिखाई देती हैं। परन्तु इसके साथ ही कवि धरती से, यथार्थ से जुड़ने की याद हमें बार- बार दिलाता है। अन्तरिक्ष यात्रा में हम यदि कहीं अपनी जमीन को भुला बैठे, तो हमारी स्थिति कैसी कुछ हो जायेगी।

चाँद और मंगल में जाने की तैयारी में

पैर तले की माटी माँ का स्पर्श भूल

कागज, प्लास्टिक चबाते सारे बिजू के

भर रहे हैं खर्राटे दोपहरी में,

जीवन का वास्तविक स्वरूप यह है कि स्वप्न उनके साकार होते हैं जो सर्वथा निष्पाप हैं, निस्वार्थ जीवन व्यतीत करते हैं। कवि उनको खोजता है, हम भी उनको खोजें- ..पर

कहाँ गये वे लोग

सपना देखने में सक्षम

वे निरीह लोग ?

(कहाँ गए वे लोग)

इस दुनिया में न कुछ अवांछित है और न कुछ भी अनावश्यक। प्रत्येक वस्तु का उपयोग है, प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति के पास कुछ-न-कुछ देने के लिए है। यदि हम यह तथ्य समझ सकें, तो जीवन और जगत से बहुत प्राप्त करके अपने को कहीं अधिक समृद्ध बना सकते हैं। इसी को लक्ष्य करके ऋषि ने कहा था- न कोई दोस्त है, न कोई दुश्मन। सब गुरु हैं, क्योंकि हर एक के पास सिखाने के लिए, देने के लिए कुछ न कुछ है। सारांश रूप में हम न अपने को अवांछित समझें और न किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति को ही अवांछित अथवा हीन समझें। जीवन के इस बोध को कवि ने एक से अधिकाधिक उदाहरणों से समझाया गया है। पहाड़ पर पड़ा हुआ पत्थर ऊपर से देखने में सर्वथा अनुपयोगी लगता है। कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो उसे अवांछित मानते हों, क्योंकि वह जलधारा को कहीं बाधित करता है, कहीं मोड़ देता है और कभी-कभी जनता के मार्ग में भी बाधक बन जाता है। परन्तु दूरगामी दृष्टा, व्यापक चेतना का धारणकर्त्ता देखता है कि जलधारा के थपेड़ों से अपने को रेत के कणों में परिवर्तित कर देने वाला वह शिलाखंड अपने को कितना उपयोगी सिद्ध करता है। उसके उपयोगकर्ता मानो रेत रूप में उस निर्जीव अवांछित कहे जाने वाले पत्थर की उत्सुकता पूर्वक बाट जोहते रहते हैं, जिस प्रकार कृषक, भ्रमर और तृषित जीवन एवं पृथ्वी वर्षा के जल की प्रतीक्षा करते हैं। किन्तु वह खुद को समझता है अवांछित। वह नहीं जानता है कि गाँव के बच्चे-बच्चियाँ उससे बने हुए रेत को कितने प्रेम से ग्रहण करते हैं। वे उससे कभी घरौंदे बनाते हैं और उसके मुलायम बिस्तर पर चाँदनी रात में लेटकर उन्मुक्त आकाश का आनन्द लेते हैं, उसके लिए उत्सुक एवं लालायित बने रहते हैं; यथा-

न जाने किस सुदूर नदी किनारे गाँव में
एक लाड़ली बच्ची तक रही है राह उसकी
किस दिन लुढ़कते लुढ़कते रेत बन
पहुँचेगा वह उसके गाँव किनारे
जिससे वह घरौंदा बनाएगी।
इसी तरह अन्य बच्चे-शैतान बच्चे उसकी बाट जोह रहे हैं-
जब रेत बन
चमचमाती चाँदनी की पोशाक पहनेगा वह
उसी के सीने पर सिर खे
नदी शय्या पर लेटे रहेंगे
शून्य आकाश को ताकते हुए।

(अवांछित)

पेड़ से झड़ता हुआ सूखा पीला पत्ता प्रायः अनावश्यक समझा जाता है। लोग उसको जल्दी से जल्दी बुहार कर एक ओर फेंक देना चाहते हैं। परन्तु हम लोग भूल जाते हैं कि वे सूखे पत्ते हमारे लिए कितने जीवनदायक हैं। वे जमीन के लिए उपयोगी खाद का काम करते हैं और बीज प्रदान करके नए हरे भरे लता-गुल्म प्रदान करते हैं-

खास उसी के लिए असीम धैर्य से
नीचे ताक रही है मिट्टी
न जाने किस अनंतकाल से
उसे अपनी देह में मिलायेगी
अमृत बनाएगी,
जीवन्यास देगी नए बीज को

(अवांछित)

इसी प्रकार शुष्क एवं निर्जीव प्रतीत होने वाले बीज की उपयोगिता पर कवि प्रकाश डालता है और जीवन-बोध को एक नया आयाम देता हुआ कहता है कि हम और तुम कोई भी अपने को अवांछित न समझें। भौतिक एवं बाह्य तुच्छता प्रायः हमें हीनत्व भाव द्वारा अभिशप्त बना देती है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमारे भीतर भी वही जीवनी शक्ति, जीवन- प्रदायिनी शक्ति निहित है, जो वृहदाकार एवं अत्यधिक आकर्षक वस्तुओं एवं आकर्षक व्यक्तियों में रहती है। वह भूल जाता है कि पृथ्वी की गर्मी, खाद की गर्मी उसके भीतर निहित वृक्ष को अंकुरित करके प्रस्फुटित करेगी, तब वह सिर ऊँचा किए, कलिल कोपलों का मुड़ासा बाँधे सबके आकर्षण का केन्द्र बन जायेगा। जिन्हें जीवन के इस बोध का वरदान प्राप्त है, वे निराश और हताश क्यों हों, अपने को तुच्छ, हीन अथवा अवांछित क्यों समझें ? यथा-

और वह शुष्क निर्जीव बीज
सूख - सूखकर निस्तेज हो
राह जोहता है आसन्न मृत्यु की
सोचता है उसके अवांछितपन का अंत हो
समझ नहीं पाता है कौन-सा मृत्युहीन स्वप्न
जाग रहा है, स्वप्न देख रहा है उसी के अन्दर
मिट्टी में खुद को रोपने पर
पानी का कोमल हाथ एक बार उसकी सूखी
चमड़ी को गुदगुदाने पर
वही स्वप्न अंकुरित होगा, पल्लवित होगा
पत्र, फूल, फल, घोसलों के कलरव से घना होगा

(अवांछित)

और अन्त में कवि उपसंहार रूप में पाठक को सजीव जीवन-बोध प्रदान करता है-

कभी-कभी लगता है
मैं ही हूँ वह निर्वाक पत्थर
वह सूखा बीज
वह झड़ता पत्ता
अपनी काटने को दौड़ती शून्यता में
अपना या किसी और का स्वप्न
यदि अनजाने ही छुपकर स्वप्न देखता है
नहीं है मुझे उसकी तनिक भी खबर
हो यदि इससे परे कोई हे ईश्वर
शायद वह होगा तुम्हें ही गोचर !

(अवांछित)

महान चिंतक कहते आए हैं, जहाँ भी हो, जो भी हो, जैसे भी हो, वही तुम्हारी नियति है। वहीं रहते हुए तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी हो जायेंगी। शर्त है केवल एक- अपनी सम्भावनाओं को विकसित करो। 'रामचरितमानस' के प्रमुख वक्ता काकभुशंडिं जी अपनी काग यौनि का त्याग करने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि सम्यक् साधना द्वारा उसी यौनि में उन्होंने अपने प्रभु श्रीराम का साक्षात्कार प्राप्त किया है। श्मशान, और वह भी गाँव का शमशान, उससे अधिक सूनी, भयावह और अवांछित जगह कौन-सी होगी ? परन्तु वहाँ जाते समय 'राम नाम सत्य है' की आवाजें लगाई जाती हैं, 'साधो यही है वृन्दावन' का घोष किया जाता और वहाँ पहुँचने पर अध्यात्म एवं जीवन-जगत की निस्सारता की गम्भीर चर्चा की जाती है। तब हमें जीवन का यह बोध होता है कि जीवन का वास्तविक सत्य श्मशान, जो हमें बैकुंठ की अनुभूति कराता है; यथा-

फिर छिन में
देखते-देखते लगेगा
यही तो है बैकुंठ
देव, देवी, अप्सरा, रंभा, मेनका, उर्वशी और
ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र, स्वयं विष्णु
स्वरचित माया, सुरभित चाँदनी में।

(चाँदनी में गाँव का श्मशान)

'यात्रा तेरी लम्बी हो' शीर्षक कविता में कवि जीवन के यथार्थ को रूपायित करता है और इंगित करता है कि हम जीवन को जीते समय वास्तविकता से दो-चार होना, रूबरू होना सीखें। दुनिया एक धोखा है- स्वर्ण हिरण की तरह आकर्षक धोखा है। परन्तु सब कुछ जानते हुए भी हम उसके पीछे भागते हैं। यदि न भागें तो करें भी क्या? यदि स्वर्ण मृग की प्राप्ति हमारी महत्वाकांक्षाएँ नहीं होंगी, तो फिर हम आगे क्यों कर बढ़ेंगे ? मृग-तृष्णाएँ ही वस्तुतः हमारे लिए प्रगति का मार्ग खोलती हैं, कम से कम उस ओर जाने की प्रेरणा तो प्रदान करती ही हैं-

मायावी मृग से बढ़कर सच

हमारे नसीब में नहीं होता

धनुष बाण लिए उसी स्वर्ण

मृग के पीछे ही दौड़ना।

(यात्रा तेरी लंबी हो)

स्वर्ण-मृग वाला स्वप्न सम्भवतः इस जन्म में साकार न हो सके, सम्भवतः स्वर्ण मृग कवि की कल्पना मात्र हो। परन्तु यही कहा जायेगा कि यह स्वप्न अथवा मात्र कवि की कल्पना अपना महत्व तो रखती ही है। ऐसे स्वप्न न होने पर, ऐसी कल्पनाओं के प्रति हृदय न रखने की स्थिति में कोई व्यक्ति आकांक्षाओं को पूरा करने की ओर अग्रसर नहीं होता। जब आकांक्षाएँ नहीं, तो उनके प्रति प्रयत्नशील होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। **'यात्रा तेरी लम्बी हो'** कविता के दूसरी गीत के ये अंतिम 7 पंक्तियाँ ध्यातव्य भी हैं और मेरे विचार से स्मरणीय भी हैं-

सम्भव है, वैसा साम्राज्य सदा

कवि का मनगढ़ंत कल्पना विलास हो,

फिर भी याद रखना

वैसा स्वप्न न होता तो

भला तू क्यों डग बढ़ाकर, चौखट लाँघ

अनंत आकांक्षाएँ लिए इतनी बेसब्री से

आगे-आगे बढ़ता ?

आगे कवि गीत -3 में कहता है कि आकांक्षाओं की पूर्ति के मार्ग में अनेक बाधाएँ आती हैं। उनको ध्यानपूर्वक देखना, उन्हीं में तुझे उन बाधाओं का गुरु मंत्र प्राप्त हो जायेगा। विजय मंत्र तो वस्तुतः हमारे- तुम्हारे सबके हृदय में सोये हुए हैं। बाधाओं का संस्पर्श उन्हें ताप देता है। जो जीवन के इस महान सत्य को समझता है, वह बाधाओं को पार कर जाता है-

रास्ते में मिलेगी वही राक्षसी बुढ़िया

X X X X X X X X

उसकी बातें ध्यान से सुनना,

भूल मत जाना

याद रखना राक्षसी बुढ़िया ही

सारे गुप्त रहस्यों की खान है

उसके मंत्र ही तेरे सीने के

सूक्ष्म स्वर हैं।

महान आकांक्षापूर्ति के मार्ग पर हमारी छोटी-मोटी इच्छाएँ पूरी होती चलती हैं। यदि हम उन्हें अपना लक्ष्य समझ बैठते हैं, तो प्रयास बंद कर देते हैं और हमारी महत्वाकांक्षा दुःखद स्वप्न बन कर रह जाती है। उचित है इसको नकार दिया जाये, ये तो साधक को अथवा पथिक को विचलित करने वाली संरचनाएँ हैं। हमें अपना लक्ष्य याद रखकर इनकी उपेक्षा करते हुए आगे बढ़ते रहना चाहिए। रूस में जन्मी योगिनी साधिका मैडम ब्लैवैट्स्की ने मार्ग के छोटे मोटे आकर्षणों को उन फूलों की तरह बताया है जिनमें प्रत्येक के नीचे डंठल में एक सर्प लिपटा हुआ है- फूल को तोड़ते ही वह डस लेता है। हमारी-आपकी सबकी आत्मा इनके प्रति हमें सावधान करती रहती है। यदि हम उसकी सुन सकें, तो आगे बढ़ते चले जायेंगे। अपने वांछित महान लक्ष्य की ओर ले जाने वाले जीने के सोपानों पर चढ़ते चले जाएँगे। कवि सीताकांत इस तथ्य को कितनी सहजता से व्यक्त करते हैं कि

अंदर से सुनाई देगा एक स्वर

नहीं, यह नहीं, यह नहीं,

फिर तू आगे बढ़ता जायेगा

जी जान से भागेगा।

एक बात और! सफलता पाने की जल्दी न की जाए। ऐसा करने पर स्थिति वही होती है, जो बीज को खोद कर यह देखने का प्रयत्न करने पर होती है कि अंकुर बाहर प्रकट होने में क्या देर है-

रास्ता जल्दी खत्म होने की

हड़बड़ी मत मचाना

वांछित साम्राज्य जल्दी आ पहुँचे

इसके लिए अधीर मत होना।

मार्ग के प्रति अनेक सूत्र बताता हुआ कवि कहता है- जो कडुए-मीठे अनुभव हों, स्वीकार करते रहना चाहिए। बाद में पीछे पश्चाताप मत करना। अंत में कवि जीवन के इस कठोर एवं अप्रिय सत्य का उद्घाटन करता है कि स्वर्ण मृग भौतिक समृद्धियों का परिणाम सिवाय पश्चाताप के और कुछ नहीं हो सकता है-

अमृत हो, हलाहल हो

चख लेना, पी लेना

पश्चाताप के लिए बाद में समय आएगा

तब समझ लेना

जीवन असंख्य पश्चातापों के सिवा

और है ही क्या।

जीवन का यथार्थ बोध यही है- भौतिक पदार्थों की निस्सारता। राजा सोलोमन ने इसका अनुभव किया था। महान सिकन्दर ने इसको देखा था। श्रीराम ने इसकी लीला की। अपनी नासमझी पर उन्हें क्षोभपूर्ण आत्मग्लानि हुई। कवि सीताकांत का सारांश स्पष्ट है। जब भाग-दौड़ का अंत होता हुआ नहीं दिखाई देता है, तब समझ में आता है, जीवन सिवाय पश्चाताप के अन्य कुछ भी नहीं है-

जिस सपने के लिए

रात कम पड़ गई

जिस दृश्य के लिए.

दिन छोटा पड़ गया

उस दिन समझेगा सारा जीवन

असंख्य पश्चातापों के सिवा

और है ही क्या।

(यात्रा तेरी लम्बी हो)

अंत में हम यह सह सकते हैं कि कवि सीताकांत ने जड़, चेतन, पौराणिक आख्यान, प्रकृति, मानवीय सम्बन्ध आदि दृश्यमान जगत के कण-कण द्वारा हमें जीवन बोध से जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। कौरव सभा में द्रौपदी के वस्त्र हरण की पौराणिक कथा को प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत करके भी कवि ने हमें जीवन-बोध से जोड़ा है। वह जीवन-बोध है। शासक वृन्द की कार्यवाही शब्द जाल तक सीमित रहती है। बाग्जाल द्वारा वे चिरकाल तक उसकी रक्षा करते रहते हैं-

न खत्म होता है शब्दों का अथाह वस्त्र

न स्फुरित होती है निः शब्द निर्वस्त्र सत्ता

पर्त-दर-पर्त ढके रहता है छल चिरकाल

(वस्त्र हरण)

जीवन-बोध से जोड़ना कवि का वास्तविक यथार्थ है। वह जानता है कि जीवन-बोध से विमुख होना बुद्धि-विपर्यय एवं विनाशोन्मुख गति का सूचक है।

पेड़ पौधे आदि प्रकृति के पदार्थ ही वस्तुतः हमारे जीवन के सर्वस्व हैं; यथा-

पैरों तले सर्वसहा पृथ्वी

ऊपर नीला घना उदास आकाश

बीच में मनुष्य के प्राचीन घर-द्वार

चिड़ियों के घोंसले

हमेशा से हँसी-रुलाई

सिसकियों और गीतों का कलरव

इससे बढ़कर भला और क्या ?

जीवन का सत्य यही है कि हम हमेशा से पेड़ पौधों के बीच रहे हैं और आगे भी रहेंगे। उनके बीच रहते हुए हमारे सुख-दुख आते जाते रहते हैं। इसी जीवन के मध्य मनुष्य नई-नई बातें जानना एवं प्राप्त करना चाहता है और इन्हीं के फेर में उल्लसित और उदास होता आया है, कला-कृतियों के उपादान कारण एवं निमित्त कारण इस प्रकृति से ही पेड़ पौधों से ही, प्राप्त होते हैं। कवि का अंतिम छंद, वस्तुतः इसी वास्तविकता के प्रति उसका समर्पण भी है, उसकी कृतज्ञता का ज्ञापन भी है यथा-

उनकी अदम्य अभिलाषा देखी है

तुम्हारे ही अन्दर मैंने उसको

फिर एक बार सुमिरा है

X X X X X X X

मनुष्य के उच्चारण की

क्षीण दीपशिखा की

जलने की वह कोशिश देखी है।

इससे बढ़ कर प्रिय पाठक

भला और क्या

चाहेगा एक कवि ?

इस आत्म और लोक-व्यापी अनुभूति की अभिव्यक्ति से अधिक और क्या एक पाठक कवि से चाहेगा।

11. 6. सारांश

सारांश के रूप में यह कर सकते हैं कि कवि-संवेदना की व्याप्ति निकट से निकट और दूर से दूर की चीज़ों पर कुछ इस तरह से है कि हम एक 'यात्रा' पर होने का अनुभव करते हैं। ऐसी यात्रा, जो आदि-अन्तहीन लगती है, पर जिसके कविता-पड़ाव 'शून्यता को (भी) शब्दों की स्नेह श्रद्धांजलि' बन जाते हैं और बन जाते हैं एक ऐसा उपक्रम जहाँ, 'हमारा काम है केवल जोड़ते चले जाना सांत्वना भरे सरल शब्द'। हम सब जानते हैं कि सांत्वना भरे सरल शब्दों को जोड़ना आसान नहीं होता।

11. 7. बोध प्रश्न

1. वर्षा की सुबह कवि के कृतियाँ और पुरस्कार के बारे में बताते हुए कविताओं का परिचय दीजिए।

2. सीताकांत महापात्र के कविताओं का मूल्यांकन कीजिए।

11. 8. सहायक ग्रंथ

1. सीताकांत महापात्र के कविताओं में किस प्रकार का भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है विस्तृत रूप में लिखिए।

2. सीताकांत महापात्र के कविताओं में किस प्रकार की विशेषताएँ देख सकते हैं ।

11. 9. सहायक ग्रंथ

1. समकालीन भारतीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

2. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास -डॉ. नगेन्द्र।

3. भारतीय भाषाओं में संक्षिप्त इतिहास, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।

4. भारतीय आलोचना शास्त्र- राजवंश सहाय, निहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।

*****

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

12. वर्षा की सुबह-2

(कविताओं का भाषा-शैली और विशेषताएँ)

12.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम सीताकांत महापात्र का वर्षा की सुबह कविता संग्रह में संकलित कविता संग्रह में आकाश, दिन, वर्षा की सुबह, बिना हमारी मदद के, मृत्यु, नारी, अनामिका, हम, प्रांतर, शब्द अब शब्द नहीं और साँझ आदि का जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अब यहाँ 'वर्षा की सुबह' में कविता संग्रह में संकलित कविताओं में किस प्रकार के भाषा शैली को अपनाया गया है। कविता संग्रह की विशेषताएँ और मूल्यांकन के बारे में जानना ही इस पाठ का मुख्य उद्देश्य है।

रूपरेखा

12. 1. प्रस्तावना

12. 2. सीताकांत महापात्र की कविताओं में भाषा-शैली

12. 3. वर्षा की सुबह कविताओं की विशेषताएँ

12. 4. सारांश

12. 5. बोध प्रश्न

12. 6. सहायक ग्रंथ

12.1. प्रस्तावना

'वर्षा की सुबह' कविता संग्रह में गहरे उद्वेगों, सूक्ष्म संवेदनों और शब्दों के माधुर्य तथा संगीत से फूटती हैं सीताकांत महापात्र की कविताएँ। दिन-प्रतिदिन के कार्य-व्यापार, प्रकृति की अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनन्त विस्तार हम इनमें एक गहरे मानवीय राग के साथ देख-सुन सकते हैं। इनमें वर्तमान में खड़े रहकर बहुत पीछे लौटना भी है तथा बहुत आगे देखना भी। समुद्र, आकाश, धरती, सूरज-चंद्रमा, दूब, पेड़-पौधे, फल-फूल, पशु-पक्षी, ऋतुचक्र हमें जिस जीवन-बोध से इन कविताओं में जोड़ते हैं, वह अपूर्व है। मृत्यु इस जीवन-बोध पर अपनी छाया डालती ज़रूर है, पर वह इस जीवन-बोध को न तो परास्त कर पाती है, न ही भयभीत और इस संग्रह की कविताओं में तो 'मृत्यु मानो लम्बी छुट्टी पर' भी है। सीताकांत महापात्र की कविताओं में आख्यानों के प्रसंग भी इस जीवन-बोध को और गहरा करने के लिए ही हैं। इन कविताओं में मानवीय सम्बन्धों का भी एक विशिष्ट आकलन है जो जीवन-संग्राम के बीच, हमें गहरे मानवीय भरोसे, विश्वास की ही प्रतीति कराता है।

12.2. सीताकांत महापात्र की कविताओं में भाषा-शैली

कवि सीताकांत ने प्रकृति के साथ तादात्म्य का अनुभव अत्यन्त व्यापक परिवेश में किया है। उनका अनुभव प्रायः आध्यात्मिक स्तर पर रहता है। विशेषता यह है कि वह यथार्थ की भूमि के संस्पर्श की विलगता पल भर भी

सहन नहीं कर सकते हैं। उन्होंने **'आकाश'** नामक कविता में आकाश को अनेक प्रकार से व्याख्यायित किया है। एक छंद में वह लिखते हैं-

हर जगह होता है—

सैकड़ों जलघटों में, गोष्पद सलिल में

निर्जन सिंधु में, झिलमिल ओस की बूँदों में

हालांकि कब नहीं था कहाँ नहीं होता

उसी अंतिम अनुपस्थिति का नाम तो है आकाश।

इस सर्वव्यापी एवं असीम, अव्यक्त, अद्वैत्व को लक्ष्य करके अपनी रहस्यात्मक वेदना को व्यक्त करते हुए सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी पुकार उठे थे-

धरती झरना मिले हुए दोऊ।

केहि निनादि कै दीन्ह बिछोहू।

व्यावहारिक अद्वैतता एवं सैद्धान्तिक एकत्व के संयुक्त होने पर व्यक्ति की समझ में आ जाता है कि हमारे ऋषियों ने भिन्न प्रतीत होती हुई सत्ता को अभिन्न सत्ता क्यों कहा है। इसकी अनुभूति कबीर को भी हुई थी और वह सुख-दुख, लाभ-हानि, जीवन-मरण की द्वन्दात्मक स्थिति के परे रहने लगे थे।

अनजाने को सरग नरक है, जाने की कछु नाहीं।

जेहिं डर कौ सब लोग डरत हैं सो डर हमरे नाहीं।

हमारे कवि सीताकांत महापात्र मृत्यु को नकारते हुए, उसको छुट्टी पर भेजते हुए बहुत कुछ इसी प्रकार का कथन करते हैं-

फिर छिन में

देखते-देखते लगेगा

यही तो है बैकुण्ठ

देव, देवी, अप्सरा, रंभा, मेनका, उर्वशी और

ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र, स्वयं विष्णु

स्वरचित माया, सुरभित चाँदनी में

समा गए सहसा

लगेगा कि बैकुण्ठ का दूसरा नाम है निर्जनता

जिसे अगोरे हुए बहती है

स्मृति और समय की नदी।

(चाँदनी में गाँव का श्मशान)

'डरता है मौत से वह आदमी' कविता में कवि स्पष्ट लिखता है कि मौत से वह आदमी डरता है जो भिन्नता में जीता है, द्वैत से ग्रसित है-

डरता है मौत से वह आदमी

इसीलिए कि

उसका अपना कुछ नहीं रह जाएगा।

और अन्त में कवि अंतिम वास्तविकता को इस प्रकार व्यक्त कर देता है-

उसी अंतिम डर से

संबंधहीन, स्मृतिहीन, शब्दहीन

समय से परे उसी असमय से।

(डरता है मौत से वह आदमी)

जो निश्छल है, प्रेम में अद्वैत का अनुभव करता है, उसके लिए मौत मानो लम्बी छुट्टी पर है। यथा-

आई है वर्षा अब

मृत्यु हैं लम्बी छुट्टी पर

दूर परदेस में,

विरही जीवन चाहता है खो जाना चुपके से

बादलों के शुभ्र मल्हार करुण राग में।

(वर्षा की सुबह)

इसी के साथ कवि पाठक एवं जिज्ञासु को आश्वस्ति, संबल एवं भरोसा भी प्रदान करते चलता है। उसका कहना है कि मधुर शब्द केवल प्रेम की सृष्टि करके नष्ट हो जाते हैं-ऐसी बात नहीं है। ऐसे शब्द अमर हैं और मौत को भी टाल देते हैं। यदि आप मधुर वाणी बोलोगे तो तुम्हारे भीतर विश्वास भर जाएगा-

शब्दों के स्नेह की भाषा अलौकिक माया लिए

भर देती है सारा संसार

भर कर प्रियतमा तुम्हारा ही विश्वास।

(गलत पते की चिट्ठी)

फिर मृत्यु का भय क्यों और क्यों कर। वह तो हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो जाती है-

समय, सुदूर बादलों से, बांसुरी से

हाथ हिलाता है

रुका रहता है मरण,

क्षण में मिल जाते हैं सारे उन्माद,

आवेग।

(गलत पते की चिट्ठी)

जीवन में यह आश्वासन क्या कम है कि विलम्बित स्वर हंस बन जाएं और जीवन में एक बार फिर बसंत आ जाये।

विलंबित स्वर हंस बन बह जाता

सूर्यहीन अतल नदी में।

तुम्हारी आत्मा की निःशब्द

त्रस्त मृग देखता है कण्व - आश्रम में

बादलों के उस पुराने रुलाई भरे स्वर में

फिर से बसंत आया है

चारों ओर है रंगों की होली और मधुमक्खियाँ

(एक सितारवादिका के लिए)

हम यदि सुख और आनंद चाहते हैं, तो हमें अपने चारों ओर दुख और विषाद की रेखाएँ खींचना बन्द करना होगा। हमारी हालत है कि हम जिस थाली में खाते हैं, उसी में छेद करते हैं। हम पृथ्वी की मिट्टी से पुष्टि लेकर बड़े होते हैं और उसी मिट्टी से विनाशकारी अस्त्र बनाते हैं। हमें सूर्य से अग्नि मिलती है और उसी अग्नि द्वारा हम आग लगाने का काम करते हैं। कवि कहता है ऐसा करना मना है क्योंकि यह सर्वथा अनुचित है। पुष्टि के बदले पुष्टि न देना कुंठित जीवन की पहचान है। हम यदि अपने निर्माता पंच तत्वों को निर्माण के कार्यों में लगायेंगे, तभी कहा जा सकेगा कि हमारी तृष्णा, हमारी वासनाएँ अकुंठित हैं। कवि **'चूल्हे की आग'** कविता के प्रथम और अंतिम चरण में अपने अंचल में समग्र जीवन-दर्शन को- समेटकर चलता है, यथा-

न जाने किस अनंतकाल से

जलाए बैठे हैं अपना चूल्हा सूर्यदेव

बेसुध गहरे ठिठुरन - भरे अँधेरे में

वहीं से इत्ती-सी आग ले

माँ वसुधा

उपजाए हैं कितने स्नेह से, चाह से

पहाड़ नदी, पहला जीवन - स्पंदन

महाद्रुम, पशु-पक्षी, मनुष्य, गुल्म, लताएँ।

X X X X X X X

अब तुम लेकर आग उसी चूल्हे से

फैलाओ मत दावानल,

ऊँची-ऊँची लपटों में धधकाकर

जलाओ मत पलक झपकते

गाँव, कसबे, मंदिर और मस्जिद

विश्वास की विरासत

आकाश और पाताल।

(चूल्हे की आग)

कवि की आश्वस्ति और आत्म विश्वास दोनों ही स्पृहणीय भी हैं और प्रेरणाप्रद भी हैं। जब आकाश और पाताल, शून्य और स्थूल सभी कुछ विश्वास के स्रोत बन जाते हैं तब मानव-विनाश की बात सोच भी नहीं सकता- है। तब तो शून्य भी विश्वास की विरासत बन जाता है। अग्नि तत्व के संयोग से अनंत काल से अंधकार एवं ठिठुरन से जीव मात्र की रक्षा होती है, उसी अग्नि तत्व का एक अंश हमारी माँ पृथ्वी है, अग्नि तत्व के संयोग से ही दृश्यमान जगत के पदार्थ पर्वत, नदी, लता, गुल्म, मनुष्य एवं उनके जीवन के स्पन्दन की उत्पत्ति हुई है। जिस अग्नि को लेकर हम यज्ञ आदि पवित्र कार्य करते हैं, उस अग्नि के प्रति हमें कृतज्ञ होना चाहिए। उस ऋण भार को चुकाने के लिए हमें नव-निर्माण के कार्य करने चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं, तो हम क्या कृतघ्नंता के दोषी नहीं होंगे ? इतना ही नहीं, इसी मानव ने आज तक महान कार्य किये हैं, उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, वे सब उसने अग्नि से शक्ति एवं ऊर्जा प्राप्त करके ही अर्जित की हैं। यद्यपि अग्नि ही हमारे लिए भोज्य सामग्री सिद्ध करती है। चावल आदि वही पकाती है। अब अगर उसी चूल्हे की उसी आग को लेकर हम वन में आग लगाते हैं मकान, गाँव, नगर आदि जलाते हैं तथा अन्य प्रकार से विनाश करते हैं, तो कवि कहता है-

अब तुम लेकर आग उसी चूल्हे से

फैलाओ मत दावानल।

भारतीय आचार्यों के अनुसार प्रत्येक बालक तीन ऋण लेकर जन्म लेता है- देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण। अग्नि तथा प्राकृतिक पदार्थ देव ऋण के अन्तर्गत आते हैं। इसके रखरखाव, इसकी वृद्धि में योगदान देव ऋण से उऋण होना है। इसके विपरीत आचरण प्राकृतिक विधान के विरुद्ध आचरण ही कहा जायेगा और एक बात यह है कि धान्य, तृण-गुल्म, ये वक्ष आदि हमें भोजन सामग्री प्रदान करते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से यदि हम इन्हें नष्ट करते हैं तो अपने भोजन के स्रोत, अक्षय भण्डार के साथ खिलवाड़ करते हैं। जो भी हो, लोक परलोक, व्यक्ति, समष्टि समस्त

दृष्टियों से हमें प्रकृति के पदार्थों के दुरुपयोग से बचना चाहिए। जब तक हमारे मन में समष्टि के प्रति आत्मीयता का भाव नहीं होगा, तब तक यह कैसे कहा जा सकता है कि हमें व्यापक आत्म तत्व के प्रति विश्वास है। एक अन्य जीवन तत्व जिस पर कवि बल देता है, वह है धैर्य। धैर्य भी प्रगति के मार्ग का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सोपान है। मनुष्य जन्म लेता है तब उसे लगता है कि वह किसी बियावान में आ गया है। अपने लिए उसे कोई रास्ता नहीं दिखाई देता है, उसकी समझ में नहीं आता है कि वह आगे बढ़ने के लिए, प्रकाश की प्राप्ति के लिए, किस मार्ग को अपनाए और वह अपने आप, स्वविवेक के आधार पर मार्ग प्राप्त कर लेता है। परन्तु उसको चाहिए कि वह इस विश्वास के साथ धैर्य से रास्ता खोजते हुए धैर्य न छोड़ें-

साँझ के आकाश में घर लौटती चिड़िया

रास्ता, रास्ते के मील के पत्थरों के निर्देश नहीं ढूँढ़ती चलती

आने वाले कल की यात्रा के लिए संकेत नहीं छोड़ती

बल्कि बनाती चलती है रास्ता डैनों के कंपन से

मिटाती चलती है रास्ता शून्य - नीली सिलेट पर |

(रास्ता)

कवि के अनुसार रास्ता हर जगह विद्यमान है और कहीं भी नहीं है। श्रद्धा पूर्वक उसके प्रति विश्वास करो रास्ता अपने आप प्रशस्त हो जायेगा। इस पहेली का समाधान कवि अत्यन्त साधारण तौर पर प्रस्तुत कर देता है, यथा-

उस पार लगा रहता है मोह

X X X X X X X X

अनजाने में उस पार से हो जाता है मोह,

वह पार होता है यह पार।

मतलब यह है कि मन की दुविधाएँ इस पार और उस पार का मोह पैदा करती है। यदि यह मोह, यह दुविधा तथा स्थान की सापेक्षता का भाव नष्ट हो जाए, तो सब कुछ यहीं उपलब्ध हो जाए। इस पार और उस पार का छलावा समाप्त हो जाए। इसको वैज्ञानिक भाषा में स्थान का छलना कहा जाता है। कवि का प्रश्न कितना सटीक है।

क्या नहीं हो सकती ऐसी नदी

जिसका सिर्फ एक ही किनारा हो ?

क्या नहीं हो सकता ऐसा सपना

जिसका आदि अंत न हो

जड़ें हो जिसकी शून्य में ?

(उस पार)

कवि सीताकांत महापात्र ने सांत्वना भरे विचारों को सरल शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। फलतः कवि पाठक एवं श्रोता को सदैव जोड़े रहता है। तद्भव शब्द कविता को सदैव हृदयस्पर्शी बनाए रहते हैं। देखें -' इससे बढ़ कर भला और क्या ?"

पृथ्वी, चिड़ियों के घोंसले, खुद को खरोंचकर किलबिलाते, अधगढ़े, सुमिरा आदि। खामोश रात, कवि, बाहर का दरवाजा, एक सितार-वादिका के लिए, समुद्र आदि कविताएँ ऐसी ही हैं जिनमें तद्भव एवं टेबुल, नाड़ा, कमीज, बटन, टी. वी. आदि विदेशी शब्दों के प्रयोग ने भाषा को सर्वग्राह्य बना दिया है।

एक दो स्थानों पर कवि ने नए ढंग का प्रतीक विधान करके अपने भाव-जगत के परिवेश को प्रदान कर दी है। यथा-

या चाहते हो फोटो ?

वह तो चाहे जितना खींच लो

तुम्हारे टी.वी. के बगल में।

(समुद्र)

जीवन की आपा-धापी को कवि ट्रेन के रूप में चित्रित करता है और अनेक नई उपमाओं का प्रयोग करता है। जिससे पुराने प्रतीकों को मुलम्मा उतरे हुए बर्तनों के रूप में देखने वाले कवियों-अज्ञेय आदि को शिकायत न रहे।

अस्थिर ट्रेन दौड़ती है पागलों सी

ताती है साँस लेती है,

फिर दौड़ने लग जाती है।

तथा सूर्य का कोहरे की चादर से झाँकना, आवाज तितली-सी बहती हुई, युग की जन्म की नींद, तथा-

ताल के दूसरी तरफ, हाफ पैंट धारी किशोर

मछली की तरह

कूद पड़ता है पानी में छपाक से।

सबेरा टूक-टूक हो जाता है,

(ट्रेन में सुबह)

'वर्षा की सुबह' कविता की यह पंक्ति देखिए इसमें गरजते हुए बादलों की गहरी घटा के लिए घुप्प करने वाले बादलों के लोहारखाने का प्रयोग सर्वथा नवीन है-

सुन पड़ता है प्रहार वज्र का

घुप्प करने वाले बादल के लोहारखाने से।

'घोंसलों का कलरव' विशेषण विपर्यय का सर्वथा नवीन प्रयोग है। कवि साथ में यह चेतावनी दे देता है कि इस मार्ग पर अकारण समाज की चिंता वर्जित है।

कल सुबह तेरे न उठने पर भी

वे लोग रास्ता बुहार कर साफ कर देंगे,

(अकेले-अकेले)

एक पल के लिए भी यह मत सोचो कि मेरे बिना काम नहीं चलेगा। तू न रहेगा, तब भी सब काम होते रहेंगे।

12. 3. वर्षा की सुबह कविताओं की विशेषताएँ

सीताकांत महापात्र का गहरा जीवन-बोध संग्रह की प्राय: प्रत्येक कविता में झांकता हुआ दिखाई देता है। वर्षा की सुबह कविताओं में जीवन-बोध की प्रच्छन्न धारा अविच्छिन्न रूप से व्याप्त दिखाई देती है। इसके कारण ये समस्त रचनाएँ जीवंत प्रतीत होती हैं। इसी के अनुरूप इन कविताओं के लक्ष्य और शिल्प हैं। इस इकाई में संग्रहीत कविताओं के सामान्य परिचय के अन्तर्गत कहा गया है कि गहरे उद्वेगों, सूक्ष्म संवेदनों और शब्दों के माधुर्य तथा संगीत से फूटती हैं सीताकांत महापात्र की कविताएँ। दिन-प्रतिदिन के कार्य-व्यापार, प्रकृति की अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार- हम इनमें एक गहरे मानवीय राग के साथ देख-सुन सकते हैं। इनमें वर्तमान में खड़े होकर बहुत पीछे लौटना भी है तथा बहुत आगे देखना भी। समुद्र, आकाश, धरती, सूरज, चन्द्रमा, दूब, पेड़-पौधे, फल-फूल, पशु-पक्षी, ऋतु चक्र हमें जिस जीवन बोध से इन कविताओं में जोड़ते हैं, वह अपूर्व है। मृत्यु इस जीवन बोध पर अपनी छाया डालती जरूर है, पर वह इस जीवन-बोध को न तो परास्त कर पाती है न ही भयभीत और इस संग्रह की कविताओं में तो मृत्यु मानो लम्बी छुट्टी पर है। इन कविताओं में पुराणों- आख्यानों के प्रसंग भी इस जीवन बोध को और गहरा करने के लिए ही हैं। इन कविताओं में मानवीय सम्बन्धों का भी एक विशिष्ट आकलन है, जो जीवन-संग्राम के बीच हमें गहरे मानवीय भरोसे, विश्वास और संबल की सी प्रतीति कराता है। कवि संवेदना की व्याप्ति निकट से निकट और दूर से दूर की चीजों पर कुछ इस तरह से है कि हम एक यात्रा पर होने का अनुभव करते हैं- ऐसी यात्रा जो आदि-अंत हीन लगती है, पर जिसके कविता पड़ाव 'शून्यता भी शब्दों की सस्नेह श्रद्धांजलि' बन जाते हैं और बन जाते हैं एक ऐसा उपक्रम जहाँ हमारा काम है केवल जोड़ते चले जाना सांत्वना भरे सरल शब्द.....आदि। इस दृष्टि से वर्षा की सुबह की कविताओं की विवेचना बहुत कुछ इस प्रकार होगी।

• सूक्ष्म-संवेदन

सूक्ष्म संवेदना को हम प्रायः प्रत्येक कविता में पायी जाती है। कवि प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में अपने भाव जगत को दुख-सुख के जोड़े को देखता है और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करता हुआ दिखाई देता है। हम पहली कविता आकाश ही को लेते हैं- कवि पृथ्वी के पेड़-पौधे, खेत, घर-द्वार, प्रत्येक वस्तु को आकाश के संदर्भ में ही देखते हैं। वह कवि को कभी थका हुआ पथिक दिखाई देता है और कभी एक उतावला प्रेमी। संवेदना की सूक्ष्मता की चरमावस्था तब सामने आती है जब शून्य एकान्त में खड़े ताड़ वृक्ष को माँ यशोदा बन कर बालकृष्ण की भाँति स्नेह पाश में बाँधता है। हमारे विचार से इस प्रकार की कल्पना सर्वथा अभिनव कल्पना है –

उसी पर कभी एक थके-हारे पथिक-सा

कभी उतावले प्रेमी - सा
झुका होता है जो
उसी का नाम है आकाश।
गहरे खेत के एकाकी ताड़ वृक्ष को
इतनी सुन्दर शून्यता के प्रेम में
बाँधे रखता है जो
माँ यशोदा बन
बालकृष्ण को
मींचकर अपनी गोद में
उसी अनभूली स्नेहमयी
विभूति का नाम है आकाश।

(आकाश)

इसी के साथ कवि इतने विशाल हृदय वाला आकाश बनने की कल्पना करने लगता है-बनूँगा नहीं क्या मैं कभी आकाश ? सागर की अनंतता और उस अनंतता की मर्यादा की रक्षा करते हुए सागर पर ऋषि मोहित हुए थे, उसको रत्नाकर नाम दिया और देखा कि विश्व की सम्पदा को धारण करने वाला सागर देने के लिए सदैव व्याकुल बना रहता है। ऐसे सागर पर ज्ञानदृष्टा ऋषि का मोहित होना सर्वथा स्वाभाविक है।

वही ऋषियों को लुभाने वाली मुसकान
जब कोमल चाँदनी रहती है तैरती
लहरों पर गुनगुनाती मंत्र - सी।

जिस वस्तु को सागर देता है, उसकी ओर भूल कर भी नहीं देखता है-

पर नहीं देखता समुद्र
भूल से भी उस सीपी की ओर
फेंक चुका होता है उसे
अपने तट पर रेतीले विस्तार में।

यहाँ विस्तार शब्द कवि की सूक्ष्म पैठ का परिचायक है।

(समुद्र की भूल)

'दिन' शीर्षक कविता के अन्तर्गत कवि सायंकालीन उदासी का चित्र अत्यन्त सूक्ष्म संवेदनापूर्ण करता है-

जाता है चला जाता है दिन

डूबते सूर्य के साथ,

खो जाता है

घर लौटती चिड़ियों के पंखों में,

चुप हो जाता, ठिठक जाता है

हवा की बोझिल सांसों में।

कुछ कविताओं में कवि के गहरे उद्वेगों से पूरित वाणी उभर कर आ जाती है। **'उठकर चल दिए तुम'** कविता में कवि प्रियतम से बिछुड़ने पर अपना उद्वेग व्यक्त करता है। उसका प्रियतम अशरीरी-रहस्यात्मक प्रियतम है, जिसकी छाया पाने को वह बेचैन दिखाई देता है। जिन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर कृत **'गीतांजलि'** पढ़ी है वे उसके परिप्रेक्ष्य में कवि सीताकांत की ये पंक्तियाँ पढ़कर देखें।

चल दिए तुम

'बह गये आश्विन के सफेद बादलों की तरह' लिखने के पश्चात् कवि कविता का उपसंहार सा करता हुआ कहता है-

रत्ती भर नहीं सोचा

जन्म-जन्मान्तर की वह स्नेह-डोर तोड़ दी

चले गये तुम बिना कुछ बोले

खो गये परछाई - सा आश्विन के बादलों में

मुझे अकेला छोड़ गये

क्षीण वंशी - ध्वनि-सा

आकाश के शून्य प्रान्तर में।

काव्य-शास्त्रीय परम्परानुसार इस वर्णन में विरह की उद्वेगावस्था का पूर्ण पालन है। आश्विन के बाद रजत-वर्ण अत्यन्त आकर्षक होते हैं। प्रायः जलहीन, बहुत हुआ तो एक-दो फुहार छोड़ देते हैं। हवा के हल्के से झोंके के साथ वे वर्षांत की सूचना देते हुए पूर्व दिशा में समा जाते हैं। कवि सीताकांत की कविताओं के बारे में कहा जाता है कि दिन-प्रतिदिन के कार्य - व्यापार, प्रकृति की अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार, हम इनमें एक साथ सुन सकते हैं- एक गहरे मानवीय राग के साथ। इन समस्त बातों को सीताकांत की अधिकांश कविताओं में देखा सुना जा सकता है। कारण यह है कि - प्रकृति कृवि के लिए चेतन है, जानी-पहचानी है, चिर परिचित है। वह कवि की प्रत्येक भावना के साथ तदाकार है। 'वर्षा की सुबह' शीर्षक में कवि भीगते हुए स्कूल जाने वाले बालक का वर्णन करता हुआ अंत में जीवन और जगत के दार्शनिक स्वरूप पर अपनी बात का समापन करता है-

आज जाता है खुद ही पकड़ में स्वप्न

राह-भूली तितली - सा

X X X X X X X X X X

टँग देती हो पोशाक मेरी

मानो अगले जन्म के लिए

X X X X X X X X X X

किसी धुले-उजले कंकाल सी।

व्यथित, दुखित नारी हमारे जीवन का एक अभिशप्त एवं आवश्यक अंग है। उसके चित्रण में कवि की यह कल्पना सर्वथा अभिनव है। दिन प्रति घटित होने वाला एक विशेष प्रकार का राग उत्पन्न करने वाला है-

न जाने कितनी स्मृतियों के शव

कितनी आशाओं, कामनाओं के फूल

ढो लाती है वह कछुए-सी।

और इसी के साथ प्रस्तुत हैं उसके दोनों स्वरूप विष कन्या, कामिनी और जीवन प्रदायिनी ममतामयी माता यथा-

एक हाथ में है उसके निद्रादायी हलाहल

दूसरे में उज्जीवन, नील-स्वप्न का भ्रूण

- वह है सारा इहलोक, परलोक

मृत्यु और फागुन।

(नारी)

'सूरजमुखी' शीर्षक कविता में कवि दार्जिलिंग टाइगर हिल पर घटित एक सामान्य घटना को अत्यन्त संवेदनापूर्ण ढंग से वर्णित करता है। दो पंक्तियाँ लिखकर वह वर्णन को अध्यात्म द्वारा पर्यवेष्ठित कर देता है-

सूरजमुखी से मेरी ओर ताक रहे होगे तुम

आसन्न अँधेरे से।

'लट्टू' शीर्षक कविता में कवि बालकों द्वारा घुमाए जाने वाला साधारण लट्टू को लेकर चलता है और उसे विश्व का प्रतीक मानकर उसके चालक की खोज में मग्न हो जाता है। लट्टू दिन-प्रतिदिन की एक सामान्य घटना है और विश्व-प्रपंच के रचयिता एवं उसके प्रति जिज्ञासा भी असामान्य जन के मध्य घटित एक सामान्य घटना है। उसको जिज्ञासापूर्ण भावुकता से जोड़ कर कवि रहस्यमयी वाणी बोलने लग जाता है। जगत-बोध से नागदा घाट के प्रति उन्मुख हो जाता है। जगत बोध और आत्म-बोध के मध्य खाई को ज्ञानियों ने भले ही चौड़ा किया हो, परन्तु सीताकांत सदृश भावुक कवियों ने कभी भी इसकी परवाह नहीं की, यथा-

विशाल शून्यता में, अँधेरे में,

कहीं जो नहीं होता कोई

सिर्फ सुन पड़ती है

सन्नाटे की बर्राहट और सांय-सांय

कहाँ गया वह लट्टू चलाकर

हो गया अन्तर्धान किस ओर

वह चंचल बालक।

और अंततः-

लट्टू घूमता है,

वह पुराना लट्टू सिर्फ रोता है और

रोते हुए घूमता है।

'दूब' हमारे जीवन की एक अति सामान्य वस्तु है। उसको उखाड़ दिया जाय, परन्तु वह पुन: खड़ी हो जाती है। उस पर सीमेण्ट कर दिया जाए, परन्तु वह दरार बनाकर झाँकने लगती है। ऐसी वस्तु का वर्णन **'दूब'** शीर्षक कविता में सीताकांत करते हैं। यहाँ भी जीवन की संवेदना से उसे जोड़ कर देखते हैं और उसमें अनेक अनकही बातें पढ़ लेते हैं। प्रकृति वास्तव में ऐसे ही व्यक्तियों के अनंत ज्ञान और अपार आनन्द का भण्डार है, देखिए कवि क्या कहता है दूब को जीवंत, सचेतन दूब को लक्ष्य करके-

देख मेरी ओर

कोमल पत्ते की आँखों से

किसलिए घिसटता हूँ मरुस्थल में

शून्यता से शून्यता

अँधेरे से घोर अँधेरे में

प्रथम कुआँ - कुआँ के जापाघर से लेकर

शब्द हीन शेष घड़ी तक।

जन्म, मरण, विवाह आदि मंगल अवसरों पर दूब का प्रयोग किया जाता है। पर क्या हमने कभी कवि की आँखों से उसके भीतर स्थित मादकता, जीवन की समग्रता को समाहित देखने का प्रयत्न किया है। अब देखिए कवि सीताकांत की आँखों से, और सुनिए भी उन्हीं के जैसे कानों से-

दूब दूब

क्षुधा, तृणा, प्रतीक्षा का अंतहीन उनींदा प्रहर

साथ-साथ भोगा है हमने

साथ-साथ रमे हैं

सखी मेरे प्राणों की अपनी।

अवांछित शीर्षक कविता में पत्थर के रेत पर पेड़ के सूखे पत्ते जैसी व्यर्थ समझी जाने वस्तुओं को लेकर देखता है कि वे कितनी उपयोगी हैं। उनका उपयोग तो हम करते हैं, परन्तु कृतज्ञता पूर्वक नहीं। प्रकृति से परिचय न मालूम कितना पुराना है ? वह पग-पग पर अंग्रेजी के महान नाटककार कवि शैक्सपीयर का यह कथन चरितार्थ करता हुआ चलता है - The poem hangs on the berry bush, when comes the poets eye। 'श्मशान' और फिर गाँव का श्मशान, कितना अग्राह्य होता है। वहाँ कोई नहीं जाना चाहता है, वहाँ ठहर कर किसी प्रकार मन रमाने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु हमारा कवि सीताकांत वहाँ भी प्रकृति की मनोमुग्धकारी लीला और झाँकी के दर्शन कर लेता है। वह वहाँ चाँद को बातें करते हुए सुनता है, कृष्ण को कहीं दूर बाँसुरी बजाते सुनता है, कभी वह वहाँ प्रेतात्माओं, परछाइयों के आवागमन की आहट सुनता है और कभी ऐसे व्यक्ति को सम्बोधित करता है, जो अपना सर्वस्व छोड़ कर वहाँ आया है- वहाँ तो सभी ऐसे ही रूप में आते हैं। इसके साथ ही वह राम नाम सत्य की आवाजों के पीछे झाँकते हुए सत्य को झाँकते हुए समझ जाता है-

अपना एकमात्र सत्य है

अब सामने एक ही दिगंत।

(चाँदनी में गाँव का श्मशान)

तदुपरान्त वह इसे कुरुक्षेत्र का रूप अनुभव करता है और अन्ततः पुकार उठता है- यही तो है बैकुण्ठ। लोक में भी मुर्दे को ले जाने वाले पुकार उठते हैं-साधो, यही है तेरा वृन्दावन। इहलोक और परलोक के समन्वय स्वरूप कवि का निष्कर्ष है-

लगेगा कि बैकुण्ठ का दूसरा नाम है निर्जनता

जिसे अगोरे हुए बहती है

स्मृति और समय की नदी।

(चाँदनी में गाँव का श्मशान)

सचमुच अद्भुत है अनंत विस्तार और जगत् बोध के प्रति यह मानवीय राग। सूर्य की सर्वव्यापकता का दर्शन ज्ञानियों ने अपने अन्तस में, अपने हृदय में किया है। परन्तु हमारे कवि सीताकांत उसकी सर्वव्यापकता का साक्षात दर्शन इस जगत में, दृश्यमान जगत में करते हैं। वस्तुतः सगुण-साकार ही हमारे काम की वस्तु है। वह दिखाया भी जाता है और देखा भी जा सकता है, कवि सीताकांत के अनुसार-

सर्वव्यापी मायावी पुरुष

आखिर कहाँ नहीं होते तुम ?

बूढ़ी माँ की मुरझायी आँख में

ओस की दुलदुल बूँद में

रक्त के तीव्र प्रवाह की अधीरता में

कुआँ- कुआँ की पहली पुकार में

प्रणव ओंकार में

यंत्रणा के विकार में

हर जगह होते हो, तुम ही तुम। (सूरज)

खून की गरमी से लेकर अत्याचारी के क्रोध में और अन्ततः ओंकार का जय करने वाले ऋषि के उत्साह में जो गर्मी है - वह सब सूर्य से ही तो प्राप्त है। इतनी गहन, सहज और अतलदर्शी अनुभूति वस्तुतः कवि की मार्मिक दृष्टि का सहज प्रमाण है- उसकी संवेदना वस्तुतः लोकव्यापी है, उसके प्रत्येक वर्णन के साथ मानवीय राग का प्रच्छेद्य सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। ट्रेन - यात्रा जैसी साधारण घटना को कवि जीवन यात्रा से झट जोड़ देता है और वह जीवन को अनेक जीवनों की श्रृंखला के रूप में देखने लगता है। स्टेशनों पर ट्रेन के रुकने को वह ट्रेन का साँस लेना, सुस्ताना बता देता है और इस प्रकार हमारे जीवन में जड़ ट्रेन एक सचेतन हस्ती बन जाती है।

जिस प्रकार प्रत्येक जन्म में जीव अपरिचितों के मध्य पहुँच जाता है, उसी प्रकार ट्रेन प्रतिक्षण, प्रतिपल गाँवों के मध्य दौड़ती चली जाती है और अंत में कवि जीवन की भाँति ट्रेन को भी स्वप्न बता देता है, यथा-

पर इतने में सपना टूट जाता है

भूत लगी ट्रेन

दौड़ी चली जा रही है

न जाने कहाँ !

(ट्रेन में सुबह)

हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है और हम उसकी पूर्ति हेतु कहाँ और किधर जा रहे हैं- कोई नहीं जानता। **'गरमी की शाम का दृश्य'** शीर्षक कविता में कवि एक अंधे चरवाहे युवक को सूरज से बातें करते हुए दिखाता है और फिर सुनसान आकाश के तारों में उसकी आँखों में झलकते हुए आँसुओं की बूँदों को देखने लगता है, यथा-

सुनसान आकाश में तारे रह-रह कर

उसी की आँखों के आँसू की बूँदों की तरह

झिलमिलाते हैं।

(गरमी की शाम का दृश्य)

'एक सितारवादिका के लिए' शीर्षक कविता में भी कवि इहलोक और परलोक को, जमीन और आसमान के अद्वैत रूप में देखने का प्रयत्न करता है-

विलम्बित स्वर हंस बन बह जाता है

सूर्यहीन अतल नदी में।

तुम्हारी आत्मा की निःशब्द

त्रस्त मृग देखता है कण्व आश्रम मेंs

बादलों के उस पुराने रुलाई-भरे स्वर में

फिर से बसंत आया है

चारों ओर है रंगों की होली और मधुमक्खियाँ।

(एक सितार वादिका के लिए)

केंकड़े से लेकर रत्नों को धारण करने वाले समुद्र की मर्यादा एवं दान शीलता सर्वथा स्मरणीय हैं। वह सबको नित्य नई प्रेरणा देता है, क्योंकि प्रगति और विकास की सीमाओं की हयन्ता नहीं है। जो सोचते हैं कि मेरे पदचिन्हों पर अन्य लोग चलेंगे- वे कितनी भारी भूल करते हैं- यह जानना हो तो 'समुद्र' शीर्षक सीताकांत की कविता पढ़ें-

उन पद चिन्हों को

लीप-पोंछकर मिचाना ही तो है काम मेरा

तुम्हारी आतुर वापसी को

अपने स्वभाव सुलभ

अस्थिर आलोड़न में

मिला लेना ही तो है काम मेरा।

(समुद्र)

अंत में हम देखते हैं कविता शीर्षक 'चूल्हे की आग'। चूल्हे की आग अनन्त काल से जल रही है। यह आग कहाँ से आई ? इसे कौन लाया ? इसके कितने अगणित रूप और उपयोग हैं? इन सब प्रश्नों का उत्तर कौन देगा? कवि का एक ही परामर्श है। इतनी महत उपयोगी अग्नि का हम दुरुपयोग न करें ? उसके निर्माणकारी रूप को विनाशकारी न बनाएँ। परन्तु मानव कब मानता है। वह सम्भवतः निर्माण की अपेक्षा विनाश में अपने महत्व को प्रदर्शित करना चाहता है-

अब तुम लेकर आग उसी चूल्हे से

फैलाओ मत दावानल

ऊँची-ऊँची लपटों में धधकार

जलाओ मत पलक झपकते

गाँव, कसबे, मंदिर और मस्जिद

विश्वास की विरासत

आकाश और पाताल।

(चूल्हे की आग)

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिन-प्रतिदिन के कार्य व्यापार, प्रकृति की अपार लीलाएँ, दिक्काल का अनंत विस्तार, हम इन कविताओं में एक गहरे मानवीय राग के साथ देख सुन सकते हैं। समुद्र, आकाश, धरती, सूरज, चन्द्रमा, दूब, पेड़-पौधे, फल-फूल, पशु-पक्षी, ऋतु चक्र हमें जीवन बोध से इन कविताओं में जोड़ते हैं, पर अपूर्ण हैं। इन कविताओं की जिस अगली विशेषता की ओर संकेत किया गया है वह है- इनमें खड़े रह कर बहुत पीछे लौटना भी है तथा बहुत आगे देखना भी है। हम अनेक कविताओं में स्पष्ट कर चुके हैं कि कवि जीवन को अनेक जन्मों की श्रृंखला के रूप में देखता है, जीवन और जगत को जन्म-जन्मांतर के संबंध के रूप में अनुभव करता है, यथा-कब नहीं था, कहाँ नहीं होता (आकाश)

तलाश लेता है मुझे

मेरा पिछला दिन मेरे पिछले जन्म का शोक

करती हो इस्त्री पोशाक मेरी

टाँग देती हो उसे

(मानो अगले जन्म के लिए)

(वर्षा की सुबह)

मैं हूँ तुम्हारी ही प्रतीक्षा में।

(मृत्यु)

मंदार की माला परने

चला गया घूमने

किसी और के घर।

(एक किशोर की मृत्यु)

कितने जन्म कितनी मृत्यु लग जाती है

कितने युग बीत जाते हैं, नहीं होता खेल खत्म।

(हम)

आगे से आगे घूम रहा है।

(लट्टू)

किस आदिम युग से पृथ्वी, कहाँ गये वे लोग, नया साल और बापी, चाँदनी में गाँव का श्मशान आदि शीर्षक कविताओं में जन्म और मृत्यु को एक साथ जोड़ कर देखा गया है। **'नीरवता'** शीर्षक कविता में चिरकाल से झड़ते रहने वाले महुए के फूलों के माध्यम से कवि अपनी बात कहता है। **'ट्रेन में सुबह'** कविता में कवि जिंदगी को निरंतर भागता हुआ देखता है। **'यात्रा तेरी लम्बी हो'** शीर्षक कविता का कथ्य सर्वथा अपने नाम के अनुरूप है। **'समुद्र'** शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ वर्तमान के साथ भविष्य को मिलाती हैं और अतीत के प्रति इंगित करती हैं-

उन पदचिह्नों को

लीप-पोंछ कर मिटाना ही तो है काम मेरा

तुम्हारी आतुर वापसी को

'चूल्हे की आग' शीर्षक कविता में अग्नि के अनंत जीवन की कहानी - आदि अंत रहित कहानी समाहित है। न जाने कितने अनंत काल से जलाए बैठे हैं अपना चूल्हा सूर्यदेव। हम देखते हैं कि वर्षा की सुबह की कविता-संग्रह की कविताओं में जीवन-बोध की गहराई सर्वथा अपूर्व है और प्रेरणाप्रद भी, क्योंकि उसमें मृत्यु है, परन्तु वह जीवन को परास्त नहीं कर पाती है, यहाँ तक कि मृत्यु है लम्बी छुट्टी पर और मृत्यु जहाँ है, वहाँ उसका स्वागत ही होता दिखाई देता है। तथा डरता है मौत से वह आदमी।

12. 4. सारांश

उसके लिए चाहिए धीरज, साहस, गहरा प्रेम, आश्वस्त और भाषा के प्रति एक अकुंठित तीखी तृष्णा। यह सब सीताकांत महापात्र की कविता में हैं, और इनकी मात्रा में लगातार बढ़ोतरी होती गई है। प्रमाण हैं इस संग्रह की कविताएँ जो उनके ओड़िया में कुछ अरसा पहले प्रकाशित 'वर्षा सकाल' संग्रह का हिन्दी अनुवाद हैं। ओड़िया से हिन्दी में प्रकाशित सीताकांत महापात्र का यह एक महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसका अनुवाद, सीताकांत महापात्र की कविता और ओड़िया साहित्य के जाने-पहचाने अनुवादक राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ने कवि के साथ मिल-बैठकर किया है। ज़ाहिर है कि इससे इनकी प्रामाणिकता और भी बढ़ गई है।

12. 5. बोध प्रश्न

1. वर्षा की सुबह के आधार पर सीताकांत महापात्र की भाषा-शैली को बताइए।

2. वर्षा की सुबह संग्रह में संग्रहित कविताओं की विशेषताएँ।

12.6. सहायक ग्रंथ

1. समकालीन भारतीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

2. भारतीय साहित्य का समेटिक इतिहास -डॉ. नगेन्द्र।

3. भारतीय भाषाओं में संक्षिप्त इतिहास, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

13. हयवदन नाटक का पृष्ठभूमि

13.0. उद्देश्य

गिरीश कर्नाड का हयवदन नाटक का पृष्ठभूमि- सामान्य परिचय को विस्तृत रूप से जानेंगे। हयवदन नाटक में जिसका शरीर मनुष्य का और मुख घोड़े का है। इस उपाख्यान के माध्यम से गिरीश कर्नाड ने आधुनिक स्त्री-पुरुष की आधी-अधूरी त्रासदी का वर्णन किया है। स्त्री-पुरुष के उलझावपूर्ण सम्बन्धों और पूर्णता की तलाश में असह्य यातनापूर्ण परिणति ही इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है।

रूपरेखा

13.1. प्रस्तावना

13.2. नाटक के मुख्य पात्र

13.3. जीवन परिचय

13.4. कार्यक्षेत्र और साहित्य

13.5. सिनेमा

13.6. सम्मान और पुरस्कार

13.7. हयवदन की ओर

13.8. हयवदन नाटक का सामान्य परिचय

13.9. कर्नाड के नाटकों में स्त्री-पुरुषों का संबंध

13.10. सारांश

13.11. बोध प्रश्न

13.12. सहायक ग्रंथ

13.1. प्रस्तावना

गिरीश कर्नाड ने कन्नड़ नाट्य जगत की पुरानी मान्यताओं को तोड़कर आधुनिक जीवन की विचारधारा को स्थापित करने का प्रयास किया है। उनके नाटकों में ऐतिहासिक एवं पौराणिक या मिथकीय आयामों को आधार बनाकर और समसामयिक जीवन की समस्याओं विशेषकर स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित नाट्य रचना अंत्यत विवादस्पद एवं चर्चित रही है। जयदेव तनेजा के अनुसार 'अपने वर्तमान समय, समाज और सरोकारों समस्याओं को समझने तथा नाट्य के रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए महाभारत, पुराण, इतिहास, जातक एवं लोककथाएँ आरंभ से ही गिरीश कर्नाड को आकर्षित और प्रेरित करती रही हैं। मानवीय और विशेषतः स्त्री-पुरुष

संबंधों का रहस्यमय तिलिस्मी संसार उनके नाटकों का केंन्द्रीय विषय रहा है' । गिरीश कर्नाड का यह प्रखर व्यक्तित्व ही उनको उनके समकालीन कन्नड़ नाटककारों से अलग विशेष स्थान दिलाता है ।

2. नाटक के मुख्य पात्र

- भागवत - नाटक के मुख्य कथाकार ।
- देवदत्त - दो मित्रों में से एक, ज्ञानी व्यक्ति ।
- कपिला - देवदत्त का मित्र, महान शारीरिक शक्ति वाला व्यक्ति ।
- पद्मिनी - एक खूबसूरत महिला, दो दोस्तों का प्यार ।
- हयवदन - घोड़े के सिर और आदमी के शरीर वाला एक अजीब प्राणी creature.
- अभिनेता -1 - भागवत के एक सहायक ।
- देवी काली - देवदत्त और कपिला को वापस लाने वाली देवी ।
- लड़का - देवदत्त और पद्मिनी का पुत्र ।
- विद्यासागर (केवल संदर्भित) - देवदत्त के पिता ।

इन पात्रों में से हम इस पाठ में मुख्यतः केवल तीन पात्रों के बारे में ही जानकारी प्राप्त करेंगे ।

13.3. जीवन परिचय

गिरीश कर्नाड का जन्म 19 मई, 1938 को माथेरान, महाराष्ट्र में हुआ था । बचपन से उनकी रुचि नाटकों की तरफ थी । महाराष्ट्र में जन्में गिरीश ने स्कूल के समय से ही थियेटर जुड़कर काम करना शुरू कर दिया था । कर्नाटक आर्ट कॉलेज से स्नातक करने के बाद वह इंग्लैण्ड चले गए । जहाँ उन्होंने आगे की पढ़ाई पूरी की । इसके बाद गिरीश कर्नाड भारत लौट आए और चेन्नई में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में सात साल तक काम करने के बाद इस्तीफा दे दिया । इस दौरान वह चेन्नई के कई आर्ट और थियेटर क्लबों से जुड़े रहे । इसके बाद वह शिकागो चले गए जहाँ उन्होंने यूनिवर्सिटी और शिकागो में बतौर प्रोफ़ेसर काम किया । तत्पश्चात गिरीश भारत दुबारा वापस लौट आए और अपने साहित्य के अपार ज्ञान से क्षेत्रीय भाषाओं में कई फ़िल्में भी बनाईं और साथ ही कई फ़िल्मों की पटकथा भी लिखी ।

13.4. कार्यक्षेत्र और साहित्य

गिरीश कर्नाड केवल नाटककार ही नहीं, अभिनेता, फ़िल्म निर्माता, कहानी लेखक और समाज की आधुनिक समस्याओं को उजागर करने वाले महान साहित्यकार हैं ।

उनका विचार था कि वे कवि बनेंगे, परन्तु जब छात्रवृत्ति लेकर आक्सफ़ोर्ड गए, उन्होंने नाटकों की ओर रुझान दर्शाया । उन्होंने पहला नाटक कन्नड़ में लिखा और उसके बाद वही नाटक को अंग्रेज़ी में अनुवाद किया । उनके नाटकों में "ययाति", "तुग़लक", "हयवदन", "अंजु मल्लिगे", "अग्निमतु माले", "नागमंडल", "अग्नि और बरखा" आदि बहुत प्रसिद्ध हैं । गिरीश ने कन्नड़ भाषा में अपनी रचनाएं लिखीं । जिस समय उन्होंने कन्नड़ में लिखना शुरू

किया, उस समय कन्नड़ लेखकों पर पश्चिमी साहित्यिक पुनर्जागरण का गहरा प्रभाव था। लेखकों के बीच किसी ऐसी चीज़ के बारे में लिखने की होड़ थी जो स्थानीय लोगों के लिए बिल्कुल नयी थी। इसी समय कर्नाड ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक पात्रों से तत्कालीन व्यवस्था को दर्शाने का तरीका अपनाया तथा काफ़ी लोकप्रिय हुए। गिरीश कर्नाड़ के नाटक ययाति (1961, प्रथम नाटक) तथा तुग़लक़ (1964) ऐसे ही नाटकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तुग़लक से कर्नाड को बहुत प्रसिद्धि मिली और इसका कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। इनकी कृतियों में जहाँ भारत का पुरातन झाँकता है, वहाँ आधुनिकता का भी सम्मिश्रण है। इस प्रकार साहित्य से सम्बन्धित अनेक क्षेत्रों में काम करने के कारण गिरीश कर्नाड ने कन्नड़ साहित्य को ही समृद्ध नहीं किया, हिन्दी साहित्य भी उनकी देन से अछूता नहीं है।

13.5. सिनेमा

गिरीश कर्नाड एक सफल पटकथा लेखक होने के साथ एक बेहतरीन फ़िल्म निर्देशक भी हैं। गिरीश कर्नाड ने वर्ष 1970 में कन्नड़ फ़िल्म 'संस्कार' से अपने फ़िल्मी कैरियर की शुरुआत की जिसकी पटकथा उन्होंने ही लिखी थी। इस फ़िल्म को कई पुरस्कार मिले जिसके बाद गिरीश ने कई फ़िल्में की। उन्होंने कई हिन्दी फ़िल्मों में भी काम किया, जिसमें निशांत, मंथन, पुकार आदि प्रमुख हैं। गिरीश कर्नाड ने छोटे परदे पर भी अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम और 'सुराजनामा' आदि सीरियल पेश किए हैं। उनके कुछ नाटक जिनमें 'तुग़लक' आदि आते हैं, सामान्य नाटकों से कुछ भिन्न हैं। गिरीश कर्नाड संगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष भी रह चुके हैं।

13.6. सम्मान और पुरस्कार

1. 1972 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार।

2. 1974 में पद्मश्री।

3. 1992 में पद्मभूषण।

4. 1992 में कन्नड़ साहित्य अकादमी पुरस्कार

5. 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार।

6. 1998 में ज्ञानपीठ पुरस्कार।

7. 1998 में कालिदास सम्मान।

इसके अतिरिक्त गिरीश कर्नाड को कन्नड़ फ़िल्म 'संस्कार' के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुका है।

एक श्रेष्ठ अभिनेता, निर्देशक और फिल्मकार के रूप में स्वयं को सिद्ध कर चुके प्रसिद्ध रचनाकार गिरीश कर्नाड अपने को मूलतः और अन्ततः नाटककार ही मानते हैं। 1970 में इन्हें सर्जनात्मक कार्य के लिए 'भाभा फैलोशिप' प्रदान की गई। इसी के तहत 'हयवदन' की रचना हुई। लोक रंगतत्तवों के सार्थक प्रयोग से स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता और सम्पूर्णता की तलाश की मृग मरीचिका को नाटककार ने 'कथा सरित्सागर' की एक कथा के बहाने अपनी नई नाट्य- रचना 'हयवदन' में रोचकता के साथ रेखांकित किया। 1971 में प्रकाशित 'हयवदन' को 1972 में ब.व. कारंत ने 'दिशांतर' (दिल्ली) और सत्यदेव दुबे ने 'थियेटर यूनिट' (मुम्बई) की ओर से लगभग साथ-साथ पेश

किया। अलग-अलग प्रस्तुति- शैलियों के बावजूद दोनों प्रदर्शन कलात्मकता एवं लोकप्रियता की दृष्टि से अत्यधिक सफल रहे। बाद में इसे ब.व. कारंत ने दो बार कन्नड़ और दो बार हिंदी (लखनऊ- भोपाल) के अलावा आस्ट्रेलिया में भी अभिमंचित किया। जर्मनी में इसे विजया मेहता ने किया था। 'हयवदन' समकालीन भारतीय रंगमंच में 'मील का पत्थर' सिद्ध हुआ जिसे प्रकाशन के बाद 1971 में ही भारतीय नाट्य संघ द्वारा गिरीश कर्नाड को श्रेष्ठ पुरस्कार का 'कमला देवी पुरस्कार' प्रदान किया गया।

13.7. हयवदन की ओर

गिरीश कर्नाड, विजया मेहता और भास्कर चन्दावरकर जैसे समकालीन भारतीय रंगमंच के तीन दिग्गज जब एक बिन्दु पर आ मिलें तो सृजन के किसी नये आयाम के उद्धान की जिज्ञासा और अपेक्षा स्वभाविक ही है। इसलिए हाल ही में संगीत नाटक अकादमी की ओर से जब विजया मेहता निर्देशित गिरीश कर्ना के सुप्रसिद्ध नाटक हयवदन के खानोलकर कृत मराठी अनुवाद के श्रीराम सेंटर में प्रदर्शन की घोषणा की गई तो दिल्ली के सूखे-सूने रंग- मौसम में एक हलचल सी मच गई। प्रतिभावन संगीतकार भास्कर चन्दावरकर के संगीत से सजी-संवरी 'द नेशनल सेंटर फ़ॉर द परफॉर्मिम आर्टस' तथा 'द गोआ हिन्दू एसोसिएशन' की इस संयुक्त चर्चरत प्रस्तुति को देखने के लिए रंग-प्रेमियों का एक सैलाब - सा उमड़ आया। नई व्याख्या, मौलिक प्रस्तुति शैली और लोक एवं संगीत के रचनात्मक रंग तत्वों के कल्पनाशील इस्तेमाल के निर्देशकीय दावों ने इस जिज्ञासा और अपेक्षा को अत्याधिक तीव्र कर दिया।

13.8. हयवदन नाटक का सामान्य परिचय

नाटक के लेखक गिरीश कारनाड कन्नड़ के एक स्थापित नाटककार हैं। उनका प्रथम नाटक ययाति सन् 1968 में प्रकाशित हुआ। तभी से ही साहित्य जगत में चर्चा के विषय बन गये। प्रायः उनके हर एक नाटक पुरस्कृत है। प्रस्तुत नाटक हयवदन सन् 1971 में प्रकाशित हुआ और उसी वर्ष इसको सफलतापूर्वक मंचित किया गया। 'हयवदन' नाटक के लेखन में नाटककार ने एक यह नया प्रयोग किया है कि परम्परागत शैली में इसको अंकों में विभाजित न करके मात्र दो भागों में (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध) में विभक्त किया गया है। यह नाटक मानव जीवन के मूलभूत अन्तर्विरोधों, संकटों और दबावों-तनावों को अत्यन्त नाटकीय एवं कल्पनाशील रूप में इस प्रकार प्रकट करता है कि वे सामान्य जन के सामने यथार्थ रूप में उपस्थित हो जाते हैं।

नर और नारी वस्तुतः एक-दूसरे के पूरक हैं अथवा एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। इस अधूरेपन को पूरापन प्रदान करने के लिए अर्धनारीश्वर की कल्पना हिन्दुओं के पुराण साहित्य में की गई है और इस पूर्णता को गौरी-शंकर, भवानी शंकर, शिव-पार्वती आदि स्थूल रूपों में सामान्य जन के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। ज्ञातव्य है कि यह अधूरापन कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है। चरमावस्था में वह अद्वैत जैसी अवस्था में भले ही प्रतीत होने लगे, परन्तु द्वैत की स्थिति बनी रहती है अर्थात् वह एकत्व की स्थिति में नहीं आ पाता है।

पुराणों की एक कथा के अनुसार ब्रह्मा ने पहले ठोस पदार्थ लेकर नर का निर्माण किया। तदुपरान्त विभिन्न पदार्थों से कोमलता लेकर नारी का निर्माण किया और उसको पुरुष को सौंप दिया। थोड़े दिन बाद पुरुष नारी को लेकर ब्रह्मा के पास जाकर कहने लगा- मैं इसके साथ नहीं रह सकता। यह कभी रोती है, कभी लड़ती है, कभी झगड़ती है आदि। आप कृपा करके इसे वापस ले लीजिए। ब्रह्मा ने तथास्तु कहकर पुरुष को संतुष्ट कर दिया। कुछ समय के बाद पुरुष फिर ब्रह्मा के पास पहुँचकर बोला- मैं नारी के बिना नहीं रह सकता हूँ। कृपा करके नारी मुझे वापस दे दीजिए।

ब्रह्माजी ने तथास्तु कह दिया। पुरुष परम प्रसन्नचित्त होकर नारी के साथ रहने लगा। कुछ दिनों बाद वह नारी के खिलाफ अनेक शिकायतें लेकर नारी को वापस लौटाने के लिए ब्रह्मा के पास फिर पहुँचा। ब्रह्मा आवेश में आकर, बोले- तुम कभी कहते हो, नारी को दे दीजिए, कभी कहते हो ले लीजिए। मैं कुछ नहीं जानता। अपनी नारी अपने पास रखिए और जैसे बने, वैसे इसके साथ रहिए।

आगे की कहानी स्वतः स्पष्ट होती है कि तब से नर और नारी न तो एक-दूसरे के साथ चैन से रह सकते हैं और न अलग होकर चैन से रह सकते हैं। इस प्रकार उनके मध्य सम्बन्ध अत्यन्त विचित्र एवं उलझावपूर्ण हैं, जिन्हें ब्रह्माजी सम्भवतः नहीं सुलझा सकते हैं। प्रस्तुत नाटक 'हयवदन' स्त्री-पुरुष के आधे-अधूरेपन की त्रासदी और उनके उलझावपूर्ण सम्बन्धों की अबूझ पहेली को लक्ष्य करके लिखा गया है। स्त्री-पुरुष के उलझावपूर्ण सम्बन्धों को देखने-दिखाने वाला यह नाटक कम से कम हिन्दी नाटक के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस नाटक की पूर्व परम्परा हमें संस्कृत साहित्य तथा अंग्रेजी साहित्य में प्राप्त होती है। संस्कृत की वेताल-पच्चीसी की सिरों और धड़ों की अदला-बदली की असमंजसभरी प्राचीन कथा तथा अंग्रेजी में टॉमस मान की ट्रांसपोज्ड हैड्स (Transposed Heads) की द्वन्द्व पूर्ण आधुनिक कहानी पर आधारित यह नाटक एक नए तेवर के साथ प्रस्तुत हुआ है। यह नाटक जिस तरह देवदत्त, पद्मिनी और कपिल के प्रेम-त्रिकोण के समानान्तर हयवदन के उपाख्यान को गणेश-वन्दना के बाद भागवत नट, अर्द्धपटी, अभिनय, मुखौटे, गुड्डे-गुड़ियों और गीत-संगीत के माध्यम से एक लचीले रंग-शिल्प में पेश करता है, वह भारतीय रंगमंच एवं रंग-कर्म की एक उल्लेखनीय उपलब्धि मानी जानी चाहिए। एक आलोचक के शब्दों में यह केवल कन्नड़ नाट्य-लेखन की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण आधुनिक भारतीय रंग-कर्म की उल्लेखनीय उपलब्धि कही जानी चाहिए। **जयदेव तनेजा** के शब्दों में, "देवदत्त, कपिल, कपिल-देही देवदत्त, देवदत्त-देही कपिल-चार-चार पुरुषों के होते हुए भी अतृप्त एवं अधूरी और सुहागिन होकर भी अभागिन रह जाने वाली पद्मिनी की इस नाट्य कथा में विलक्षण प्रसंग, रोचक चरित्र, जटिल सम्बन्ध तथा रोमांचक नाट्य मोड़ों के साथ-साथ दर्शन, मनोविज्ञान, हिंसा, हास्य, प्रेम और रहस्य के इतने और ऐसे अध्याय मौजूद हैं, जो प्रत्येक प्रतिभावान रंगकर्मी को हमेशा नयी चुनौतियों से चमत्कृत करते हैं। प्रासंगिक आकर्षक कथ्य और सम्मोहक शिल्प की प्रभावशाली संगति **हयवदन** (नाटक) की यह मूल विशेषता है, जो प्रत्येक सृजनधर्मी, रंगकर्मी और बुद्धिजीवी पालक को दुर्निवार शक्ति से अपनी ओर खींचती है। पुरुष की अपूर्णता (मनुष्य को अपूर्णता) को विभिन्न काल-खण्डों में रखकर लिखे गये अनेक नाटकों की परम्परा में 'हयवदन' नाटक भी एक कड़ी है। इस प्रकार के नाटकों में उल्लेखनीय नाटक है-आधे-अधूरे, द्रौपदी, सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक आदि। इन सभी नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को लेकर किसी-न-किसी सन्दर्भ में, बिन्दु या बिन्दुओं पर त्रिकोण बनते हैं। 'हयवदन' की कथा में मनुष्य के पूर्ण मनुष्य होने से आरम्भ होने पर-शरीर और मस्तिष्क, दोनों की श्रेष्ठता की कामना इस कला में प्रदर्शित की गई है।

'हयवदन' का उपकथा-प्रसंग मूल कथा से सिर और शरीर के विपर्यय की ओर क्रमशः हमें ले जाता है। देवदत्त, कपिल और पद्मिनी की कहानी आरम्भ होने से पहले 'हयवदन' द्वारा पूर्ण मनुष्य होने, पूर्णांग होना चाहने का दर्द हास्य बनकर आता है। समस्या विकसित होती है और स्थिति की वास्तविकता हमारे मन को जकड़ लेती है। ऐसी स्थिति में हास्य और संगीत अनुभवी पक्ष के लिए अनिवार्य अंग बनकर आता है। यह कहने को आवश्यकता नहीं है कि स्थिति की वास्तविकता को अनुभूति को तीव्र करने का कार्य संगति के द्वारा किया जाता है।

इस नाटक में हम दो तत्वों को देख सकते हैं - भागवत का चरित्र और अर्द्ध-पटी (हाफ कर्टन-Half-Curtain) ऐसे है जो यह भांति उत्पन्न कर देते हैं कि यह नाटक **यक्षगान** शैली में लिखा गया है, जबकि नाटककार के अनुसार

ऐसा कुछ नहीं है। इस नाटक को जो लोग यक्षगान शैली में लिखा गया नाटक मानते हैं उनको लक्ष्य करके निदेशक राजिन्दर नाथ ने लिखा है -जहाँ तक भागवत का प्रश्न है, वह सूत्रधार का एक और नाम है और सूत्रधार सिर्फ यक्षगान में ही नहीं बल्कि अन्य अनेक नाट्य-शैलियों में होता है। जहाँ तक **अर्द्ध-पटी** के इस्तेमाल की बात है, तो उसका प्रयोग यक्षगान की अपेक्षा **कथकली** में अधिक प्रभावशाली रूप में होता है। आगे चलकर राजिन्दर नाथ ने उन लोगों के प्रति कड़ी भाषा का प्रयोग किया है, जो 'हयवदन' को यक्षगान शैली में लिखा गया नाटक मानते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'हयवदन' न यक्षगान शैली में लिखा गया नाटक है और न वह एक ऐसा नाटक है जिसे कथकली के साथ जोड़ा जा सके।

पद्मिनी-देवदत्त, कपिल-देवदत्त की कहानी और हयवदन के उपाख्यान परस्पर जुड़े हुए होने चाहिए। कुछ समीक्षकों को ऐसा नहीं लगता। यानी उनके जुड़े होने के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इस विवाद या मतभेद को भी हयवदन नाटक की एक समस्या के रूप में देखते हैं।

13.9. कर्नाड के नाटकों में स्त्री-पुरुषों का संबंध

आधुनिक जीवन में स्त्री एवं पुरुष एक-दूसरे के प्रति भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। स्त्री पुरुष में अपनी आस्था खो बैठी है। उसे लगता है कि पुरुष ने न केवल उसे उसके अधिकारों से वंचित रखा है बल्कि उसे मानव होने का दर्जा तक नहीं दिया है। फिर चाहे वह पिता हो, पति हो, बेटा हो या भाई। समय के साथ-साथ स्त्री-पुरुष के प्रेम संबंधों में परिवर्तन आया है। वैवाहिक संबंधों के पौराणिक मूल्य टुटने लगे हैं। पति-परमेश्वर का दृष्टिकोण बदल गया है। पुरुष (पति) एवं स्त्री (पत्नी) के बीच विवाहेत्तर संबंध बढ़ने लगे हैं। भाई-बहन, माँ-बेटे, ससुर-बहू, पिता-पुत्री आदि के रिश्तों में अनेक बदलाव दृष्टिगोचर हुए हैं जिनको गिरीश कर्नाड अपने नाटकों की सहायता से दर्शकों के सामने रखते हैं। डॉ. जयदेव तनेजा के अनुसार 'इन संबंधों में भी सामान्य और साधारण की अपेक्षा निषिद्ध एवं वर्जित संबंधों और अगम्यागमन के असामान्य रिश्ते गिरीश को अधिक दिलचस्प और सम्मोहक लगते हैं।'

'ययाति' गिरीश कर्नाड का पहला पौराणिक नाटक है। यह नाटक महाभारत के एक प्रसंग पर आधारित है। ययाति एक शक्तिशाली राजा है जिसका विवाह देवयानी से होता है लेकिन शर्मिष्ठा से भी उनका रहस्य संबंध स्थापित हो जाता है। ययाति जीवन भर कामुकता के पीछे भागता रहता है। अपने बुढ़ापे से पुनः जवानी में आने के बाद भी वह यौन संबंधों से तृप्त नहीं होता। आधुनिक समाज में स्त्री एवं पुरुष में तनाव तथा संघर्ष पैदा होने का मूल कारण अपने दायित्वों से किनारा कर एक-दूसरे पर जिम्मेदारी आरोपित करना ही है। पति का यौवन नष्ट होने पर पुरु की पत्नी चित्रलेखा बहुत दुःखी होती है। वह अपने ससुर से कहती है कि यौवन के साथ-साथ उसे पुरु से संबंधित सब कुछ स्वीकारना पड़ेगा। यहाँ तक कि चित्रलेखा के शरीर को भी। साथ ही वह पूर्वजों के बनाए सभी नियमों को तोड़कर ययाति द्वारा स्वयं को पत्नी रूप में स्वीकार सुख प्रदान करने को कहती है- "चित्रलेखा (मुस्कुराकर) मैंने जब पुरुराज का वरण किया तब मुझे उनका परिचय नहीं था। मैंने वरण किया था, उनके तारूण्य को, मेरे गर्भ में चंद्रवंश की वृद्धि करने वाले पौरुष को। उन सबको आपने चूस लिया। अब उन्हें चलने के लिए भी सहारा चाहिए। आँखे दीये की रोशनी सहन नहीं कर सकती। मैंने जिन गुणों का वर्णन किया था अब एक भी उनमें नहीं है, पर वे सब गुण आपमें अब भी हैं।

वास्तव में, मनुष्य मात्र ही दुख और द्वन्द्व का वह कंकर है जिसमें निरंतर आर्त पुकार मची रहती है। चित्रलेखा एक आधुनिक स्त्री है जो समाज द्वारा नियमित नीतियों का विरोध करती है और मानती है कि व्यक्ति को अपने सुख की

परवाह करनी चाहिए। उसे पुर्वजों के नैतिक नियमों को धारण करना स्वीकार्य नहीं है। भारतीय समाज में ससुर- बहू के संबंध को निषिद्ध माना गया है। वह समाज द्वारा स्वीकार्य संबंध नहीं है गिरीश कर्नाड 'ययाति' में प्राचीन और नवीन मान्यताओं के मध्य स्त्री-पुरुष संबंधों में उभरे दुसरे द्वन्द्व का अभिव्यक्त करते हैं। ययाति नाटक के नारी पात्र कहीं पर भी अपनी परिस्थितियों के खिलाफ लड़ते हुए दिखाई नहीं देते सिवाय चित्रलेखा के। देवयानी एवं शर्मिष्ठा अपनी परिस्थितियों में बंदे हुए प्रतीत होते हैं। लेकिन नाटक में एक ऐसा संदर्भ भी आता है जहां चित्रलेखा स्त्री-समाज के लिए बोल उठती है और यहाँ स्त्रियों के प्रति गिरीश कर्नाड की चिंता और चेतना स्पष्ट हो जाती है। वे स्त्री शोषण का कारक पुरुष को ठहराते हैं। चित्रलेखा कहती है- 'चित्रलेखाः मुझे चिल्लाने से मना करने वाले आप कौन है? मेरे अंतःपुर में आकर चिल्ला क्यों रहे हैं? मैं आपकी बहु बनना नहीं चाहती थी, पर आपने बनाय, उसका कारण क्या है? आपकी बहू को विदूषी होना चाहिए। गृहकार्य में दक्ष होना चाहिए। यहीं है न? मैंने शास्त्रविद्या भी सीखी है। विद्या की ऐसी पुतली को घर लाकर उसके पाँव में सनातन श्रृंखला पहनाना आपका ही खेल है। मैंने भाइयों से यह भी सीखा है कि वन्य जंतुओं से घबराना नहीं चाहिए तो क्या आपसे डर जाऊँ?' इस कथन में जिस शास्त्रविद्या का जिक्र किया गया है वह आधुनिक समाज में स्त्री के शिक्षित होने से है। आज की स्त्रियाँ शिक्षा अर्जित कर रहीं हैं। उनको बहू या पत्नी बनाकर घर में बंद नहीं किया जा सकता। वह समझती हैं कि स्त्री को घर में बंद करना पुरुषों की ही साजिश है। इस प्रकार नाटककार यहाँ संबंधों के अंतर्द्वद्वों के मध्य स्त्री-मुक्ति की बात रखते हैं।

'हयवदन' नाटक लोक-कथा पर आधारित नाटक है, जो देवदत्त, पद्मिनी एवं कपिल के बीच के त्रिकोणीय प्रेम संबंधों एवं व्यक्ति-जीवन के अधुरेपन को व्यक्त करता है। नाटक का आरंभ ईश्वर के अपूर्ण होने के संदर्भ से होता है। हाथी के मस्तक एवं मनुष्य के शरीर से युक्त ईश्वर को पूर्ण रूप से अपूर्ण माना जाता है। न वे पूर्ण रूप से मनुष्य हैं और न ही पूर्ण रूप से जानवर। मनुष्य भी अपूर्ण है और वह अपने अंदर की इस अपूर्णता को दूर करने के लिए हमेशा पूर्णता की तलाश में भटकता रहता। स्त्री-पुरुष संबंधों पर केंद्रित यह नाटक मूल रूप से स्त्री एवं पुरुष के अधूरेपन की कथा कहता है।

इस नाटक के आरंभ में ही हयवदन भागवत के साथ दिखाई देता है। हयवदन का चेहरा घोड़े का है और शरीर मनुष्य का इस रूप में हयवदन मनुष्य की अपूर्णता का द्योतक है। गिरीश कर्नाड ने नाटक में यक्षगान शैली का प्रयोग करते हुए लोककथा के आधार पर आधुनिक स्त्री-पुरुष संबंधों की अपूर्णता को परखने की कोशिश की है।

मानव मन की चंचलता और द्वंद्वात्मकता को नाटककार कर्नाड ने यहाँ व्यक्त किया है। पुरुष किस प्रकार स्त्री के सौंदर्य पर अपना होश खो बैठता है। किस प्रकार कपिल पदिमनी के लिए देवदत्त का प्रेम प्रस्ताव लेकर आता है लेकिन वह स्वयं उस पर आकर्षित हो जाता है। यह एक अस्थिर मानव मन की पहचान है। जिससे स्त्री और पुरुष दोनों ही अछूते नहीं हैं।

पौराणिक लोककथा को आधुनिक संदर्भ में समेटकर स्त्री-पुरुष संबंधों को व्याख्यायित करता यह नाटक अपने आप में विशेष महत्व रखता है। नाटक में जहाँ देवदत्त को बुद्धि एवं कपिल को शरीर के रूप में संकल्पित किया गया है वहाँ पद्मिनी को पूर्णता के अन्वेषक के रूप में दर्शाया गया है। जयदेव तनेजा के अनुसार- 'कथ्य की दृष्टि से 'हयवदन' व्यक्ति के अधूरेपन की छटपटाहट और पूरेपन की तलाश (पद्मिनी), बुद्धि (देवदत्त) तथा देह (कपिल) के संघर्ष और स्त्री-पुरुष संबंधी पेचीदा गुत्थी को बेहद आकर्षक लोक-रंग में प्रस्तुत करता है।'

नाटक में इन तीनों के बीच के संबंधों की रोचकता तब और बढ़ जाती है जब देवदत्त और कपिल के सिर की अदला-बदली हो जाती है। कपिल का सिर देवदत्त के लग जाता है और देवदत्त का सिर कपिल के शरीर से लगा दिया जाता है। अब समस्या आती है कि पदिमनी किसके साथ जाए। इस पर तीनों में बहस होती है। एक स्त्री होने के नाते पुरुष की हर बात को स्वीकारना पद्मिनी के लिए आवश्यक है क्योंकि यही समाज में सालों से चलता आ रहा है। स्त्री का अपना कोई महत्त्व नहीं है।

पद्मिनी: (तत्परता से) चलो अब (विराम) ठहरो। (कपिल के पास जाकर) उदास मत हो, कपिल फिर मिलेंगे, है न? (दबी आवाज़ में) सुनो, देवदत्त के साथ जाना मेरा धर्म है। पर जा तो रही हूँ तुम्हारी ही देह के संग। इससे तुम्हें संतोष होना चाहिए। (देवदत्त के पास जाकर) अच्छा, कपिल, चलती हूँ। स्त्री के रूप में पद्मिनी द्वारा यह व्यक्त करना कि वह देवदत्त के साथ जा तो रही है लेकिन उसे अब भी चाह कपिल के शरीर के साथ रहने की ही है। स्त्री के बौद्धिक एवं भौतिक सुखों की कामना को अभिव्यक्त करता है। अंततः देवदत्त का शरीर शिथिल पड़ने लगता है। कपिल के शरीर पर देवदत्त के मस्तिष्क का प्रभाव पड़ना आरंभ हो गया है। लेकिन पद्मिनी को उस शरीर से लगाव हो जाता है। दैहिक इच्छाओं की पूर्ति उसे उसी शरीर से होती है। कपिल का भी शरीर पूर्व स्थिति में आ जाता है। पद्मिनी अब फिर से अपूर्ण हो जाती है। आधुनिक स्त्री एवं पुरुष की भी यही दशा है। आज विवाह संबंध का असफल होना एवं युवक-युवतियों में लिविंग टुगेदर के संबंध इसी कारण से बढ़ते जा रहे हैं।

पद्मिनी (स्त्री) अंत तक पूर्णता की खोज में रहती है। देवदत्त और कपिल पद्मिनी के लिए लड़कर जान दे देते हैं और अंत में उसे अकेला छोड़ जाते हैं। इस नाटक से यह स्पष्ट है कि स्त्री के बिना पुरुष का एवं पुरुष के बिना स्त्री को कोई अस्तित्व नहीं है। संपूर्णता की तलाश आज स्त्री-पुरुष में पूर्ण रूप से अपूर्ण के पर्याय बनकर रह गए हैं। डॉ. ओमप्रकाश शर्मा के अनुसार- 'परिपूर्णता की इस चाह का पूरा होना असंभव ही नहीं, अंततः असहनीय यातना और त्रास का कारण भी है। नाटक इसी चाह और उसकी यातना का अन्वेषण करता है। नाटक में एक अन्य आयाम शरीर और मन के द्वंद्व का भी है जिसमें दिखाया गया है कि शरीर चाहे जितना प्रबल हो अंततः मन के अनुसार ही ढ़लने लगता है। शरीर की अपनी अलग पीड़ा को पहचानने की कोशिश भी की गयी है। इस अंतर्कथा में आदमी के ऊपर व्यंग्य तो है ही, पूर्णता की चाह की परिणति का ट्रेजिक पहेली भी उभर आयी है।'

इस प्रकार कह सकते हैं कि गिरीश कर्नाड के नाटकों में स्त्री-पुरुष संबंधों की उस धरातल तक छान-बीन की गई हैं। जहाँ तक उनके समकालीन कन्नड़ नाटककार पहुँच नहीं पाए हैं। अपने नाटकों में वे समाज में निषिद्ध समाज में निषिद्ध एवं अवैध रूप से घोषित संबंधों की व्याख्या तथा पड़ताल करते नजर आते हैं। उन्होंने व्यक्ति स्वातंत्र्य को अपने नाटकों का मूल आधार बनाया है। आज प्रत्येक व्यक्ति फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अपने स्वत्व के अन्वेषण में लगे हुए हैं। वे अपूर्ण होने के चलते पूर्णता की खोज में भटक रहे हैं। गिरीश कर्नाड के नाटकों के सभी पात्र किसी न किसी रूप से इसी पूर्णता की और अग्रसर हैं लेकिन वे पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाते और यही जीवन कि विडंबना तथा संबंधों का अंतर्द्वंद्व अभिव्यक्ति पाता है। कर्नाड जी अपने नाटकों की सहायता से स्त्री-पुरुष के आंतरिक संघर्षों तनावों, अस्तित्व एवं उनसे संबंधित प्रश्नों तथा उनकी अस्मिता को पहचानने की सफल कोशिश करते हैं। इनके नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक एवं मिथकीय पात्रों पर आधारित होने पर भी आधुनिक स्त्री-पुरुष के प्रतिनिधित्व करते नजर

आते हैं। आधुनिक स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों एवं उनकी विडंबनाओं, जिस पर बात करना या विचार करना आज भी एक टेबू माना जाता है, को गिरीश कर्नाड परत-दर-परत उघाड़ते हैं और विश्लेषित करते हैं।

13.10. सारांश

सारांश के रूप में यह कह सकते हैं कि गिरीश कर्नाड भारतीय नाट्य जगत में पौराणिक एवं मिथकीय आयामों को आधार बनाकर आधुनिक स्त्री-पुरुष संबंधों का गहरा चित्रण अपने नाटकों में करते हैं। वर्तमान समय में स्त्री पुरुष संबंधों पर विचार करना अनिवार्य है। समाज में संतुलित अवस्था बनाए रखने के लिए स्त्री एवं पुरुष का समान रूप से आगे बढ़ना जरूरी है। आधुनिक समाज में पूर्णता की तलाश में भटकते हुए लोग अनेक प्रकार के अंतर्द्वंद्व एवं संघर्ष का सामना करते हैं। इन अंतर्द्वंद्वों के कारण स्त्री एवं पुरुष के संबंधों पर गहरा बदलाव आया है कर्नाड जी अपने नाटकों की सहायता से आधुनिक समाज के अंतर्द्वंद्व को व्यक्त करते हैं। अपने नाटकों में ऐतिहासिक पौराणिक एवं मिथकीय संदर्भों की सहायता से आधुनिक स्त्री पुरुष संबंधों की व्याख्या करते हैं। कर्नाड जी अपने नाटकों की सहायता से स्त्री पुरुष के आंतरिक संघर्षों, तनावों एवं यौन संबंधों की विडंबनाओं को प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत आलेख में उनके नाटक ययाति और हयवदन की सहायता से मिथकीय एवं लोक कथा के आधार पर आधुनिक स्त्री पुरुष संबंधों की व्याख्या का अध्ययन करने का प्रयास किया है पर है।

13.11. बोध प्रश्न

1. गिरीश कर्नाड- जीवन परिचय और कार्यक्षेत्रों के बारे में लिखिए।

2. हयवदन नाटक के पात्र और नाटक का परिचय दीजिए।

3. गिरीश कर्नाड के नाटकों में स्त्री-पुरुषों के संबंधों का विश्लेषण कीजिए।

13.12. सहायक ग्रंथ

1. आधुनिक भारतीय रंगलोक, जयदेव तनेजा।
2. ययाति, गिरिश कर्नाड, अनुवादक बी. आर. नारायण।
3. हयवदन, गिरिश कर्नाड, अनुवादक- बी.वी. कारंत।
4. स्वातंत्र्तोत्तर हिन्दी रंगमंच, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा।

*****

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

14. हयवदन नाटक का कथावस्तु

14.0. उद्देश्य

गिरीश कर्नाड (जन्म: 19 मई, 1938) एक जाने माने कवि, रंगमंच कर्मी, लेखक, नाटककार, फ़िल्म निर्देशक और फ़िल्म अभिनेता हैं। गिरीश कर्नाड को 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1998 में ज्ञानपीठ पुरस्कार के अलावा पद्म श्री भूषण से सम्मानित किया जा चुका है। उन्होंने हिन्दी में उत्सव, मंथन, इक़बाल, डोर जैसी फ़िल्मों में काम किया। इस पाठ में कर्नाड का हयवदन नाटक के पात्र का चरित्र-चित्रण के बारे में विस्तार रूप से जानेंगे। इस इकाई में हयवदन नाटक का कथा वस्तु के बताना ही इस पाठ का मुख्य उद्देश्य है।

रूपरेखा

14.1.प्रस्तावना

14.2. हयवदन-कथावस्तु

14.3. नर और नारी की अपूर्णता

14.4. सारांश

14.5. बोध प्रश्न

14.6. सहायक ग्रंथ

14.1. प्रस्तावना

इस पाठ को पढ़ने के बाद हम हयवदन नाटक को पूरी तरह से जान सकते हैं। पिछले इकाई में रचनाकार हयवदन नाटक की ओर किस प्रकार अग्रसर हुआ है यह जान पाए है और उसके साथ-साथ रचनाकार के कृति का महत्व के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। हयवदन नाटक का मुख्य कथावस्तु को सोदाहरण रूप में जानेंगे।

14.2. नाटक का कथावस्तु

'हयवदन' संस्कृत के 'वेताल पच्चीसी' तथा अंग्रेजी के 'ट्रांसपोज्ड हैड्स' की परम्परा के अन्तर्गत आने वाली एक महत्वपूर्ण रचना है। इसे स्त्री-पुरुष के आधे-अधूरेपन की त्रासदी को और उनके उलझावपूर्ण सम्बन्धों की अबूझ पहेली को लक्ष्य करके लिखा गया है। इस नाटक में संपूर्णता की अन्तहीन तलाश को असह्य यातनापूर्ण परिणति तथा बुद्धि और देह के सनातन-संघर्ष के परिणाम पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। 'वेताल-पच्चीसी' में सिरों और धड़ों की अदला-बदली की असमंजस भरी कथा और टॉमस मान की 'ट्रांसपोज्ड हैड्स' (Transposed Heads) की द्वन्दपूर्ण आधुनिक कहानी द्वारा यह नाटक बहुत ही गम्भीर रूप में प्रभावित हुआ है। इस नाटक में देवदत्त, पद्मिनी और कपिल के प्रेम-त्रिकोण और हयवदन का उपाख्यान समानान्तर चलते हैं। इस नाटक में कुली पात्र हैं- 6 पुरुष पात्र भागवत, देवदत्त, कपिल,हयवदन, नट -1, नट-2 तथा 3 नारी पात्र- पद्मिनी, गुड़िया और गुड़िया-1 और गुड़िया-2।

➢ पूर्वार्द्ध

नाटक की कथावस्तु का सारांश-गणेश-मुख के सम्मुख गणेश-वन्दना से नाटक का आरम्भ होता है। पूजा के उपरान्त गणेश-मुख की भीतर ले जाया जाता है। नाटक के सूत्रधार के रूप में भागवत अपना कथन करता है। वह अपूर्मआंग के रूप में गणेशजी का वर्णन भी करता है और विघ्न-नाशक विश्वेश्वर गजवदन (गणेशजी) को महिमा का वर्णन भी करता है। साथ ही वह यह प्रश्न भी उछाल देता है कि अपूर्णांग गणेशजी किस अपूर्णता के प्रति संकेत करते हैं। यह भी प्रश्न प्रस्तुत करता है कि अपूर्णांग प्रभु को विघ्नहर्ता कहने का कारण क्या हो सकता है। दोनों प्रश्नों के उत्तर के प्रति इंगित करते हुए भागवत मानव की सहज दुर्बलता की और भी प्रेक्षकों एवं पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहता है-प्रभु की पूर्णता की कल्पना करना अपूर्ण मनुष्य के लिए असम्भव है। इतनी भूमिका के उपरान्त भागवत नाटक का प्रारम्भ करता है- यह है धर्मपुरी नामक नगर जिसके राज है- धर्मशील।

नाटक के नायक युगल हैं -देवदत्त और कपिल। देवदत्त ब्राह्मण है और कपिल लोहार है। नेपथ्य से सुनाई देने वाली चीख कुछ क्षणों के लिए भागवत को विचलित कर देती है। परन्तु वह शीघ्र ही व्यवस्थित हो जाता है और अपने प्रवचन में लग जाता है। भागवत की मंडली गाने लगती है। नट भागता हुआ आता है। यह भय से काँपता यह भागवत का आश्रय लेना चाहता है और भागवत उसको अपवित्र समझकर उससे दूर हटता है। साथ ही नट से उसके भय का कारण जानना चाहता है। नट बताता है कि उसने सड़क के किनारे दीर्घ शंका का प्रयास किया। इतने में ही एक घोड़े ने जिल्लाकर कहा- सड़क पर गंदगी क्यों करते हो।

भागवत नट से कहता है- या तो नेपथ्य में जाकर नाटक के लिए तैयार हो जा अन्यथा भाग जा। नट एक भी कार्य न करके मंच पर खड़ा हो जाता है। इतने में ही दूसरा नट भी आता है। वह भी प्रथम नट की भाँति व्यथित एवं भयभीत है।

नट दूसरी दिशा में भाग जाता है। पटी लाई जाती है। उसके पीछे हयवदन खड़ा हो जाता है। पटी क्रमशः नीचे आती है। हयवदन क्रमशः रोता है और पटी के पीछे मुंह छिपा लेता है। भागवत बारम्बार हयवदन से पूछता है- किस पाप के कारण शापवश इस योनि को प्राप्त हुए हो। हयवदन भागवत के कथन के प्रति विरोध प्रकट करता है। भागवत और हयवदन के मध्य वार्तालाप चलता है।

हयवदन बताता है कि कर्नाटक की राजकुमारी सफेद घोड़े पर सवार सौराष्ट्र के राजकुमार पर मोहित हो गई। होश में आने पर राजकुमारी बोली- मैं तो उस सफेद घोड़े से ही विवाह करूंगी। राजकुमार ने हंगामा किया। अंततः राजकुमारी का विवाह उस घोड़े के साथ हो गया। मैं उसी का बेटा हूँ। 15 वर्ष बाद यकायक घोड़ा गायब हो गया और उसके स्थान पर एक यक्ष खड़ा था। 15 वर्ष तक मनुष्य का प्रेम पाकर कह शापमुक्त हो गया था। यक्ष-रूप मेरे पिता ने माता से अपने साथ इन्द्रपुरी चलने को कहा तो माँ ने कहा- मैं तब चलूंगी, जब तुम घोड़ा बन जाओगे। इस पर पिता ने उसको आजन्म घोड़ी बन जाने का शाप दिया। वह घोड़ी बन गई। मैं अकेला रह गया-आधा घोड़ा, आधा मनुष्य।

हयवदन भागवत से पूछता है कि घोड़े के दुःख से पिण्ड क्योंकर छूटे। हयवदन दुखी होकर माथा पीटते हुए कहता है- मैं पूर्ण मनुष्य बनना चाहता हूँ। कैसे बनूँ? मैंने कोई पाप तो किया नहीं है। भागवत से बात करते हुए हयवदन कहता है कि केवल तिरुपति को छोड़कर हिन्दुओं के तीर्थों और मुसलमानों के मकबरों आदि सब जगह मनौती माँग आया हूँ, परन्तु कोई सुनवाई नहीं। भागवत हयवदन से कहता है कि चित्रकूट को महाकाली के दर्शन करो। हयवदन के कहने से नट हयवदन के साथ चल देता है।

भागवत एक कहानी कहता है- दो मित्र एक लड़की पर मोहित हो गये। उन्होंने अपने तन उतार फेंके। दोनों के सिर लड़की ने उठा लिये वह रक्त में नहा गई। वह नाचती गाती रही। हल्के रंग का मुखौटा लगाए देवदत्त आकर कुर्सी पर बैठ जाता है। कपिल गहरे रंग का मुखौटा लगाए आता है। कपिल और देवदत्त में बातें होती है। कपिल का कहना है कि देवदत्त की कृपा से वह मनुष्य बना है।

देवदत्त के कहने से कपिल वहाँ से चल देता है। कपिल उसको रोककर कुर्सी पर बैठता है। दोनों किसी लड़की की सुन्दरता के बारे में बातें करते हैं। देवदत्त दुःखी है कि वह सुन्दरी स्वप्न में भी उसका वर्ण नहीं करेगी। लड़की के लिए देवदत्त अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार है। सुन्दरी के अभाव में वह कालिदास की कोटि का कवि नहीं बन सकेगा।

देवदत्त बताता है कि वह सुन्दरी पावन वीथी में रहती है। द्वार खटखटाने पर उसने हाथ उठाया। उसके हाथ का स्पर्श कर उसके द्वार की चौखट पर खुदे दो सिर वाला पक्षी मानो जीवित हो उठा। देवदत्त द्वारा रोकने पर भी कपिल उस लड़की का पता लगाने चल देता है। दो सिर वाले पक्षी को चौखट पर खुदा हुआ देखकर कपिल द्वार खटखटाता है। एक अनिंद्य सुन्दरी द्वार खोलती है। वह पूछती है किससे काम है? लेकिन कपिल मौन रहता है। कपिल के मुँह से देवदत्त का नाम सुनकर वह लड़की (पद्मिनी) हाय भैया कहकर अंदर भाग जाती है। कपिल-पद्मिनी का विवाह हो जाता है। छः माह बीत जाते हैं। पद्मिनी कपिल की प्रतीक्षा में व्यस्त है। पद्मिनी गर्भवती है। देवदत्त चाहता है कि वह पूरी सावधानी से गर्भ की रक्षा करे। कपिल को लक्ष्य करके देवदत्त और पद्मिनी बातें करते हैं। पद्मिनी बार-बार कपिल का नाम लेती है। देवदत्त को यह अच्छा नहीं लगता।

देवदत्त पद्मिनी के साथ एकांत की कल्पना करता है। इतने में ही कपिल आ जाता है। थोड़ी देर बातें करने के बाद में कपिल जाने लगता है। पद्मिनी आकर उसे रोक लेती है। सब लोग बैलगाड़ी में बैठकर उज्जैन की यात्रा पर चल देते हैं। गाड़ी रोककर कपिल सुहाग का फूल लेने चल देता है। इसके सुगठित शरीर पर पद्मिनी मोहित होती है। कपिल के प्रति पद्मिनी के आकर्षण को देवदत्त भाँप लेता है, परन्तु भावनाओं को दाब वह चुप रहता है। कपिल ढेर सारे फूल लेकर आता है और फूल का नाम सुहाग होने की काव्यरूपी व्याख्या करता है। कपिल और पद्मिनी काली के मन्दिर की ओर चल देते हैं। देवदत्त वहीं रुक जाता है। देवदत्त काली के मन्दिर पर पहुँच जाता है। कपिल को देवदत्त की याद आती है। क्या ही अच्छा होता कि वह भी प्रकृति की इस शोभा को देख लेता। कपिल भी वहाँ चला जाता है। अकेले-पन से पीछा छुड़ाने के लिए पद्मिनी तलवार द्वारा आत्महत्या का प्रयत्न करती है। देवी की आवाज होती है तलवार फेंककर पद्मिनी माँ काली के चरणों में लिपट जाती है। कपिल व देवदत्त दोनों ने अपने सिर काटकर देवी की भेंट कर दिये हैं। देवी की आज्ञानुसार पद्मिनी दोनों सिरों (यानी मुखौटों) को धड़ पर लगाती है, पर वे बदल जाते हैं। दोनों जीवित हो जाते हैं। देवदत्त की आवाज सुनकर पद्मिनी प्रसन्न होती है।

सिरों की अदला-बदली से पद्मिनी दुखी है। कपिल व देवदत्त हँसने लगते हैं। पद्मिनी भी हँसने लगती है। वे उज्जैन न जाकर घर जाने का निश्चय करते हैं। कपिल पद्मिनी को ले जाना चाहता है, क्योंकि देवदत्त का शरीर उसको प्राप्त है और पद्मिनी देवदत्त की पत्नी है। देवदत्त कहता है, देवदत्त मैं हूँ। कपिल और देवदत्त में विवाद चल पड़ता है। व्यक्ति की पहचान चेहरा है। अतः देवदत्त (मस्तकधारी देवदत्त) ही पद्मिनी का पति है। उधर कपिल का चेहरा देवदत्त के शरीर का स्वामी है-जिस शरीर के साथ पद्मिनी का विवाह हुआ था। यह समस्या क्योंकर सुलझे? बस यहीं पर नाटक के पूर्वार्द्ध का अन्त हो जाता है।

➢ उत्तरार्द्ध

तीनों जड़वत खड़े हैं। इनके भाग्य की पहेली क्योंकर सुलझेगी ?

सहसा उनमें चेतना आ जाती है। देवदत्त और पद्मिनी एक ओर चले जाते हैं। उदास कपिल दूसरी ओर। भागवत की घोषणुनसार देवदत्त व पद्मिनी धर्मपुरी जाकर दाम्पत्य सुख भोगते हैं और कपिल जंगल को राह पकड़ लेता है। उज्जैन के मेले से लाई हुई गुड़ियों को सम्भालकर रखती हुई पद्मिनी दिखाई देती है। दोनों गुड़ियाँ बातें करती हैं। पद्मिनी अपने बेटे को गोद में लिए दिखाई देती है। पद्मिनी लोरी गाकर बच्चे को सुलाती है। देवदत्त भी आ जाता है। वे दोनों भी सो जाते हैं। दोनों गुड़ियाँ आपस में बातें करती हुई उनकी मानसिक स्थिति का वर्णन करती हैं।

देवदत्त का शरीर देखकर पद्मिनी को कपिल की याद आती है। देवदत्त पद्मिनी से एक पंडितजी के लिए नाश्ते का प्रबंध करने को कहता है। पद्मिनी अपनी नौकरानी का कथन दोहराती हुई कहती है-कपिल की माता का देहान्त हो गया।

देवदत्त से पद्मिनी कहती है- चलो उज्जैन चलें। वहाँ से नई गुड़ियाँ लायें। इनसे मैं परेशान हूँ। दोनों चल देते हैं।

थोड़ी देर बाद नाटक के शुरू वाला कपिल आता। बच्चे को गोद में लिए पद्मिनी आती है। कपिल व पद्मिनी दोनों आश्चर्य से एक-दूसरे को देखते हैं। वे बातें करने लगते हैं। पद्मिनी बच्चे को दिखाती है। फिर कपिल के घर में सुलाकर बाहर आ जाती है। कपिल ने श्रम करके देवदत्त के शरीर को कपिल का शरीर बना दिया है। इसे वह अपनी जीत मानता है। कपिल से पद्मिनी कहती है---मैं तुम्हें देखने आई हूँ। कपिल कहता है-तुम जाओ। यहाँ अपना जाल मत फैलाओ।

पद्मिनी कहती है – जब तक बच्चा सोता रहे, मुझे यहाँ बैठा रहने दीजिए। तब तक मैं आपको देखती रहूँगी। गलती मेरी है। मैंने ही सिरों की अदला-बदली की। मैं दो शरीरों की अर्धांगिनी बनी। मैं सब तरह हार गई हूँ।

कपिल भी अनुभव करता है कि पद्मिनी के स्पर्श से उसके शरीर में प्राणवत सिहरन आ गई है। दोनों परस्पर सटे हुए भीतर चले जाते हैं। देवदत्त आता है और भागवत से कपिल के मकान का पता पूछता है। तब तक पद्मिनी को आए 4-5 दिन बीत चुके होते हैं। कपिल और पद्मिनी बाहर आते हैं। देवदत्त से बातें होती हैं। बातचीत में प्रकट होता है कि वे दोनों पद्मिनी को चाहते हैं। दोनों तलवारें लेकर लड़ने लगते हैं। दोनों मर जाते हैं। पद्मिनी दोनों गुड़ियों को लिए दोनों के शवों के मध्य बैठ जाती है। पद्मिनी भागवत से कहती है-मेरे बेटे को शिकारियों को सौंप देना और उनसे कह देना कि जब वह पाँच वर्ष का हो जाए, तब उसे विप्रोत्तम विद्यासागर को सौंप देंगे। इन दोनों के साथ मेरी चिता बना दो।

बच्चे को देने के लिए गुड़ियाँ भागवत को सौंपती है। उसकी चिता जलने लगती है। नट को एक घोड़ा मिलता है-वह राष्ट्रगान गाता है। बच्चा नट की गोद में है। भागवत उससे बच्चे के बारे पूछता है।

नट कहता है कि एक शिकारी की स्त्री ने यह कहते हुए मुझे दिया है- यह शिकारी की संतान नहीं, धर्मपुरी का बालक है। वहाँ इसे विप्रोत्तम विद्यासागर के पास पहुँचा देना। उस बालक के कंधे के तिल को देखकर भागवत कहता

है-यह पद्मिनी का बेटा है। हयवदन (घोड़ा) आ जाता है। भागवत व हयवदन प्रसन्नतापूर्वक गाते-नाचते हैं। बच्चा भी उनके साथ हो जाता है।

हयवदन पिछली बातें बताता है। देवी की कृपा से अब वह पूरा घोड़ा बन गया है। पूरा घोड़ा बनने में बड़ा सुख है। बस एक मुसीबत शेष है। आदमी की आवाज ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा है। गला साफ करने के लिए, आदमी की आवाज से पीछा छुड़ाने के लिए ही मैं राष्ट्रगीत गाता हूँ। भागवत बच्चे को हयवदन की पीठ पर बैठा देता है बच्चा गाता है। गीत में वेदना है। हयवदन को यह बात अच्छी नहीं लगती है। बच्चे को तो हँसी शोभा देती है। आँसुओं में डूबी भावुकता ने ही हमारे साहित्य और राष्ट्रीय जीवन को भ्रष्ट कर दिया है।

बच्चा आग्रह करता है कि हयवदन हँसे। हँसने की चेष्टा में उसकी आवाज घोड़े की हिनहिनाहट में बदल जाती है। हयवदन खुशी से उछलने लगता है। इस तरह हयवदन आखिरकार पूर्णांग हो जाता है। भागवत नट से कहता है- जाकर विप्रोत्तम विद्यासागरजी से कह दो कि तुम्हारा दिग्विजयी पौत्र एक बड़े सफेद घोड़े पर सवार होकर शीघ्र ही उनके सम्मुख उपस्थित होने वाला है।

भागवत कहता है गणेशजी ने सब की मनोकामना पूरी की-दादा को पोता मिला, पोते को हँसी मिली और घोड़े को हिनहिनाहट मिली। हयवदन आता है, बच्चे को उतारा जाना है, चिता की रंगपटी हटने पर कपिल, देवदत्त तथा पद्मिनी भी आगे आते हैं। सब एक पंक्ति में खड़े होकर मंगलगीत गाते हैं-

बरसा दे दे परम कृपामय

जग-भर में धन-धान्य सम्पदा,

और बढ़े साहित्य-लोक में

काव्य-शास्त्र का अविरत धंधा।

अब के राजा जन-साधारण

काम-काज में सदा सफल हों,

प्रजा-राज्य के शासक जन में

अब विवेक का ही संबल हो।

इस गाने के साथ ही नाटक 'हयवदन' का उत्तरार्द्ध समाप्त हो जाता है।

14.3.नर और नारी की अपूर्णता

हिन्दू धर्मशास्त्रों में अवतार-वाद का क्रम मत्स्यावतार से आरम्भ होता है। उसके अन्तर्गत अवतारी का सिर क्रमशः ऊपर को उठता जाता है- मत्स्य, कच्छप, शूकर, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, नृसिंहावतार जीव का सिर सीधा हो जाता है, परन्तु वह पशुवत बना रहता है। वामनावतार में मानव-रूप का विकास क्रम चलता है.. ..आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि सिर ऊँचा या सीधा रहना मनुष्य की मुख्य पहचान है। यही उसके स्वाभिमान एवं सम्मान का लक्षण है। सिर नीचा होने पर मनुष्य अपने स्तर से नीचे गिरा हुआ माना जाता है।

ऊँचे या सीधे सिर का स्वामी या धनी होने के कारण ही मनुष्य को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। तभी तो कहा गया है 'बड़े भाग मानुष तन पावा।' मानव के आगे देवत्व की, ईश्वरत्व की, ब्रह्मत्व की परिकल्पना चलती है। इस प्रकार विकास का क्रम जारी है और अनन्त काल तक जारी रहेगा, जब तक विश्व का प्रत्येक कण ब्रह्मत्व को प्राप्त न हो जाए। यही क्रम अनन्त काल से चला आ रहा है। न मालूम कितने कल्प, मनवान्तर युग आदि व्यतीत हो चुके हैं। नाटक समीक्षक **रामगोपाल बजाज** के वक्तव्य के इस वाक्य पर इसी दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए "प्रकृति में जीव-क्रम के सम्पूर्ण विकास की सर्वोत्तम उपलब्धि इकाई मानव है वह भी अपूर्ण यह त्रासदी बड़ी दंशकारी है।" इस नाटक की मुख्य कथा के तीन पात्र हैं- कपिल, देवदत्त और पद्मिनी नाटक में इनके प्रेम-सम्बन्धों को लेकर एक त्रिकोण बनता है और उसकी परिणति त्रासदी में होती है। देवदत्त और कपिल परस्पर युद्ध करके मृत्यु को प्राप्त होते हैं और पद्मिनी उन दोनों के शवों के मध्य बैठकर सती हो जाती है। पद्मिनी एक ऐसे पुरुष की इच्छा करती है, जिसको शरीर तो कपिल का प्राप्त हो और मुखड़ा या बुद्धि देवदत्त की हो। देवदत्त और कपिल दोनों के सिरों की अदला-बदली की प्रक्रिया में देवदत्त को कपिल का शरीर प्राप्त हो जाता है, परन्तु उसमें शीघ्र ही शैथिल्य आने लगता है।

यूनान के विचारक अफलातून (प्लेटो) के एक संवाद के अनुसार नर-नारी आरम्भ में जुड़वां थे। किसी समय वे अलग हो गये। तब से वे निरन्तर अभिन्न होने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। नारी-पुरुष का परस्पर आकर्षण इसका प्रमाण है। जो भी हो-जीवन के समस्त क्रिया-कलापों के पीछे नारी दिखाई देती है, कहीं निर्माण, कहाँ विघटन। 'हयवदन' नाटक में देवदत्त और कपिल अभिन्न, अनन्य मित्र दिखाए गए हैं। परन्तु उनके जीवन में पद्मिनी का आगमन खटास पैदा कर देता है, क्योंकि वे दोनों उसको चाहते हैं। अन्ततः सिर शत्रु बन जाते हैं और परस्पर युद्ध करके वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

नाटक के अंतिम चरण में नियताप्ति की कार्यावस्था में दोनों मित्रों-कपिल और देवदत्त का वार्तालाप समग्र स्थिति को मानव की पूर्णता के प्रति छटपटाहट को और नारी के प्रति दुर्दमनीय आकर्षण को स्पष्ट कर देता है। देवदत्त की अनुपस्थिति में पद्मिनी कपिल के साथ चली जाती है। देवदत्त पद्मिनी की खोज में कपिल के गाँव पहुँचता है। पद्मिनी कपिल के प्रति आकर्षित है। इसकी गंध उसे बहुत पहले मिल चुकी होती है। भागवत से जब उसको यह विदित होता है कि पद्मिनी को आए हुए चार-पाँच दिन हो गए हैं, तो उसको कुछ आश्चर्य होता है- "मुझे- एक मर्द को भी- रास्ता कठिन लगा। पर वह कितनी जल्दी आ पहुँची, गोद में एक बच्चा होने पर भी।" भागवत के कथनानुसार देवदत्त नायिका के खून का प्यासा था। जो भी हो, देवदत्त, कपिल के घर पहुँचता है। देवदत्त के हाथ में तलवार देखकर कपिल चौक पड़ता है-यह क्या है हाथ में।"

प्रश्न का उत्तर न देकर देवदत्त कहता है-गुड़ियाँ हैं, बेटे के लिए मेले से लाया। पद्मिनी आगे बढ़कर गुड़ियाँ ले लेती है और उन्हें अपने वक्ष से चिपका लेती है। 'गाँव से आते समय देवदत्त कपिल के खून का प्यासा था, परन्तु कुछ समय पश्चात् ही उसका आवेग कम हो जाता है- "लेकिन यह क्या? अब तक वह कपिल के खून का प्यासा था। अब एकाएक नरम क्यों पड़ गया ?" कपिल द्वारा आराम करने के आग्रह को अस्वीकार करते हुए देवदत्त यह भी स्वीकार कर लेता है कि, "पहले नाराज था, अब नहीं मेरे शरीर ने तुम्हें बहुत कष्ट दिया।" अब दोनों मित्र पूर्णता की आकांक्षा को अभिव्यक्ति करते हैं। कपिल कहता है- 'याद है, मैं तुम्हारी कविता पर, तुम्हारी कल्पना-शक्ति पर मुग्ध था। मेरे लिए पेड़ का मतलब पेड़, आकाश का अर्थ आकाश ही था। तुम्हारे दिए शरीर ने नयी चेतना दी, नये शब्द दिये। ऐसी

चेतना मैंने पहले कभी अनुभव नहीं की थी। मैंने सहसा एक-दो कविताएँ भी घसीट डालीं। बेशक निकम्मी ही हैं। कभी-कभी मुझे उस सबसे घृणा होती है जो तुम्हारे शरीर ने मुझे दिया था।"

ध्यातव्य है – कपिल, देवदत्त का शरीर नहीं, उसका भावुक हृदय (मन) चाहता था। वह न मिल सकने पर वह निराश है। देवदत्त के शरीर का उपयोग बहुत सीमित है।

देवदत्त अपनी पूर्णता को आकांक्षा को इन शब्दों द्वारा व्यक्त करता है- 'मैं तुम्हारा बल चाहता था, तुम्हारा जंगलीपन नहीं। तुम घृणा में जिए और मैं भय में।' द्रष्टव्य है कि देवदत्त जंगलीपन के प्रति सदैव सवाक् रहा। अतः उसे अत्यधिक सावधानी बरतनी पड़ी कपिल का कहना है कि मैं तो भय में नहीं जिया, देवदत्त प्रश्न करता है-'यह बताओ इस अदला-बदली में, हेरा-फेरी में कौन हारा?' इसी के साथ वह एक अन्य प्रश्न करता है-'तुम सचमुच पद्मिनी को चाहते हो ?' कपिल का उत्तर 'हाँ' सुनकर देवदत्त कहता है-'और मैं भी।' कपिल कहता है- "जानता हूँ, देवदत्त....तथा हम तीनों इकट्ठे नहीं रह सकते ?' द्रोपदी और पांडवों की तरह?' देवदत्त और पद्मिनी को चुप देखकर कपिल हँसकर कहता है-'नहीं हो सकता'। देवदत्त तलवार दिखाते हुए कहता है-'इसलिए यह लाया हूँ। जो अपने आप नहीं मिटता, उसे काट डालना होगा।

देवदत्त के कहने से कपिल जाता है और तलवार लेकर आ जाता है। दोनों स्वीकार करते हैं-'हम दोनों को मरना होगा।' दोनों के मध्य द्वन्द-युद्ध होता है और दोनों वीर-गति को प्राप्त हो जाते हैं। यह है नाटक की चरमावस्था। पद्मिनी के सती होने की सूचना भागवत देता है।

इस नाटक की उपकथा हयवदन से सम्बन्धित है। नाटक के प्रथम चरण में भागवत नट संख्या-1 व 2 से वार्ता करता है। इसी बीच नट हयवदन को देख लेता है। इसके बाद रंग-पटी के पीछे से अत्यन्त नाटकीय ढंग से हयवदन (घोड़ा) प्रकट होता है घोड़े का चेहरा, मनुष्य का शरीर यह है हयवदन। वह जनता के सामने आने में कुछ झिझकता है। वह सिसकता हुआ दिखाई देता है। हयवदन के मनुष्य के चेहरे को भागवत मुखौटा समझता है। वह पहले तो हयवदन से आग्रहपूर्वक कहता है कि तुम मुखौटा उतार दो। जब वह ऐसा नहीं करता है, तब भागवत और नट उसको उतारने का प्रयत्न करते हैं। धीरे-धीरे भागवत समझ जाता है कि यह मुखौटा न होकर उसका असली चेहरा है। भागवत बार-बार कहता है-तुम कौन हो भैया? परन्तु हयवदन चुपचाप खड़ा रहता है; किन्तु जब भागवत इस प्रकार के प्रश्न करता है कि तुम किस पाप के कारण, किस ऋषि के शाप के कारण इस अवस्था को प्राप्त हुए हो तथा तुम्हारा नाम क्या है? तब हयवदन कुछ वेदना का अनुभव करता हुआ कहता है- "ह-य-व-द-न।"

यह चेहरा जन्म से पाया। हयवदन यह भी कहता है कि बस इच्छा थी कि किसी तरह इस घोड़े के मुँह से पीछा छूटे। भागवत द्वारा तरह-तरह से आग्रह करने पर हयवदन बताता है कि-कर्नाटक की राजकुमारी ने स्वयंवर में सौराष्ट्र के राजकुमार का वरण किया। राजकुमार सफेद घोड़े पर सवार था। राजकुमारी उस राजकुमार पर इस सीमा तक रीझ गई थी कि बेहोश हो गई। होश में आने पर उसने कहा- मैं तो इस सफेद घोड़े से ही ब्याह करूंगी। अतः राजकुमारी का विवाह घोड़े के साथ हुआ। 15 वर्ष तक उनका वैवाहिक जीवन सुखपूर्वक चलता रहा। 15 वर्ष तक मनुष्य के साथ रहने पर शाप की अवधि समाप्त हुई और घोड़े के स्थान पर एक सुन्दर यक्ष-कुमार प्रकट हो गया। इन्द्र-पुरी को जाते समय उसने मेरी माँ से भी कहा कि मेरे साथ चलो। माँ ने उत्तर दिया, घोड़े का ही रूप धरोगे, तब चलूँगी। पिता ने शाप दे दिया- "जा, तू हमेशा के लिए घोड़ी बन जा।" ..... "माँ घोड़ी बन गई- मैं अकेला बच गया। उनके अटपटे संयोग से उपजा पूत- आधा घोड़ा, आधा मनुष्य।"

हयवदन भागवत से अपने उद्धार का उपाय पूछता है। भागवत सुझाव देते हैं कि, "तुम चित्रकूट की महाकाली जी की पूजा करो। " भागवत महाकाली (चित्रकूट) का पूरा पता, रास्ता बताते हैं और हयवदन वहाँ जाने को तैयार हो जाता है। हयवदन नट के साथ रवाना होता है। बस यहीं से कपिल और देवदत्त वाली मुख्य कथा आरम्भ होती है। उपकथा एवं मुख्य कथा का यह संगम- स्थल वस्तुतः नाटक की आरम्भिक कार्यावस्था मानी जानी चाहिए। पावन वीथी में देवदत्त एक लड़की पर रीझ जाता है। वह कपिल से उसके सौन्दर्य का वर्णन करता है। लड़की का नाम, पता आदि देवदत्त को नहीं मालूम, लेकिन कपिल फिर भी उसको खोजने चल देता है। यहाँ से नाटक की प्रारम्भावस्था का आरम्भ होता है। कपिल, देवदत्त और पद्मिनी की कथा तब तक चलती है, जब तक कपिल देवदत्त एवं पद्मिनी स्वर्गवासी होते हैं और पद्मिनी का बेटा रह जाता है। पद्मिनी की अंतिम इच्छा के अनुसार उसके बेटे को भागवत शिकारियों को सौंप देता है। यह कहकर कि यह कपिल का बेटा है। पाँच वर्ष बाद इसको धर्मपुरी के विप्रोत्तम विद्यासागर के पास पहुँचा देना और यह कहकर उन्हें इसे सौंप देना कि 'यह देवदत्त का पुत्र है।'

तीनों के स्वार्गारोहण के उपरांत 'जन-मन-गण.....' का गायन करता हुआ घोड़ा प्रकट होता है -वही हमारा परिचित हयवदन।

हयवदन अपनी पीठ पर उस बालक को चढ़ाकर रंगमंच की परिक्रमा करता है। गाने के साथ हयवदन हँसता भी जाता है। इसकी हँसी धीरे-धीरे हिनहिनाहट में बदल जाती है। हयवदन खुशी से उछल पड़ता है। वह बालक को धीरे से जमीन पर लिटाकर चारों ओर नाचने लगता है, उसके पीछे-पीछे आया एक सवार गीत गाता हुआ दौड़ता है। इस तरह आखिरकार हयवदन पूर्ण हो जाता है। भागवत नटों से कहता है-'तुम दोनों विप्रोत्तम विद्यासागर के पास जाओ और उन्हें समाचार दो कि उनका दिग्विजयी पौत्र एक बड़े सफेद घोड़े पर सवार होकर आपके सम्मुख उपस्थित होने वाला है।'

अब नट नंबर-2 में भागवत कहता है-'फेंक दो इन गुड़ियों को, इनकी अब कोई जरूरत नहीं है।' इसके उपरांत भागवत स्वगत-कथन करता है। यह नाटक को अन्तिम अर्थात पाँचवीं अवस्था है- फलारामावस्था।

अंततः यह कह सकते हैं कि नाटक को मुख्य कथा और गौण कथा पृथक होते हुए भी परस्पर पूरक हैं और एक-दूसरे से सम्बद्ध दिखाई देती है। परम्परानुसार नाटक के अंकों में विभाजित न होने पर भी कथावस्तु में क्रमशः चाढ़ाव एवं उतार द्रष्टव्य है। कार्यावस्थाओं में उसका उपयुक्त विभाजन सर्वथा सफलतापूर्वक किया गया है। पाँचों कार्यावस्थाओं **आरम्भ, प्रयत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति** और **फलागम** के स्थल स्पष्ट- रूप से दृष्टव्य हैं। उपर्युक्त विवेचन में इनकी ओर इंगित किया जा चुका है।

सारांश रूप में यह कह सकते हैं कि- 'हयवदन' नाटक की कथा सर्वथा उचित एवं मनोवैज्ञानिक ढंग पर विकास को प्राप्त होकर फलागम की ओर अग्रसर होती है। यह नाटक न सुखांत है, न दुखांत प्रसादांत है।

14.4. सारांश

यह नाटक मानव जीवन के बुनियादी अंतर्विरोधों, संकटों और दबावों-तनावों को अत्यन्त नाटकीय एवं कल्पनाशील रूप में अभिव्यक्त करता है। प्रासंगिक-आकर्षक कथ्य और सम्मोहक शिल्प की प्रभावशाली संगति ही हयवदन की वह मूल विशेषता है जो प्रत्येक सृजन धर्मी और रंगकर्मी और बुद्धिजीवी पाठक को दुर्निवार शक्ति से अपनी ओर खींचती है।

'हयवदन' नाटक में कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से नाटककार ने जो प्रयोग किए हैं, पहला प्रयोग है शिरों की अदला-बदली का जो प्राचीन परीकथाओं या बैतालपचीसी की कहानियों की तरह आज के युग में अविश्वसनीय प्रतीत होता है किंतु इस परिवर्तन से लेखक ने जो वैचारिक परिवर्तन दिखाया है, वह विश्वसनीय है। लेखक ने इसके माध्यम से देवदत्त, कपिल और पद्मिनी के प्रेम-त्रिकोण को हयवदन की समान्तर कथा के साथ जोड़ दिया है। इस प्रकार मनुष्य की पूर्णता की कथा में शरीर और मस्तिष्क के मध्य झूलती है। देवदत्त की विद्वत्ता से प्रभावित है पर कपिल की देहायष्टि के प्रति आकर्षित। बुद्धि और शरीर की अलग-अलग माँग है। दोनों को एक साथ प्राप्त करना चाहती है पद्मिनी, पर एक समय में एक ही मिल पाता है उसे। अंतः वह अधूरी रह जाती है। यही स्थिति देवदत्त और कपिल की भी है। इससे सिद्ध होता है कि इस जीव-सृष्टि में जब मनुष्य अपूर्ण है तो अन्य प्राणियों की क्या स्थिति होगी जिनका प्रतीक हयवदन है।

14.5. बोध प्रश्न

1. हयवदन नाटक का कथावस्तु का परिचय दीजिए ।

2. हयवदन नाटक में नर और नारी की अपूर्णता को स्पष्ट कीजिए।

14.6. सहायक ग्रंथ

1. आधुनिक भारतीय रंगलोक, जयदेव तनेजा।
2. ययाति, गिरीश कर्नाड, अनुवादक बी. आर. नारायण।
3. हयवदन, गिरीश कर्नाड, अनुवादक- बी. वी. कारंत।
4. स्वातंत्र्तोत्तर हिन्दी रंगमंच, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

15. हयवदन नाटक पात्रों का चरित्र चित्रण

(देवदत्त, कपिल और पद्मिनी)

15.0. उद्देश्य

पिछले इकाइयों में हम हयवदन नाटक-पृष्ठभूमि और हयवदन नाटक-कथावस्तु के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हयवदन नाटक में कथावस्तु के साथ नर और नारी के अपूर्ण के कारणों को समझेंगे उसके साथ-साथ हयवदन नाटक के पात्रों में खासकर तीन पात्रों के बारे में विस्तृत जानकारी देना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

रूपरेखा

15.1.प्रस्तावना

15.2. देवदत्त का चरित्र चित्रण

15.3. कपिल का चरित्र चित्रण

15.4. पद्मिनी का चरित्र चित्रण

15.5. सारांश

15.6. बोध प्रश्न

15.7. सहायक ग्रंथ

15.1. प्रस्तावना

हयवदन नाटक पढ़ते समय हमारे नजरों के सामने कई पात्र आते हैं उन पात्रों में से हम मुख्यतः तीन पात्रों के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे। देवदत्त, कपिल और पद्मिनी के पात्रों के बारे में जानेंगे। इस नाटक में पात्र एक से पात्र दो, पात्र दो से पात्र तीन, पात्र तीन से पात्र एक, इनके बीच में किस प्रकार संबंध थे, यह संदिग्ध सवालों को इस इकाई में सोदाहरण रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

15.2. देवदत्त का चरित्र चित्रण

देवदत्त, उसके अभिन्न मित्र कपिल तथा देवदत्त की पत्नी एवं कपिल की प्रेमिका पद्मिनी तीनों के त्रिकोण के चारों ओर इस कथा का ताना-बाना बुना गया है। कथा इस प्रकार चलती है कि देवदत्त और कपिल के सिरों की अदला-बदली हो जाती है। नाटक के अंतिम चरण में देवदत्त कपिल से कहता है-'मैं तुम्हारा बल चाहता था, तुम्हारा जंगलीपन नहीं। तुम घृणा में जिए, और मैं भय में .....।'

देवदत्त का यह कथन स्पष्टतः इंगित करता है कि वह पूर्ण मनुष्य बनना चाहता था, परन्तु बन नहीं सका। उसकी कपिल का बलिष्ठ शरीर तो प्राप्त हुआ, परन्तु जंगलीपन लिए हुए, जो काव्योचित कोमलता के लिए पयुक्त नहीं था।

देवदत्त विप्रोत्तम विद्यासागर का पुत्र है। वह स्वयं प्रकांड पंडित है, विख्यात काव्य-रसिक है, कामदेव से भी अधिक सुन्दर एवं बृहस्पति के समान बुद्धिमान अथवा मेधावी.....।

पद्मिनी को देवदत्त का परिचय देते हुए कपिल कहता है- 'तो फिर उनके एकमात्र सुपुत्र देवदत्त को भी जानती होंगी। पिता से भी बढ़कर पंडित, महाकवि काव्य शास्त्र-विनोद में पूर्ण पारंगत, सज्जन, गुणवान, स्नेहशील, सुकुमार। लंबे केशस्वी, मुख, अवस्था बीस वर्ष ऊँचाई सड़सठ अंगुल...।' इसके साथ कपिल यह कहना भी नहीं भूलता है कि "देवदत्त संसार में मेरा सबसे पक्का मित्र है...।"

पद्मिनी की बिजली-जैसी तेजी को देखकर कपिल सोचने लगता है कि मेरा सुकुमार देवदत्त इस बिजली-सी तड़प वाली लड़की को पत्नी-रूप में क्योंकर झेल पाएगा? कारण- "इसे झेलने के लिए लौह-पुरुष चाहिए- और तुम ठीक इसके विपरीत, तुम तो सुकुमार हो, तुम्हारा चित्त भी सुकोमल है -एक कड़ी बात, एक कड़ा शब्द तुम सह नहीं पाते.....।" देवदत्त-सदृश सर्वगुण-सम्पन्न युवक यदि नारियों के आकर्षण के केन्द्र हो, तो यह सर्वथा स्वाभाविक है। ऐसे अप्रतिम युवक को कौन पिता अपनी बेटी देकर अपना जामाता न बनाना चाहेगा? कपिल का यह कथन प्रमाण है- "तुम्हारे लिए तो धर्मपुरी को हर कन्या के माता-पिता, आँखों के पाँवड़े बिछाए, तुम्हारी स्वीकृति की प्रतीक्षा में है।" और वस्तुतः होता भी यही है- पद्मिनी बात की बात में देवदत्त की पत्नी बन जाती है।

यहाँ यह बताना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि देवदत्त काव्य-रसिक होने के साथ काम-रसिक भी है। वह नित्य नयी लड़की को अपने प्रेम-जाल में फँसाता हुआ देखा जाता है। देवदत्त से कपिल पूछता है- "इस बार कौन-सी लड़की है...?" पिछले दो बरसों में कम-से-कम पन्द्रह लड़कियों पर तुम्हारा मन डोलते मैंने देखा है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि पद्मिनी के प्रति देवदत्त की आसक्ति गहन कोटि की है और सम्भवतः वह वासना से आगे की कोटि है। देवदत्त कहता है- "(उन पन्द्रह लड़कियों की) इससे कोई बराबरी नहीं। वे सब तो इसके आगे जैसे.....।" देवदत्त की दृष्टि में पद्मिनी उसके जीवन की सर्वस्व बन सकती है, उसके विकास की प्रेरणा और सूत्रधार बन सकती है। उसके लिए देवदत्त क्या नहीं कर सकता है। वास्तव में पद्मिनी के अभाव में देवदत्त का जीवन अंधकारमय हो गया है। वह कई खण्डों में अपनी मनोव्यथा कपिल के प्रति इस प्रकार व्यक्त करता है- "कपिल, वह बस मेरी कविता की प्रेरणा बनना स्वीकार कर ले, तो मैं कालिदास से भी श्रेष्ठ काव्य रच डालूँ।" .....

उसके सामने हुए बिना श्रेष्ठ काव्य की रचना कैसे करूँ? मन को कविता पर कैसे एकाग्र करूँ, जबकि मेरा रोम-रोम उसके ध्यान में डूबा हुआ है, उसी के लिए तड़प रहा है।..... "कपिल, तुम्हारी सौगंध में प्रतिज्ञा करता हूँ यदि कभी वह रूपरत्न मुझे मिला, तो मैं महाकाली के चरणों में अपनी दोनों भुजाएँ, भगवान् रुद्र के आगे अपना मस्तक समर्पित करूंगा।"

पूर्वराग में आकंठ -निमग्न देवदत्त ने पावन वीथी में पद्मिनी के दर्शन किए थे और प्रथम दर्शन में ही वह पद्मिनी के आगे अपना सर्वस्व हार गया था। अब तो उसके सामने एक ही चारा है "बस, पावन वीथी में खड़े-खड़े तपस्या करना ही मेरे भाग्य में है।" पावन वीथी और वहाँ पद्मिनी के दर्शन को लक्ष्य करके कपिल लड़की का नाम-पता पूछता है। देवदत्त जो कुछ उत्तर स्वरूप कहता है, उसमें देवदत्त के प्रथम आवेग का परिचय मिल जाता है, "कल संध्या को पावन वीथी में मैंने उसको देखा था। नजर हटाते नहीं बनी और उसके पीछे-पीछे उसके पर तक चला गया। .....वहीं एक घर के भीतर वह ओझल हो गई। मैं वहीं बाहर साँझ तक खड़ा रहा, पर वह फिर नहीं आई। " देवदत्त की तन और मन की कोमलता ने उसे किसी सीमा तक असहिष्णु बना दिया है। कपिल के अनुसार देवदत्त बात पीछे चिढ़ता है

। देवदत्त ऊपर से कुछ भी कहे, कपिल के प्रति कितना भी निर्मम दिखाई दे, परन्तु वास्तव में वह कपिल का सच्चा आत्मीय एवं मित्र है। वह कपिल से यहाँ तक कह बैठता है- "जा, चला जा अपनी भट्ठी पर। वहाँ है तेरी जगह। परन्तु जब कपिल सचमुच जाने लगता है, तो देवदत्त उसको रोकते हुए कहता है- "नहीं, बैठो।" उधर कपिल भी देवदत्त का परम हितैषी मित्र है। वह देवदत्त के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकता है-"तुम कहो तो मैं कुएँ में कूद जाऊँ, आग पर चलूँ। तुमसे बड़ा मेरे लिए कोई नहीं। कहो तो अपने माता-पिता को भी तुम पर न्यौछावर कर दूँ।"

इस संदर्भ में यह बताना कदापि अप्रासंगिक नहीं होगा कि पद्मिनी भी सम्भवतः प्रथम दर्शन में देवदत्त के प्रति आकर्षित हो गई थी। उसको आशा थी कि देवदत्त उसके पीछे-पीछे अवश्य आएगा। कपिल द्वारा द्वार खटखटाये जाने को वह देवदत्त का कृत्य समझती है। तभी तो वह यह गाती हुई द्वार खोलती है-

आयो रे आयो पाहुना सवार,

न जाने किस देश का है सरदार।

जीवन में पद्मिनी के समावेश के बाद देवदत्त की दृष्टि एकदम बदल जाती है-विशेषकर पद्मिनी के गर्भिणी हो जाने की स्थिति में। अब देवदत्त गृहस्थी के मोह-जाल में पड़ता हुआ दिखाई देता है। वह पद्मिनी के स्वास्थ्य के प्रति इतना अधिक चिंतित दिखाई देने लगता है कि पद्मिनी को देवदत्त का व्यवहार किसी सीमा तक अस्वाभाविक प्रतीत होने लगता है। यात्रा के पूर्व देवदत्त पद्मिनी के गर्भ को लेकर बहुत दिखाई देता है। पद्मिनी का यह कथन देवदत्त की मानसिक स्थिति को स्पष्टतः उजागर कर देता है- "आज तुम्हें हुआ क्या है। तुम तो पुस्तकों में ऐसे डूब जाते थे कि भोजन के बाद हाथ धोने का भी ध्यान नहीं रहता था और आज सबेरे से रट लगाए हो कि वह हुआ या नहीं, यह हुआ या नहीं। ..... तुम बिना बात चिंता करते हो। क्या दूसरी कोई स्त्री कभी इस संसार में गर्भवती नहीं हुई? इतने डरते हो – मैं जरा भी हिली-डुली नहीं कि बस तुम्हें लगता है कि आसमान फट पड़ा। सब खत्म.....।

देवदत्त 'आसमान फट पड़ा' शब्दों के प्रयोग में अपनी पद्मिनी और गर्भस्थ शिशु के अमंगल की आशंका करने लग जाता है- "राम-राम ऐसी बात मत कहो।" कहने का तात्पर्य यह है कि भावुक देवदत्त का कवि-पति एवं पिता देवदत्त के सम्मुख पराजित होता हुआ दिखाई देता है। पद्मिनी कपिल के आने की प्रतीक्षा जिस उत्सुकता बेचैनी के साथ करती है, उससे देवदत्त के मन में संदेश का अंकुर जमने लगता है। वह नहीं चाहता है कि कपिल के साथ यात्रा की जाए। वह बहुत ही सावधानी के साथ अपने मन की बात कह देता है- "मैं तो यही चाहूँगा। कपिल से ईर्ष्या के कारण नहीं- मुझे कपिल से रत्ती- भर भी ईर्षा नहीं। उसका मन तो सोने का है, लेकिन तुम अभी पहली बार गर्भवती हुई हो।" यात्रा स्थगित होने की खुशी को देवदत्त छिपा नहीं पाता है, क्योंकि आज पहली बार वह पद्मिनी के साथ अकेला होगा।

कपिल के आने पर पद्मिनी बात बदल देती है और वे तीनों उज्जैन की यात्रा पर चल देते हैं। कपिल के प्रति पद्मिनी के बढ़ते हुए आकर्षण को देवदत्त मनोवैज्ञानिक विवशता के रूप में देखता है। "कपिल को देखकर देवदत्त कहता है- पद्मिनी का भी क्या दोष है? कपिल का शरीर ही इतना आकर्षक है।.....। आदि।" काफी विवाद के बाद कपिल और पद्मिनी महाकाली के दर्शनार्थ चले जाते हैं। देवदत्त के मन का संदेह उभरकर ऊपर आ जाता है- "जाओ पद्मिनी, जाओ कपिल ! भगवान् रुद्र का आशीर्वाद तुम दोनों पर रहे। **तुम दोनों मेरे हृदय के दो टुकड़े हो**- एक होकर रहो -उसी में मुझे शांति मिलेगी.....। " उनकी आँखों से ओझल हो जाने के बाद देवदत्त महाकाली के मन्दिर की ओर चल देता है। वहाँ पहुँचकर उसे सहसा याद आता है जब उसने प्रण किया था कि यदि पद्मिनी को पा

सका तो अपनी भुजाएँ और मस्तक बलिदान कर दूँगा। इतने में ही उसको वहाँ एक तलवार पड़ी हुई दिखाई देती है। उससे वह अपना मस्तक (सिर) धड़ से अलग कर देता है।

कपिल और पद्मिनी जब लौटकर आते हैं तो देवदत्त को न पाकर कपिल विशेष चिंतित होता है-पद्मिनी के अनुसार देवदत्त पूर्णतः स्वस्थ होंगे। कपिल देवदत्त को खोजने के लिए जंगल की ओर चल देता है और महाकाली के मन्दिर में पहुँच जाता है, वहाँ देवदत्त के शव को पड़ा हुआ देखकर कपिल दुःखी होता है और अपना सिर पीट लेता है। अंधेरा घिरते देखकर पद्मिनी भी दोनों की खोज में चल देती है और काली के मंदिर में पहुँच जाती है। अँधेरे में वह शव के पाँवों से टकराती है और वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर विलाप करते हुए वहाँ पड़ी हुई तलवार को उठा लेती है। तलवार उठाकर पद्मिनी निराशा में निमग्न होकर अपनी जीवन-लीला समाप्त करना चाहती है। तभी चमत्कारिक ढंग से देवी (महाकाली) उसको ऐसा करने से रोक देती हैं और दोनों के कटे हुए सिरों को उनके शरीर पर लगाने का आदेश देती है।

देवी माँ की आज्ञानुसार पद्मिनी दोनों के सिर लगा देती है। दोनों जीवित हो उठते हैं, परन्तु उनके सिरों को अदला-बदली हो जाती है। पद्मिनी कसकी पत्नी हो, इस पर दोनों में विवाद होता है। अन्ततः ये तीनों विवाद के निर्णय हेतु एक त्रिकालदर्शी ऋषि के पास जाते हैं। त्रिकालदर्शी ऋषि निर्णय देते हुए कहते हैं-"जिस प्रकार वृक्षों में कल्पवृक्ष श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार अंगों में मस्तक श्रेष्ठ है और इसीलिए देवदत्त का मस्तिष्क (मस्तक) जिसके पास है, वहाँ देवदत्त है और वही पद्मिनी का सच्चा स्वामी है।" इस उत्तर को सुनकर कपिल (जिसका शरीर देवदत्त का और मस्तक कपिल का है) जंगल की ओर चला जाता है।

इस प्रकार पद्मिनी उस व्यक्ति की पत्नी बनती है जिसका सिर देवदत्त का और शरीर कपिल का है। देवदत्त को पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है और वह उसमें लिप्त हो जाता है। कुछ समयोपरान्त जब देवदत्त घर से बाहर चला जाता है, तब उसकी अनुपस्थिति में पद्मिनी अपने बेटे को लेकर कपिल के घर पहुँच जाती है। देवदत्त जब घर लौटता और यहाँ पद्मिनी को नहीं पाता है, तो सीधा कपिल के पर पहुँचता है, वहाँ पद्मिनी भी अपने बेटे के साथ उपस्थित थी। देवदत्त कपिल से प्रश्न करता -'' एक बात बताओ। तुम सचमुच पद्मिनी को चाहते हो।" कपिल का उत्तर 'हाँ' सुनकर देवदत्त कहता है- और मैं भी। कपिल प्रस्ताव करता है- "क्या हम तीनों एक साथ नहीं रह सकते? द्रौपदी और पाण्डवों की तरह?" देवदत्त और पद्मिनी इसका कोई उत्तर नहीं देते। देवदत्त के अंतिम शब्द बताते हैं कि दोनों ने- देवदत्त और कपिल ने एक दूसरे को क्षमा कर दिया है- "इसीलिए आज दया-करुणा कोई जगह नहीं, न स्नेह की, न मित्रता की। बस जूझना है शेरों की तरह मरना है साँपों की तरह।" देवदत्त कपिल का जंगलीपनरहित बलशाली शरीर चाहता था और कपिल देवदत्त की बुद्धि चाहता था- परन्तु उसको देवदत्त का केवल शरीर मिला। दोनों पूर्ण मानव बनना चाहते थे, परन्तु ऐसा नहीं हो सका। देवदत्त तन और मन के अनेक गुणों से विभूषित है- परन्तु कामासक्ति से युक्त नहीं हो पाता है। सम्भवतः इसी कारण वह इतनी मानसिक वेदना भोगता है और अन्ततः साँपों की तरह भरता है और मारता है।

15.3. कपिल का चरित्र-चित्रण

रंगमंच पर कपिल का प्रथम परिचय एक बलिष्ठ व्यक्ति के रूप में होता है। वह एक पहलवान के रूप में प्रसिद्ध भी है। इतना ही नहीं, वह कुश्ती के अनेक दाँव-पेंच भी जानता है। गांधार देश के एक मल्ल के साथ थोड़ी देर तक कपिल की कुश्ती भी होती है। मल्ल कपिल के बल-विक्रम से प्रभावित भी होता है। अखाड़े पर अपनी

उपस्थिति का वर्णन करते हुए कपिल देवदत्त से कहता है, "मल्ल, गांधार देश का मल्ल कहते है, दक्षिण की दिग्विजय के लिए निकला है। .....उस समय मैं और नंद कुश्ती लड़ रहे थे। परदेशी मल्ल बैठा देख रहा था। मैंने ज्यों ही नंद को मगरमच्छी पेंच डाल नीचे पछाड़ा तो परदेशी मल्ल खुशी से उछलकर बोला, 'वाह बहादुर' और उसने मुझे चुनौती दी।" xxx वह कुछ देर मुझसे कुश्ती लड़ा। फिर पीठ ठोंककर बोला-'शाब्बाश'।

उक्त बातें वह अपने परम मित्र देवदत्त से कहता है। इसके साथ देवदत्त के साथ उसको प्रगाढ़ एवं अन्तरंग, मित्रता का परिचय हमको मिलने लगता है। वह अत्यन्त अनौपचारिक रूप से देवदत्त से पूछता है- "इस बार कौन-सी लड़की फँसाई है। ..... अरे बताओ न शरमाते क्यों हो? ..... पिछले दो वर्षों में कम-से-कम पन्द्रह लड़कियों पर तुम्हारा मन डोलते मैंने देखा है.....।" इसी अवसर पर हमें यह भी पता चल जाता है कि कपिल के भीतर किसी-न-किसी रूप में कवि झांकता रहता है। देवदत्त जैसे ही पावन वीथी में देखी हुई लड़की के बारे में आह भरकर उससे कहता है- "वे सब तो इसके आगे..... कपिल तत्काल वाक्य को पूरा करते हुए कह देता है" चाँद के आगे तारे हैं, जगमगाते दीपक के सामने टिमटिमाते जुगनू है।"

इसी सन्दर्भ में कपिल के बारे में यह तथ्य भी सामने आ जाता है कि वह देवदत्त का एक ऐसा मित्र है जो उसके नाम पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकता है, "तुम कहो तो मैं कुएं में कूद जाऊँ, आग पर चलूँ, तुमसे बड़ा मेरे लिए कोई नहीं। कहो तो अपने माता-पिता को भी तुम पर न्यौछावर कर दूँ।" पद्मिनी के संदर्भ में जब देवदत्त एक प्रकार को हीनता से पीड़ित होता है और कहता है कि उस अनिन्द्या सुंदरी को प्राप्त करना मेरे लिए असम्भव है, तब सच्चे मित्र की तरह वह देवदत्त का उत्साह-वर्धन करता है, "तुम विप्रोत्तम विद्यासागर के सुपुत्र, प्रकांड पंडित, विख्यात काव्य-रसिक कामदेव- से रूपवान बृहस्पति से ....." तुम्हारे लिए तो धर्मपुरी की हर कन्या के माता-पिता जामाता बनाने का सुख-स्वप्न देखते रहते हैं।

उसका मित्र देवदत्त पावन वीथी की जिस कन्या पर रीझता है, उसका नाम-पता आदि जाने बिना ही कपिल उसको खोजने के लिए निकल पड़ता है और अन्ततः उसको खोज ही नहीं लेता, अपितु उसके साथ देवदत्त का विवाह भी करा देता है। देवदत्त लड़की के बारे में कपिल को यह बताता है, "उसके घर के द्वार की चौखट पर दो सिर वाला पक्षी खुदा हुआ था।" कपिल में गजब का आत्मविश्वास दिखाई देता है। देवदत्त जब उस सुन्दरी के विषय में अपनी विवशता प्रकट करता है, तब कपिल कहता है- "इस काम के लिए न दुर्गा चाहिए, न रुद्र, मैं अकेला ही काफी हूँ।" कपिल निराश होने वाला व्यक्ति नहीं है। वह अपने मन्तव्य को सफल बनाने के लिए वीथी में प्रत्येक घर के द्वार को अत्यन्त बारीकी से देखता है- यही है, मेरी आँखों से छूट ही जाता। कितनी बारीकी से खुदा हुआ है। आँखें फोड़ो तो दिखे शायद ....."

पद्मिनी से गृहस्वामी का नाम-पता जानने का नाटक करते हुए यह बड़ी चतुराई के साथ अपना मन्तव्य प्रकट कर देता है। एक निष्णात दूत की भाँति यह नायक के गुण-वर्णन द्वारा नायिका के मन में नायक के प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है- वह विप्रोत्तम विद्यासागर का एकमात्र सुपुत्र, पिता से भी बढ़कर पंडित, महाकवि, काव्यशास्त्र में पूर्ण पारंगत, सज्जन, गुणवान, स्नेहशील, सुकुमार, लम्बे केश, तेजस्वी मुख, अवस्था बीस वर्ष, ऊँचाई सड़सट अंगुल। " काव्यशास्त्र में इंगित नायक के समस्त गुणों से विभूषित देवदत्त का अपने को संसार में सबसे बड़ा मित्र बताकर वह कहता है- "लेकिन अब मुख्य प्रश्न यह है कि मेरा मित्र आपका कौन होगा ?" पद्मिनी कपिल के शब्दों का इशारा समझ जाती है और वह लज्जा से लाल होकर भाग जाती है। कपिल इस स्थल पर कामशास्त्र के प्रति अपनी जानकारी

प्रकट कर देता है- "देवदत्त सुकुमार है, यह लड़की एकदम बिजली है। इसे झेलने के लिए लौह पुरुष चाहिए। देवदत्त इसे नहीं झेल पायेगा।" इस अवसर पर हमें प्रसिद्ध कामशास्त्रज्ञ हैवलोक एलिस का यह कथन याद आ जाता है- "A woman wants a husband, not a toy to play with" स्त्री को खसम (ताकतवर पति) चाहिए, न कि खेलने के लिए एक खिलौना। बेचारा देवदत्त सुकुमार खिलौना है। परन्तु फिर भी कपिल मित्र की खातिर लड़की के पीछे-पीछे उसके घर में चला जाता है और अन्ततः पूरा काम करके, विवाह की बात पक्की करके ही वापस आता है। राम-सीता के साथ लक्ष्मण का पद प्राप्त करता है कपिल।

अब सब लोग उज्जैन की यात्रा की तैयारी करते हुए देखे जाते हैं और इसी के साथ कपिल के प्रति पद्मिनी का आकर्षण उजागर होने लगता है। पति-पत्नी के रूप में देवदत्त और पद्मिनी रंगमंच पर पहली बार प्रकट होते हैं। उसी समय कपिल के प्रति पद्मिनी के लगाव की भनक उसे मिल जाती है। वह कपिल की प्रतीक्षा में बार-बार खिड़की से झाँकती है और कहती है- "बड़ी देर लगाता है यह कपिल, देखो, यह अभी तक नहीं आया।" देवदत्त को पद्मिनी का यह व्यवहार स्वभावतः अच्छा नहीं लगता और "दिन भर बस कपिल, कपिल, कपिल।" पद्मिनी पूछती है- ऐसा क्यों कहते हो। देवदत्त एक अन्य घटना की ओर इंगित करके स्पष्ट कर देता है कि उसे कपिल की अधिक उपस्थिति रुचिकर नहीं लगती। बातचीत के मध्य देवदत्त यहाँ तक कह देता है कि, जब तुम कपिल की रट लगाती हो, तो मेरी साँस बन्द हो जाती है।

पद्मिनी कपिल के प्रति अत्यधिक अनुरक्त होते हुए कहती है कि, "तुम्हारी इस कोमलता के साथ भगवान-जाने कैसे दिन करेंगे।" कपिल के प्रति पद्मिनी का लगाव अब देवदत्त को खलने लगता है सम्भवतः उसको नजर में यह सब अप्रत्याशित है- "इसके पहले कपिल कभी लजाता नहीं था, लेकिन पद्मिनी को देखते हो पूँछ हिलाने लगता है। ऐसे बैठकर पद्मिनी का मुँह ताकता रहता है कि उसके मुँह से कोई शब्द धरती पर न गिर जाए। उसकी आँखों में तैरती यह लालसा क्या सचमुच इसे नहीं दिखती ?" देवदत्त और पद्मिनी में इसी संदर्भ में बातें हो रही हैं कि कपिल आ जाता है। देवदत्त नहीं चाहता है कि यात्रा की जाये, क्योंकि यात्रा में कपिल और पद्मिनी को अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी। कपिल को यह प्रस्ताव अर्थात् यात्रा स्थगित करने का प्रस्ताव रुचिकर नहीं लगता। वह मन ही मन कहता है कि यात्रा के आठ दिन मानी किसी ने मुझे छीन लिए। यह कालावधि मानो व्यर्थ हो गई। इसी के साथ उसका अन्तःकरण उसे सावधान करता हुआ कहता है कि तू किधर जा रहा है- "कपिल, कपिल, संभल जा, फिसल रहा है तू- अपने को बस में रख, पकड़ ढीली न होने पाए।" आठ दिन तक देवदत्त व पद्मिनी की ओर न आने का निर्णय करते हुए वह वहाँ से जाने को तैयार हो जाता है- "तो मैं चला।"

परन्तु पद्मिनी कपिल को रोककर यात्रा पर चलने की बात फिर करने लगती है और विवश होकर देवदत्त को उसकी बात मानकर कपिल को साथ लेकर यात्रा करनी पड़ती है। रास्ते में थोड़ा विश्राम हेतु गाड़ी रुकती है। पद्मिनी के कहने से कपिल सुहाग के ढेर सारे फूल ले आता है। पद्मिनी द्वारा प्रश्न करने पर कपिल फूल के सुहाग नाम की अर्थात् सुहाग के फूल नाम की सार्थकता पर प्रकाश डालता है। उसके द्वारा की जाने वाली यह व्याख्या स्पष्ट करती है कि कपिल का कवित्व जाग्रत हो गया है, उसकी बाह्य कठोरता के पीछे की कोमल भावुकता झाँक रही है। पद्मिनी के प्रति आकर्षण अथवा आसक्ति ने उसके व्यक्तित्व को यह स्वरूप प्रदान कर दिया है यथा-"यह देखो पंखुरियाँ के तल में एक बड़ा लाल घेरा -जैसी तुम्हारी सिंदूर की बिन्दी और यहाँ- जहाँ पराग फूटा है वहाँ, मांग में भरी सिंदूरी रेखा। देख लो और डंठल के पास में काली-काली बिंदियाँ- जैसे तुम्हारे मंगल-सूत्र की काली-काली मणियाँ।"

कपिल और पद्मिनी रुद्र-मन्दिर की ओर भगवान रुद्रदेव के दर्शनार्थ चले जाते हैं। देवदत्त वहीं सामान के पास बैठा रहता है, कपिल और पद्मिनी को लक्ष्य करके देवदत्त अपने आप से कहता है-"जाओ, कपिल जाओ पद्मिनी। ..... तुम दोनों मेरे हृदय के दो टुकड़े हो-एक होकर रहो....आदि।" कहने का तात्पर्य यह है कि इस अवसर पर पद्मिनी और कपिल का प्रेम-वासनात्मक लगाव- सर्वथा उजागर हो जाता है। यह बताने कि आवश्यकता नहीं कि प्रथम दर्शन में हो कपिल पद्मिनी के प्रति आकर्षित दिखाया गया है। कपिल पद्मिनी की खोज में आया था, क्योंकि देवदत्त उसका वरण करना चाहता था। इस कारण अपने मन को वश में रखना कपिल के लिए उचित भी था और सम्भव भी था। पद्मिनी को द्वार खोलते हुए देखकर कपिल सर्वथा अभिभूत एवं अवाक रह जाता है। पद्मिनी का यह कथन बेसुध कपिल को मानो झकझोरकर होश में ला देता है - "आपने द्वार खटखटाये। ऐसे मूरत बने क्यों खड़े हो ?"

पद्मिनी को देखते ही कपिल में जो भाव आये थे, वे इस प्रकार हैं-"मान गया, देवदत्त, मान गया। समझता था अपनी मंडली में रंभा सजने वाली रागिनी से श्रेष्ठ सुन्दरी इस संसार में है ही नहीं, पर यह इसे यक्षिणी कहूँ, इंदुमति कहूँ, ऊर्वशी कहूँ-सब एक साथ.....।" इस घटना के बाद पद्मिनी जब प्रथम बार रंगमंच पर आती है, तब वह गर्भवती दिखाई देती है। नाटक के अंतिम चरण में पद्मिनी कपिल से कहती है-"यह बच्चा तुम्हारी देह का प्रसाद है।" इस कथन से स्पष्ट है कि आँखें मिलने के साथ ही कपिल और पद्मिनी एक-दूसरे के शारीरिक रूप से भी अत्यन्त निकट आ गये थे।

एक बात ध्यातव्य है कि कपिल को सांस्कृतिक इतिहास का अच्छा ज्ञान है। विश्राम हेतु गाड़ी रुकने पर कपिल देवदत्त और पद्मिनी को बताता है कि, "उधर देखो, यह भार्गवी नदी है। कहते हैं उसी के साथ 'व्यास जी' का आश्रम था- अब वहाँ भगवान रुद्र का मंदिर है। ..... हाँ, वहाँ भगवान रुद्र का मंदिर है- बड़ा सुन्दर मंदिर है। वहाँ, उस पहाड़ के पीछे माँ काली का मंदिर है।" ..... कहते हैं एक जमाने में यहाँ बड़ी भीड़ हुआ करती थी पर अब तो खंडहर रह गया है। ..... हाँ भगवान रुद्र का मंदिर भी पुराना है, फिर भी उतना टूटा-फूटा नहीं, जितना माँ काली का मंदिर।" कपिल और पद्मिनी रुद्र मंदिर से लौटकर आते हैं। वहाँ देवदत्त को न पाकर कपिल चिंतित हो जाता है उसे पद्मिनी रोकने पर भी अपने मित्र देवदत्त को खोजने को यह कहता हुआ चल जाता है- "नहीं भाभी! बड़ा घना जंगल है, चट्टानें हैं, रास्ता भटक गया, तो सारी रात यहीं बितानी पड़ेगी। तुम ठहरो, मैं बस गया और आया।" यह दृष्टव्य है कि कपिल वासना द्वारा सर्वथा पराभूत नहीं होता है। पद्मिनी के एकांत साहचर्य का अवसर उसे देवदत्त की मित्रता एवं अपने मित्र के कुशल-क्षेम से विमुख नहीं कर पाता है और वह देवदत्त की तलाश में पद्मिनी को अकेला छोड़कर चल देता है।

कपिल देवदत्त को ढूँढ़ता हुआ पहाड़ी पर माँ काली के मन्दिर में पहुँच जाता है और वहाँ उसके शव को देखकर वह सब कुछ भूल जाता है उसका मैत्री-भाव पद्मिनी को प्रायः विस्मृत करने के लिए कपिल को विवश कर देता है। वहाँ पड़ी हुई देवदत्त की तलवार उठाकर वह अपना सिर काट डालता है, यह कहते हुए- "देवदत्त मेरे भाई, मेरे पिता, मेरे मित्र... मेरे प्यारे मित्र मुझसे दुखी होकर तुमने यह संसार छोड़ दिया। लेकिन परलोक मैं तो मिलोगे? अपने पुराने मित्र को स्वीकार तो करोगे? लो, मैं आता हूँ। सदा की तरह तुम्हारे चरण-चिह्नों पर चलता हुआ !" कहकर अपना सिर काट लेता है।

माँ काली की कृपा से दोनों पुनः जीवित हो जाते हैं, परन्तु पद्मिनी घबराहट में देवदत्त और कपिल के सिरों की अदला-बदली कर देती है- यानी कपिल को देवदत्त का शरीर प्राप्त हो जाता है और देवदत्त को कपिल का। इस कारण उसके व्यक्तित्व में एक स्पष्ट बदलाव आ जाता है। किसी सीमा तक वह ढीठ बन जाता है। वह पद्मिनी को अपनी

पत्नी के रूप में प्राप्त करने का अधिकारी मानता है। वह देवदत्त से कहता है, "पर तुमसे पद्मिनी का क्या सम्बन्ध ? पद्मिनी मेरे साथ जायेगी। मेरी पत्नी मेरे साथ ही चलेगी न। ..... तुम देवदत्त की स्त्री हो न। मुझे देवदत्त का शरीर मिला है, इसलिए तुम मेरी स्त्री हुई।" वह पद्मिनी को राह पर लाने का प्रयत्न करते हुए कहता है-"लेकिन, पद्मिनी देवदत्त का शरीर अब मेरा है।" कपिल धर्मशास्त्र की तर्कशैली का प्रयोग करते हुए देखता है- "पर, अग्नि को साक्षी करके इसने इस शरीर के साथ ही विवाह किया था। इसकी साक्षी से मैं ही देवदत्त हूँ।" पद्मिनी देवदत्त के साथ जाने लगती है। कपिल उन्हें रोकता है। देवदत्त कपिल के शरीर के बल का प्रयोग करते हुए कपिल को एक ओर धक्का देकर हटा देता है और साथ ही सुअर की गाली का प्रयोग करता है।

देवदत्त और कपिल दोनों के बीच काफी कहा-सुनी होती है। कपिल, देवदत्त को धमकी देते हुए कहता है- "तुम समझते हो, मेरी स्त्री को भगाकर ले जाओगे और मैं चुप बैठा रहूँगा? आखिर जाओगे कहाँ? चलो, मैं भी वहाँ जाकर सड़कों पर ऐसा हंगामा मचाऊँगा कि देखना ! कहता है। अन्ततः पद्मिनी कपिल से अनुरोध करती है कि हमें छोड़ दो। वह गिड़गिड़ाकर कहती है-क्यों सता रहे हो, कपिल ?" तब कपिल एक कठोर यथार्थ को उजागर करते हुए कहता है, "मैं जानता हूँ, तुम क्या चाहती हो, पद्मिनी ! देवदत्त का मस्तिष्क और कपिल का फौलादी शरीर।"

आखिरकार पद्मिनी देवदत्त को प्राप्त होती है और वे "अच्छा कपिल, चलती हूँ। ..... फिर मिलेंगे, कपिल! " कहकर दोनों कपिल से विदा लेते हैं। भागवत सूत्रधार के अनुसार इस प्रकार रास्ते अलग-अलग हो गये। कपिल ने जंगल का रास्ता लिया। एक बार जंगल गया, तो फिर धर्मपुरी की ओर मुड़ा तक नहीं। धर्मपुरी ही क्यों? किसी भी बस्ती की हवा तक नहीं ली।"

कुछ अन्तराल के बाद कपिल रंगमंच पर प्रकट होता है। वह दूसरी नाटक में शुरू वाला पहला कपिल बन जाता है। वह भागवत के माध्यम से बताता है कि इतने दिनों से वह जंगल में था। बहुत दिन हुए तब पिताजी का बुलावा आया था, पर मैंने जाने से मना कर दिया और यह भी कहलवा दिया कि आप भी इधर न आएँ। भागवत कपिल को बताता है कि तुम्हारे माता-पिता का देवलोक-प्रस्थान हो गया है और पद्मिनी के बेटा हुआ है। दोनों समाचार उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालते हैं। वह लकड़ी काटने का अभिनय करता है। उसी समय अपने पुत्र को गोद में लिए हुए पद्मिनी आती है। दोनों एक दूसरे को आमने-सामने देखकर जड़वत हो जाते हैं। वे दोनों बच्चे को एक-दूसरे का बच्चा बताते हैं। पद्मिनी स्पष्ट कहती है- "तुम्हारी ही देह का प्रसाद है।"

कपिल पूरे विश्वास के साथ कहता है- "उस दिन मैंने नहीं माना था, पर आज मानता हूँ, मैं कपिल हूँ।" कपिल बच्चे को देखता है और पद्मिनी से कहता है- "जाओ भीतर जाकर विश्राम कर लो। कपिल कहता है कि देवदत्त का शरीर पाकर मैं सुकुमार बन गया था। परन्तु मैंने निरन्तर अभ्यास और श्रम किया और अब मैं कोसों दौड़ सकता हूँ, बरसाती बाढ़ में भी कूदकर तैर सकता हूँ, बड़े से बड़ा पेड़ गिरा सकता हूँ। शुरू में पेट साथ नहीं देता था, पर अब जो भी मिले पचा सकता हूँ। नहीं मिलता, तो भी रोता नहीं।..... इसीलिए तो मैं अब कपिल हूँ, जिसका चेहरा उसके शरीर से मेल खाता है। ऐसा लगता है कि पद्मिनी के प्रति कपिल के मन में पूर्ववत् लगाव नहीं है। वह पद्मिनी से प्रश्न करता है- "देवदत्त को क्यों छोड़ आई ? यहाँ क्यों आई?"

घर पर पद्मिनी को न पाकर देवदत्त सीधा कपिल के पास पहुँचता है- वहाँ पद्मिनी है ही। कपिल देवदत्त को बताता है कि, "मैं तुम्हारी कविता पर तुम्हारी कल्पना-शक्ति पर मुग्ध था, मेरे लिए पेड़ का मतलब पेड़, आकाश का अर्थ आकाश ही था। तुम्हारे शरीर ने नई चेतना दी, नए शब्द दिए। ऐसी चेतना मैंने पहले कभी अनुभव नहीं की थी।

मैंने सहसा एक-दो कविताएँ भी घसीट डालीं। बेशक निकम्मी ही हैं। कभी-कभी मुझे उस सबसे घृणा होती है जो तुम्हारे शरीर ने मुझे दिया है।"

इसी अवसर पर वह दो-टूक कहता है कि मैं पद्मिनी को चाहता हूँ। साथ ही यह प्रस्ताव भी रखता है कि द्रोपदी और पाण्डवों की भाँति हम तीनों एक साथ रह सकते हैं। देवदत्त और पद्मिनी को यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं। कपिल, देवदत्त से फिर कहता है-"मुझे तुम्हारी देह मिली, बुद्धि नहीं।" देवदत्त का प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कपिल अपनी तलवार लाता है। दोनों द्वन्द-युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं। जूझने के पहले कपिल दार्शनिक भाव से कहता है-"उस दिन माँ काली के मंदिर में हम दोनों ने कितने धैर्य से अपना-अपना शीश काट डाला था। लेकिन अब किसका शीश, किसका शरीर। आत्महत्या या हत्या कुछ समझ में नहीं आता। ..... उस दिन माँ काली के सामने जिस हाथ ने जिस मस्तिष्क को अलग किया था, आज भी वही हाथ उसी मस्तिष्क को काटे।"

कपिल और देवदत्त सच्चे मित्रों की भाँति जिए और मरे भी। बीच में कुछ भटक गये- यह बात दूसरी थी। उनकी मृत्यु के उपरान्त पद्मिनी ठीक कहती है-"दो भाइयों की तरह लड़ते हुए को मरे। ..... तुम दोनों ने एक-दूसरे को क्षमा कर दिया।" कपिल एक भोला-भाला सीधा-सच्चा इन्सान है। पद्मिनी के प्रति आसक्ति उसे अपने मार्ग से भटका देती है। देवदत्त की काया पाकर उसमें बौद्धिकता का अंकुर प्रकट हो जाता है। यह निरंतर प्रयास द्वारा अपने शरीर को पूर्ववत बलिष्ठ बना लेता है और कपिलत्व को प्राप्त कर लेता है अर्थात वह शरीर को पूर्ववत बनाने का प्रयास करता है। वह भोला-भाला, सीधा-सादा कपिल बन जाता है और अपने मित्र के प्रस्ताव को सहज भाव से स्वीकार करते हुए मरण का त्यौहार मनाता है। मानो उसके और उसके मित्र देवदत्त के मध्य कभी किसी प्रकार की कटुता आई ही नहीं। जीवन के अंतिम क्षणों में कपिल को अपने किए पर पश्चाताप होता है। उसने अपने मित्र के साथ बेवफाई तो की ही थी- 'अब तुम चुपचाप बैठी रहो या लौट जाओ, कोई अंतर नहीं पड़ता। बिगाड़ जो होना था, सो हो ही गया।" कपिल चाहता है- पुरानी यादें दबी रहें, यही अच्छा है, क्योंकि वे अधूरेपन की ओर ले जाती है। "पर कुछ भी दबाया क्यों जाए ?" पद्मिनी के इस प्रश्न का उत्तर कपिल यह कहकर देता है- "क्यों नहीं ? इस अधूरेपन के पागल नाच को क्यों झेला जाये ?"

15.4. पद्मिनी का चरित्र चित्रण

उपरोक्त कथनों के बाद में यहाँ पर पद्मिनी का चरित्र संक्षेप में इस प्रकार है कि वह अनिन्द्य एवं अद्वितीय सुंदरी है। वह दो परम मित्रों-देवदत्त और कपिल से एक साथ प्रेम करती है और वस्तुतः दोनों के लिए पहेली बनी रहती है। देवदत्त की धर्मपत्नी होते हुए वह शारीरिक आकर्षण के धनी कपिल के प्रति अधिक अनुरक्त है। उसका पुत्र कपिल का देह का ही प्रसाद है। अन्त में वह कपिल के पास ही पहुँच जाती है और विरक्त कपिल को अंतिम क्षणों में पुनः अनुरक्त बना देती है- पद्मिनी के संपर्क में आते ही कपिल की दबी हुई पुरानी यादें सजीव हो जाती हैं। कपिल का यह कथन उसकी विवश कामासक्ति को उजागर करता है-"तुम आयी, मुझे छुआ, मेरा हाथ थामा और मेरे शरीर को तुम्हारे शरीर की याद हो आयी। मैंने तुम्हें कभी नहीं हुआ, पर यह शरीर यह निर्लज्ज शरीर तुम्हारा स्पर्श पाते ही खिल उठा, जैसे अपने पुराने मित्र को गले लगा लिया हो ?"

➢ अनिंद्य रूपवती

पद्मिनी का अप्रत्यक्ष परिचय हमें देवदत्त द्वारा प्राप्त होता है, जब वह अपने मित्र कपिल से उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए आविष्ट हो जाता है।

देवदत्त पद्मिनी के सौन्दर्य के प्रति पूर्णतः अभिभूत है- "आज तक मैं एकदम अंधा था। मैं इस धोखे में था कि कविता समझता हूँ। यह इस अनिंद्य रूपवती को देखने से पहले मैं कालिदास की काव्य श्री को समझता ही नहीं था।..... कपिल, वह बस मेरी कविता की प्रेरणा बनना स्वीकार कर ले तो मैं कालिदास से भी श्रेष्ठ काव्य रच डालूँ।" पद्मिनी जब कपिल के लिए द्वार खोलती है, तब दर्शक उसको साक्षात् झाँकी पाते हैं और वे कपिल द्वारा वर्णन किए गए उसके रूप के साथ उसके स्थूल रूप को मिलाकर देखने में समर्थ होते हैं –"इसे यक्षिणी कहूँ! इन्दुमति कहूँ! ऊर्वशी कहूँ! सब एक साथ।"

➢ चंचल किशोरी

कपिल उसका द्वार खटखटाता है। वह द्वार खोलती है। कपिल यह जानना चाहता है- यह घर किसका है? इसके उत्तर में वह कपिल के साथ जो लम्बा संवाद चालू कर देती है, वह उसके वाक् चातुर्य के स्वभाव को चंचलता को प्रकट करता है। एक नमूना देखिए- "आपको मेरे पिताजी से काम है या इस घर के स्वामी से ? .... सुनिये, मेरे पिताजी इस घर के चाकर भी हो सकते हैं या इस घर का स्वामी मेरे पिताजी का चाकर हो, या मेरे पिता इस घर के स्वामी के भाई, बाबा, ताऊ, जमाई कुछ भी हो सकते हैं। क्यों, ठीक है न?"

अन्त में उसकी वाक्चातुरी एवं चपलता के सामने कपिल जब हार मान लेता है, तब वह बड़ी ही शोखी के साथ कहती है- "यानी मेरे पाँव नहीं छुएँगे, मैं जानती थी। आजकल किसी का भरोसा नहीं करना चाहिए। अच्छा! द्वार खोला, मैंने। मुझी को दरबान समझिए। बताइए, क्या चाहते हैं ?"

कपिल भी कम नहीं है। वह देवदत्त का परिचय बताने के उपरान्त सीधा-सा प्रश्न करता है- "लेकिन अब मुख्य सवाल यह है कि मेरा आपका कौन होगा ?" कपिल मानो अपना काम पूरा कर लेता है और वह जितना सोचकर आया था, उससे अधिक सफलता उसकी प्राप्त हो जाती है। यानी पद्मिनी उसके मित्र देवदत्त की पत्नी बन जाती है। पद्मिनी धर्मपुरी के एक प्रमुख व्यापारी की सुपुत्री है, जिसके घर स्वयं लक्ष्मी झाड़ू लगाती है। यह है पद्मिनी का पारिवारिक संदर्भ। निर्लज्ज कुलवधू पद्मिनी यद्यपि देवदत्त की पत्नी बनती है, तथापि वह प्रथम मिलन में ही कपिल के प्रति आसक्त ही होती हैं। कपिल वस्तुतः एक बलिष्ठ पुरुष है। उसके सुन्दर सुगठित व्यक्तित्व पर रीझ जाना एक अल्हड़ किशोरी के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। द्वार के कपाट खोलते ही पद्मिनी और कपिल एक-दूसरे को देखते हैं। पद्मिनी के अपूर्व रूप को देखकर कपिल दूसरी दुनिया में पहुँच जाता है और उधर पद्मिनी भी कपिल की यह कहकर टोकती है कि ऐसी मूरत बने क्यों खड़े हो ? कपिल पद्मिनी को देवदत्त के बारे में बताने के पूर्व लंबी साँस खींचता है। यह चेष्टा भी उसकी व्यस्त मानसिकता को व्यक्त कर देती है।

जब कपिल पद्मिनी से यह प्रश्न करता है कि मेरा मित्र आपका कौन होगा, तो पद्मिनी अपने स्वभाव के अनुसार न तो किसी प्रकार का आक्रोश व्यक्त करती है और न कपिल से किसी प्रकार का प्रति-प्रश्न ही करती है। मानो वह अपने मन में कपिल और उसके मित्र देवदत्त का वर्णन कर चुकी होती है, "धीरे-धीरे कपिल के शब्दों का इशारा समझने से लज्जा से लाल होकर 'हाय भैया' कहकर भाग जाती है।" कपिल इसी स्तर पर सोचने लगता है कि देवदत्त

पद्मिनी के योग्य पति नहीं है। वह देवदत्त से करता है- "यह लड़की तो एकदम बिजली है-उतनी ही तेज और तीखी। तुम झेल नहीं सकोगे, मित्र! इसके झेलने के लिए लौह-पुरुष चाहिए।"....

सम्भवतः कपिल उस लौह-पुरुष के स्थान पर अपने को रखकर देखने लगता है। यह तो वह कहता ही है- "मित्र देवदत्त ! मेरा मन बेचैन हो गया।" तुम तो सुकुमार हो ..... और यह लड़की तो एकदम बिजली है। ..... तुम मानोगे नहीं। मैं भी अब कैसे पीछे हटूँ ?" और वह पद्मिनी के माता-पिता से मिलने के लिए पद्मिनी के पीछे मकान के अंदर चला जाता है। सम्भवतः पद्मिनी भी यही चाहती थी। अन्यथा अपने पिता के बारे में जानकारी देने में इतना आगा-पीछा करने वाली पद्मिनी द्वार के कपाट खुले छोड़कर अंदर क्यों भाग जाती ? विवाहिता पत्नी वधू पद्मिनी आरम्भ से ही कपिल के कुशल-क्षेम के विषय में अत्यधिक चिंतित दिखाई देती है। सब लोग उज्जैन की यात्रा पर जाने का कार्यक्रम बना लेते हैं और कपिल गाड़ी लेने चला जाता है। वापस आने में कपिल को अपेक्षा से कुछ अधिक विलम्ब हो जाता है। तो तब पद्मिनी व्यग्र हो जाती है।

कपिल को आता हुआ देखने के लिए बार-बार खिड़की के पास जाती है और कहती है- "कितनी देर लगा रहा है यह कपिल !" कपिल के प्रति इतनी व्यग्रता देखकर देवदत्त खीझ उठता है- "और दिन भर बस, कपिल, कपिल, कपिल! पद्मिनी यहाँ तक कह देती है- "उस पर क्यों बरसते हो? भूल मेरी ही थी ..... मैंने उसे सुनने को बुलाया था।"

देवदत्त जब यह कहता है कि हमारे एकान्त में कपिल बाधा बनता है, तो पद्मिनी एक ऐसा वाक्य कहती है जो कपिल और देवदत्त को रकीब के रूप में प्रस्तुत करने के लिए काफी है- "कपिल से तुम इस हद तक जलते हो ?" देवदत्त नहीं चाहता है कि यात्रा की जाये, क्योंकि यात्रा में पद्मिनी और कपिल के मिलन के अधिक अवसर मिलेंगे। परन्तु पद्मिनी, देवदत्त का एक भी तर्क सुनने को तैयार नहीं है। यहाँ तक कि देवदत्त के मना करते रहने पर भी वह कपिल से अपना सामान गाड़ी में लदवा देती है। कपिल के संदर्भ में पद्मिनी का व्यवहार देख-पढ़कर दर्शक- पाठक समझने लगते हैं कि दाल में कुछ काला है।

देवदत्त का स्वगत-कथन दर्शकों एवं पाठकों के समक्ष उसकी भावनाओं को व्यक्त कर देता है- "सचमुच यह इतनी नासमझ है या जान-बूझकर उससे खेल रही है ? इससे पहले कभी कपिल लजाता नहीं था। लेकिन अब पद्मिनी को देखते ही पूँछ हिलाने लगता है। ऐसे बैठकर पद्मिनी का मुंह ताकता रहता है कि उसके मुंह से कोई शब्द धरती पर न गिर जाये। उसकी आँखों में तैरती यह लालसा.....क्या सचमुच उसे नहीं दिखती।" सबसे बड़ी बात यह है कि देवदत्त किसी भी प्रकार यह चाहता है कि पद्मिनी कपिल के साथ के प्रति उदासीन हो जाए, परन्तु वह मानती नहीं, इतना ही नहीं देवदत्त से मुंह जोरी करने लगती है-"तुम्हारा मतलब है, उससे बात करने में डर है ? तुम्हारी बातों से लगता है, जैसे कपिल तुम्हारा मित्र रहा ही नहीं ?"

देवदत्त पद्मिनी के गर्भ की रक्षा के प्रति बहुत ही चिंतित दिखाई देता है। वह नहीं चाहता कि यात्रा आदि में होने वाली हलचल द्वारा गर्भस्थ शिशु को किसी प्रकार की झिड़क देती है। जब देवदत्त पहली बार गर्भिणी होने की बात कहता है तो पद्मिनी जिस निर्लज्जता से उत्तर देती है, वह भारतीय नारी के शील के साथ मेल नहीं खाती –"पहली बार के क्या मानी ? छः महीनों में और कितनी बार कोई गर्भवती हो सकती है?" बेचारा देवदत्त जितनी बार गर्भ की बात कहकर, कपिल को निरीह-निर्दोष बताकर पद्मिनी को गुदगुदाना चाहता है, वह उतनी ही अधिक ढीठता व्यवहार करती हुई दिखाई देती है। कपिल द्वारा गाड़ी हाँकने पर पद्मिनी रीझकर कहती है-"वाह कपिल! गाड़ी कितनी अच्छी

हाँकते हो। हाथ का हिलना भी नहीं दिखाई देता, पर बैल अपने आप जिधर चाहो, मुड़ते जाते हैं।" इस कथन पर कपिल खूब हँसता है।

पद्मिनी की इच्छापूर्ति हेतु कपिल जब सुहाग का फूल लेने जाता है, तब पद्मिनी उसकी चेष्टाओं पर रीझती हुई स्वगत कथन करती है-"जैसे किसी गंधर्व ने शिकारी का जन्म लिया हो। उसको देह थिरकती है, अंग-अंग फड़कते हैं, जैसे कोई नृत्य हो। ..... कपिल का शरीर ही इतना आकर्षक है।..... न जाने यह किस भाग्यशालिनी का हाथ थामेगा। यह सुडौल काया, कोई भी नारी मुग्ध हो जाये।" यहाँ कोई मानसिक संक्रमण, जिसे अंग्रेजी भाषा में टेलीपैथी (Telepathy) कहते हैं, कार्य कर रही है, क्योंकि देवदत्त भी ठीक इसी प्रकार सोचता है-"कोई भी नारी मुग्ध हो जाए, चाहे क्वाँरी हो, चाहे सुहागिन"....आदि।

पद्मिनी का मन पापी तो है ही? पर लोक-लाज से डरती है और पति देवदत्त से भी अपने पर-पुरुष को छिपाना चाहती है। वह अपनी दृष्टि में स्वयं को गुप्त नायिका भले ही समझे, पर वह समाज की दृष्टि में लांछित नायिका है। वह मन ही मन कहती है- "ऐसे कब तक चलेगा ? कब तक ? हे ईश्वर, आगे क्या होगा ? अगर देवदत्त ने देख लिया...? इसके बाद कपिल पद्मिनी को पृष्ठभूमि में रखकर सुहाग के फूल का जो विश्लेषण प्रस्तुत करता है, वह सचमुच फ्रायड के इस कथन की सार्थकता प्रकट करता है कि कामोद्वेग ने मेधा के पट खोल दिए हैं।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है-दर्शनार्थ रुद्र के मंदिर जाने का। विस्तृत विवाद के उपरांत कपिल और पद्मिनी चले जाते हैं। देवदत्त वहीं रुक जाता है। जब तक ये दोनों लौटकर आते हैं, तब तक माँ काली के सम्मुख देवदत्त अपना सिर धड़ से अलग कर चुका होता है। कपिल देवदत्त को खोजते हुए उसके शव से टकरा जाता है और अपना सिर भी धड़ से अलग कर डालता है।

पद्मिनी उन दोनों के शवों को देखकर भाँति-भाँति से विलाप करती है। वह भी आत्महत्या हेतु तलवार उठाती है। उसी समय देवी की आवाज सुनाई देती है- "ए!" देवी के चरणों में गिरकर पद्मिनी अभयदान माँगती है। देवी उसको निर्देश देती है कि दोनों के सिर धड़ों पर लगा दे...वे जीवित हो जाएंगे। पद्मिनी ऐसा ही करती है- परन्तु उतावली में दोनों के सिरों में हेरा-फेरी कर बैठती है। अब दो पुरुष सामने खड़े हैं- सिर देवदत्त का और शरीर कपिल का तथा सिर कपिल का और शरीर देवदत्त का। इस अदला-बदली को लक्ष्य करके दोनों हँसते हैं। दोनों गले लगते हैं। पद्मिनी कहती है हाय, मैंने यह क्या किया ? अब एक नई समस्या उत्पन्न होती है। पद्मिनी किसकी पत्नी है? कपिल कहता है- देवदत्त के शरीर के साथ पद्मिनी का विवाह हुआ था और वह शरीर अब मेरे पास है। अतः पद्मिनी मेरी पत्नी है। कपिल इस बारे में अड़ियल रुख अख्तियार करता है। पद्मिनी परेशान होती है। वह कपिल के शरीर के स्वामी देवदत्त के साथ जाना चाहती है।

बात बहुत बढ़ जाती है। पद्मिनी अन्ततः कपिल से भीख-सी माँगती हुई कहती है कि मुझे जाने दीजिए और वह देवदत्त से कहती है-इस बदमाश से कैसे पीछा छूटेगा ? चलो, कहीं दूर चलें। कहीं भी-जंगल में बीहड़- मैं चाहे जहाँ। ज्ञातव्य है कि कपिल की काया पाकर देवदत्त विशेष बलवान हो जाता है और वह सुअर कहकर कपिल को एक ओर हटा भी देता है। पद्मिनी और देवदत्त परस्पर प्यारी, स्वामी, बिजली, आलोक, मल्लिका आदि कहकर प्रेमालाप करते हैं। पद्मिनी पूरी तरह 'कामातुरा' को भाँति व्यवहार करती हुई देवदत्त से कहती है- ले चलो कहीं एकान्त सुरम्य स्थान पर.....आदि। धीमे स्वर में वह कपिल से कहती है- "सुनो, देवदत्त के साथ जाना मेरा धर्म है। पर जा तो रही

हूँ तुम्हारी ही देह के संग। इससे तुम्हें संतोष होना चाहिए।" अच्छा, कपिल, चलते हैं। फिर मिलेंगे, कपिल!" कहकर पद्मिनी कपिल से विदा लेती है।

पद्मिनी एक पुत्र की माँ बनती है। वह नाचने-गाने वाली गुडिया लाती है और बच्चे को खिलाती रहती है। पद्मिनी कपिल को और उसके संसर्ग को भूल नहीं पाती है। वह बड़े घुमाव के साथ कपिल के शरीर से आने वाली गंध की प्रशंसा करती है- "काली के मंदिर से लौटने के बाद, तब तुम्हारी देह की ऐसी मर्दानी महक होती थी।" देवदत्त तत्काल कह देता है- यानी वह कपिल की बिना धुली देह थी, पसीने की महक?..... वह तुम्हें अच्छी लगती थी?" पद्मिनी उसके प्रश्न का उत्तर देकर सर्वथा भिन्न प्रसंग छेड़कर बात को उड़ा देती है। पाठक, आप समझ गये होंगे। पद्मिनी को शरीर का सच्चा सुख कपिल द्वारा ही प्राप्त हुआ था। यह बात तब एकदम साफ हो जाती है, जब वह कपिल से कहती है- "यह बच्चा तुमको गया है।.... तुम्हारी ही देह का प्रसाद है। यह भी ज्ञातव्य है कि विवाह के बाद ही तत्काल पद्मिनी गर्भवती हो जाती है।

एक दिन बातचीत करती हुई पद्मिनी देवदत्त से कहती है- "क्या फर्क पड़ता है इससे कि तुम्हारी देह फिर कोमल हो रही है।..... कपिल मेरे जीवन से चला गया-सदा के लिए अब उसे कभी नहीं आने दूंगी।" वह इतना कहकर रुक जाती है। कपिल का नाम लेते ही उसको पूर्व-स्मृतियाँ सताने लगती है। वह कह उठती है- कपिल! क्या कपिल क्या कर रहा होगा ? कहाँ होगा? क्या उसकी काया अब भी उतनी कोमल होगी और चेहरा साँवला? आदि पद्मिनी आँखें बन्द करती है। गुड़िया कहती है -प्रणाम! पद्मिनी चौंक पड़ती है। वास्तव में वह कपिल के स्वप्न दिन में भी देखती रहती है।

पद्मिनी कपिल की माँ की मृत्यु का समाचार देती है। देवदत्त को यह सब अच्छा नहीं लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कपिल की स्मृति पद्मिनी का पीछा एक पल को भी नहीं छोड़ती है। नई गुड़िया लाने के लिए पद्मिनी देवदत्त को उज्जैन भेज देती है। उज्जैन से देवदत्त के आने के पहले पद्मिनी अपने बेटे को लेकर कपिल के पास उसके गाँव में स्थित पर पहुँच जाती है। उस समय कपिल कुल्हाड़ी से लकड़ी काट रहा होता है। कपिल प्रश्न करता है- तुम यहाँ क्यों, कैसे ? पद्मिनी का उत्तर है कि प्रकृति और प्रकृति के साथ बिताए जाने वाले जीवन से परिचित कराने के लिए अपने बेटे को उसके पास लाई है। "मेरा बेटा नहीं जानता था कि नदी के साथ कोई कैसे हँसता है, ठंडी हवा में कैसे काँपता है। पाँवों में काँटे कैसे चुभते हैं। .....पद्मिनी क्लिष्ट भाषा में कहती है- "मैं जंगल में भटक गई। गलत राह पाँव से नहीं छूटी, चिपकी रही।" इसी अवसर पर पद्मिनी इस कठोर सत्य को उजागर करती है, यद्यपि यह सत्य अप्रकट भी नहीं था-"तुम्हारी ही देह का प्रसाद है।" अपनी देह के प्रति इंगित करते हुए कपिल कहता है कि अनवरत श्रम एवं अभ्यास द्वारा मैंने अपनी देह को कपिल की देह बना लिया है-"अब मैं सचमुच कपिल हूँ।"…

पद्मिनी को सांत्वना देने के साथ वह बच्चे को देखता है। दोनों एक-दूसरे से कहते हैं-तुमको पड़ा है, अपने सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देती हुई पद्मिनी कहती है- तुम्हारी बाँह जैसा तिल इसकी बाँह पर भी है। पद्मिनी बार-बार कहती है-अब तुम्हारा यह कोमल शरीर कठोर बन गया है। कपिल कहता है-अब मेरा शरीर चेहरे से मेल खाता है। कपिल चाहता है पद्मिनी वापस चली जाए किन्तु पद्मिनी तब तक रुक जाती है, जब तक इसका बच्चा सोता है। कपिल को पुरानी यादें सताने लगती है। उसका कठोरपन सतही साबित होता है। मेरे प्यारे कपिल कहती हुई पद्मिनी कपिल के वक्ष पर अपना सिर टेक देती है।

लौटने पर पद्मिनी को घर में न पाकर देवदत्त हाथ में तलवार लिए सीधा कपिल के घर पहुँच जाता है। वहाँ उसकी भेंट पद्मिनी से भी हो जाती है। वह देवदत्त के हाथों से गुड़िया लेकर चुपचाप खड़ी हो जाती है। देवदत्त और कपिल के मध्य काफी लम्बा संवाद होता है। वे दोनों परस्पर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। द्वन्द- युद्ध में दोनों वीरगति को प्राप्त होते हैं। पद्मिनी दोनों के शवों के मध्य बैठकर विलाप करती है। मैं यदि दोनों के साथ रहने को

तैयार हो जाती, तो शायद यह दिन देखने को न मिलता। परन्तु मैं भली भाँति जानती हूँ कि तुम दोनों एक- साथ सुख से नहीं रह सकते थे। तुम्हें अपने शरीरों का भी साझा करना पड़ा। तुम दोनों भाइयों की तरह रहे, लड़े और मेरे। तुमने एक-दूसरे को क्षमा भी कर दिया। मैं ही रह गई। पद्मिनी देवदत्त और कपिल के साथ सती हो जाती है। सती होने के पहले वह अपने बेटे का योग-क्षेम भागवत को सौंपती हुई कहती है-"भीतर झोंपड़ी में मेरा बेटा सोया है। उसे तुम सम्हाल लो। यहाँ के शिकारियों को सौंप देना। उनसे कहना यह कपिल का बेटा है। कपिल उनका प्रिय था, वे कपिल के बेटे का अच्छी तरह पालन करेंगे ? वह इसी जंगल में पेड़ों और नदियों के साथ खेले-कूदे और बढ़े। पाँच वर्ष बाद उसे धर्मपुरी के विप्रोत्तम विद्यासागर के पास ले जाना। कहना, यह देवदत्त का पुत्र है। उनसे बहुत धन मिलेगा। ..... ये गुड़ियाँ मेरे बेटे को दे देना। मैं अब उससे नहीं मिलूँगी। भीतर गई तो कहीं उसका मोह मुझे न रोक ले।"

➢ प्रकृति-प्रेमी

प्रकृति का प्रेम पद्मिनी के व्यक्तित्व का एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। सम्भवतः इसी कारण वह प्रकृति के पुत्र कपिल के प्रति आकर्षित हो गई थी। उज्जैन जाते समय जब वे लोग विश्राम के लिए रुकते हैं, तो वहाँ के प्राकृतिक दृश्य उसका मन मोह लेते हैं।

शादी के तत्काल बाद वह देवदत्त के साथ झील पर घूमने जाती है।

मार्ग में वह कपिल को भेजकर सुहाग के फूल मंगाती है।

जब कपिल कहता है, "यह रास्ता थोड़ा बीहड़ है, इसलिए इधर से अधिक लोग नहीं जाते। पर मुझे यही पसंद है- और यह दस कोस छोटा भी है।" पद्मिनी तत्काल कहती है- "दस कोस लम्बा भी होता तो भी बुरा न लगता। एकदम बाग जैसा लगता है।" इसी प्रकृति-प्रेम के वशीभूत होकर वह भगवान रुद्र के दर्शन हेतु ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चल पड़ती है।

15.5. सारांश

हयवदन नाटक का मुख्य पात्र पद्मिनी है आज तक कोई नहीं जानता कि पद्मिनी कहाँ सती हुई। जंगल के शिकारियों से पूछो तो वे जंगल के बीच एक हरा-भरा सुहाग के फूलों का वृक्ष बताते हैं। कहते हैं, आज भी पूर्णिमा और अमावस की रात को एक गीत उस वृक्ष की जड़ों से उठकर सारे जंगल में सुगंध की तरह भर जाता है। पद्मिनी ने देवदत्त की विवाहिता पत्नी होकर एक अन्य पुरुष कपिल से प्रेम किया और उसका गर्भ धारण किया। इस प्रकार एक साहसी संतान को जन्म दिया।

भारतीय कुल-ललना की भाँति पतिव्रत धर्म का पालन नहीं किया और दो मित्रों के मध्य खटास पैदा की तथा अपने ही शब्दों में उन्हें मृत्यु की ओर धकेलकर अपने किए पर वह स्वयं भी पछताई। कपिल के सामने उसने स्वीकार किया। मैंने हजार बार कहा- भूल मैंने की। बिगाड़ जो होना था, सो हो गया। अंतिम क्षण में देवी के सामने वह कहती

है- दूसरी स्त्रियाँ जनम-जनम में वही पति पाने की कामना कर सकती हैं। मेरे लिए यह भी नहीं। मैं सुहागिन होकर भी अभागिन रह गई। कामासक्ति के कारण अपने स्थान से च्युत हुई पद्मिनी जनता की सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सकी अर्थात् सती होकर भी सती नारी का सम्मान प्राप्त नहीं कर सकी।

15.6. बोध प्रश्न

1. हयवदन नाटक-पात्रों का परिचय दीजिए ।

2. गिरीश कर्नाड के नाटक के पात्रों का चरित्र चित्रण का विश्लेषण कीजिए।

15.7. सहायक ग्रंथ

1. आधुनिक भारतीय रंगलोक, जयदेव तनेजा।
2. ययाति, गिरीश कर्नाड, अनुवादक बी. आर. नारायण।
3. हयवदन, गिरीश कर्नाड, अनुवादक- बी. वी. कारंत।
4. स्वातंत्र्तोत्तर हिन्दी रंगमंच, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

302HN21

M.A. DEGREE EXAMINATION

Third Semester – HINDI

(Regular)

PAPER II: INDIAN LITERATURE

TIME: Three hours **Maximum: 70 Marks**

भारतीय साहित्य

किन्हीं **पाँच** प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।

(5x14=70)

1. (a) भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

अथवा

(b) भारतीय साहित्य से क्या तात्पर्य है? उसके स्वरूप एवं उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

2. (a) बंगला के उत्तर-मध्यकालीन साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

(b) बंगला के उपन्यास साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. (a) बंगला साहित्य को रवीन्द्रनाथ टैगोर की देन को स्पष्ट करते हुए भारतीय साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए।

अथवा

(b) 'वर्षा की सुबह' में संकलित कविताओं की समीक्षा कीजिए।

4. (a) 'अग्नि गर्म' उपन्यास की वस्तुगत विशेषताओं पर एक निबंध लिखिए।

अथवा

(b) 'हयवदन' में देवदत्त की चरित्रगत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

5. (a) किन्हीं **दो** पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) महाश्वेतादेवी का परिचय।

(ii) सन् 1967, के नक्सलवादी आन्दोलन

(iii) बसाई टूडू (टोक) का चरित्र-चित्रण।

(iv) सीताकांत महापात्र की कविताओं का मूल्यांकन।

अथवा

(b) किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(i) गिरीश कार्नाड।

(ii) ईश्वरचंद्र विद्यासागर।

(iii) बंगला कहानी।

(iv) 'बतूल' का चरित्र-चित्रण।